श्री गणेशाय नमः

'विन्ध्यवासिनीविजयमहाकाव्यम्'

का समीक्षात्मक अध्ययन

कोटा विश्वविद्यालय, कोटा

की

पीएच.डी. (संस्कृत) की उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध-प्रबन्ध

(कला-संकाय)

शोध-निर्देशिका

डॉ. (श्रीमती) हेमलता लोया

उपाचार्य

राजकीय महाविद्यालय

कोटा (राज.)

शोधकर्त्री

सीमा मीणा

एम. ए., एम. फिल्.,

नेट & जे.आर.एफ.

शोधस्थान

राजकीय महाविद्यालय

कोटा (राज.)

संस्कृत-विभाग

राजकीय महाविद्यालय, कोटा

वर्ष - 2014

समर्पण

करातमोदकं सदा विमुक्तिसाधकं,

कलाधरावतंसकं विलासिलोकरञ्जकम्।

अनाथकैकनायकं विनाशितेभदैत्यकं,

नताशुभाशुनाशकं नमामि तं विनायकम्॥

शोध प्रमाण-पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि शोधकर्त्री सीमा मीणा ने संस्कृत साहित्य के अन्तर्गत **'विन्ध्यवासिनीविजयमहाकाव्यम् का समीक्षात्मक अध्ययन'** शीर्षक शोध-प्रबन्ध में कोटा विश्वविद्यालय, कोटा की पीएच. डी. की उपाधि हेतु का गहराई से अध्ययन व विश्लेषण करते हुए अपनी मौलिक उद्भावनाएँ प्रस्तुत की है।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध सीमा मीणा की मौलिक कृति है, इन्होंने दो सौ दिनों से अधिक अवधि तक निरन्तर मेरे सम्पर्क में रहकर यह अनुसन्धान कार्य सम्पन्न किया है। मैं इस शोध-प्रबन्ध को पीएच. डी. की उपाधि के लिए संस्तुत करती हूँ।

शोध निर्देशिका

डॉ. (श्रीमती) हेमलता लोया

उपाचार्य

राजकीय महाविद्यालय, कोटा (राज.)

प्राक्कथन

जयन्ति ते सुकृतिनः रससिद्धाः कवीश्वराः।
नास्ति येषां यशः काये जरामरणजं भयः॥

कवि की तुलना प्रजापति से भी की जाती है। जिसकी काव्य सृष्टि जगत् की कृति से हटकर होती है –

अपारे काव्य संसारे कविरेकः प्रजापतिः।
यथास्मै रोचते विश्वं तथेदं परिवर्तते॥

संस्कृत भाषा भारतीयों के लिये वस्तुतः प्राणवाहिनी धारा है। भारतीय मनीषा का समस्त चिन्तन, मनन तथा लौकिक, अलौकिक सभी अनुभूति संस्कृत भाषा में समाहित है। संस्कृत भाषा भारत राष्ट्र का गौरव है क्योंकि संस्कृत न केवल भाषा है। अपितु भारत का जीवन–दर्शन भी है।

संस्कृत काव्य–धारा वैदिक काल से लेकर आधुनिक युग तक अजस्त्र रूप से प्रवाहमान रही है। आधुनिक युग को संस्कृत के रचनाकाल की दृष्टि से **'स्वर्णयुग'** कहा जा सकता है, क्योंकि इस समय संस्कृत साहित्य में एक ओर तो यात्रावृत्त, संस्मरण, रेडियोरूपक, नृत्य नाटिका, गीति नाट्य आदि नवीन विधाओं में साहित्य सर्जन हो रहा है, तो दूसरी ओर महाकाव्य, खण्डकाव्य गीतिकाव्य, नाटक तथा आख्यायिका आदि प्राचीन विधाओं के लक्षणों में युगानुरूप कुछ परिवर्तन करके उन्हें नये स्वरूप में प्रस्तुत किया जा रहा है। इन प्राचीन विधाओं में सबसे प्रमुख विधा है महाकाव्य विधा। महाकाव्य–विधा में

लौकिक संस्कृत साहित्य में हम देखते है कि महाकाव्य किसी पौराणिक, नायक, देवता, क्षत्रिय आदि पर आधारित होते थे। इनमें ऐतिहासिक या पौराणिक कथावस्तु का सन्निवेश होता था। शृंगार, शान्त, वीर मे से कोई एक रस अङ्गीरस होता था। वही आधुनिक महाकाव्यों में ये लक्षण कुछ परिवर्तित हो गये है। यहाँ नायक कोई नायिका, समाज सुधारक, क्रान्तिकारी नेता इत्यादि भी हो सकता है। विषयवस्तु की दृष्टि से भी परिवर्तन दृष्टिगोचर हो रहा है। इस परिवर्तन में हम देखते है कि पौराणिक व ऐतिहासिक कथावस्तु के साथ-साथ आधुनिक कथावस्तु का भी संयोजन किया जा रहा है, समसामयिक विषयों को कवि अपने काव्यों में प्रस्तुत कर रहा है। रस की दृष्टि से भी पर्याप्त परिवर्तन दृष्टिगोचर होता है। शृंगार, वीर, शान्त के साथ भक्ति आदि अन्य रस भी अङ्गीरस के रूप में महाकाव्यों में प्रतिष्ठित हो रहे है।

अनेक कालजयी काव्यकृतियों की रचना द्वारा संस्कृत भाषा साहित्य की श्रीवृद्धि करने वाले वसन्त त्र्यम्बक शेवड़े कृत षोडशसर्गात्मक नारी चित्रण प्रधान 'विन्ध्यवासिनीविजयम्' महाकाव्य इसी प्रकार के युगानुरूप कुछ परिवर्तित महाकाव्य-लक्षणों वाला आधुनिक महाकाव्य है। इसमें कवि ने परम्परागतता तथा आधुनिक शैली का सम्मिश्रण प्रस्तुत किया है।

इस महाकाव्य में माँ दुर्गा के विविध रूपों का वर्णन किया गया है माँ की प्रेरणा से ही कृष्ण कंस जैसे आततायी का वध करने में समर्थ हुए है। पुरूष प्रधान इस समाज में कवि ने नारी को नायकत्व प्रदान करने वाले इस महाकाव्य के प्रणयन में अपनी अलौकिक प्रतिभा का परिचय प्रस्तुत किया है। यह

महाकाव्य मार्कण्डेय पुराण के दुर्गासप्तशती अंश से लिया गया है इसमें कवि की देवी के प्रति अगाध श्रद्धा, निष्ठा एवं अविचल विश्वासमयी भक्ति प्रदर्शित है।

ऐसे उदात्त वैशिष्ट्य से युक्त **'विन्ध्यवासिनीविजयम्'** महाकाव्य को जब मुझे एम. फिल्. के लघु शोधप्रबन्ध **'अपराजितावधू महाकाव्य'** का समीक्षात्मक अध्ययन पर कार्य करने के दौरान पढ़ने का अवसर मिला, तो मेरी इस महाकाव्य पर शोधकार्य करने की रूचि जाग्रत हुई। शोधकार्य हेतु जब मैंने डॉ. (श्रीमती) हेमलता लोया उपाचार्य राज. महा. कोटा से निवदेन किया तो, उन्होंने निर्देशिका के रूप में अपनी सहमति सहर्ष प्रदान कर दी।

'विन्ध्यवासिनीविजयमहाकाव्यम्' का समीक्षात्मक अध्ययन नामक इस शोध-प्रबन्ध को पाँच खण्डों में विभक्त किया गया है।

प्रथम खण्ड -

के प्रथम अध्याय में वसन्त त्र्यम्बक शेवड़े जी का पूर्ण परिचय प्रस्तुत किया गया है इस अध्याय में उल्लखित सामग्री श्री. वी. के. नूलकर पूना (महाराष्ट्र) से व्यक्तिगत सम्पर्क द्वारा प्राप्त जानकारी एवं कवि द्वारा लिखित ग्रन्थों में प्राप्त कवि-परिचय के आधार पर प्रस्तुत की गई है। महाकवि के कृतित्व पर भी सविस्तार प्रकाश डाला गया है। **द्वितीय अध्याय** में **'विन्ध्यवासिनी विजयम्'** महाकाव्य के 16 सर्गो का क्रमशः परिचय प्रस्तुत किया गया है। ताकि महाकाव्य की सम्पूर्ण विषयवस्तु का सम्यक रूप से परिचय प्राप्त हो सके।

द्वितीय खण्ड -

'काव्यशास्त्रीय परम्परा में प्राचीन तथा आधुनिक महाकाव्यों का स्वरूप' के प्रथम अध्याय में संस्कृत साहित्य के प्रथम महाकाव्य रामायण से लेकर कालिदास परवर्ती, कालिदास पूर्ववर्ती महाकाव्यों का सम्यक् परिचय प्रस्तुत किया गया है। द्वितीय अध्याय आधुनिक काल 18वीं सदीं से लेकर अब तक के काल में कवियों द्वारा रच गये महाकाव्यों का वर्णन किया गया है। सत्यव्रत शास्त्री, रेवाप्रसाद द्विवेदी, 'अभिराज' राजेन्द्र मिश्र इत्यादि कवियों के काव्यो का सम्यक् परिचय प्रस्तुत किया गया है। तृतीय अध्याय में **'विन्ध्यवासिनीविजयम्'** का महाकाव्य की कसौटी पर सम्यक् परीक्षण करने के लिए काव्यशास्त्रियों द्वारा दिये गये महाकाव्य लक्षणों का विमर्श किया गया है। चूकिं 'विन्ध्यवासिनीविजयम्' आधुनिक महाकाव्य है, अतः प्रो. अभिराज राजेन्द्र मिश्र, प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी द्वारा प्रदत्त अर्वाचीन महाकाव्य, लक्षणों पर भी विमर्श किया गया है। तत्पश्चात् समीक्ष्य **'विन्ध्यवासिनीविजयम्'** का महाकाव्यत्व प्रदर्शित किया गया है।

तृतीय खण्ड -

'विन्ध्यवासिनीविजयम् की काव्यशास्त्रीय समीक्षा' के प्रथम अध्याय समीक्ष्य महाकाव्य की कथावस्तु की सर्गानुसार समीक्षा प्रस्तुत की गई है। द्वितीय अध्याय में महाकाव्य के भावपक्ष को प्रस्तुत किया गया है। इसके अन्तर्गत चरित्र-चित्रण, कथानक-आकलन तथा रस-निरूपण किया गया है। तृतीय

अध्याय में काव्यशास्त्रीय मानदण्डानुसार कलापक्ष के अन्तर्गत छन्द, अलंकार वर्णन वैचित्र्य तथा गुण विवेचन की समीक्षा प्रस्तुत की गई है।

चतुर्थ खण्डः –

'विषय से सम्बद्ध अन्य रचनाओं के साथ तुलनात्मक अध्ययन' के प्रथम अध्याय में वसन्त त्र्यम्बक शेवड़े कृत **'विन्ध्यवासिनीविजयम्'** तथा 'अभिराज' राजेन्द्र मिश्र कृत **'जानकीजीवनम्'** का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। दोनों महाकाव्यों के साम्य एवं वैषम्य को निरूपित किया गया है। द्वितीय अध्याय में आधुनिक नारी प्रधान महाकाव्यों में **'विन्ध्यवासिनीविजयम्'** महाकाव्य का स्थान निर्धारण किया गया है। यहाँ पर आधुनिक संस्कृत साहित्य के प्रमुख नारी प्रधान दस महाकाव्यों का परिचय प्रस्तुत किया गया है तत्पश्चात् इन महाकाव्यों में **'विन्ध्यवासिनीविजयम्'** का स्थान निर्धारित किया गया है।

पञ्चम खण्डः –

'उपसंहार' के प्रथम अध्याय में **'विन्ध्वासिनीविजयम्'** का वैशिष्ट्य प्रतिपादित किया गया है। यह काव्य नवयुगबोध समन्वित, उदात्त मानवीय मूल्यों को अपनाने की प्रेरणा देने वाला होने के कारण संस्कृत साहित्य में विशिष्ट स्थान का अधिकारी है। द्वितीय अध्याय में **'विन्ध्यवासिनीविजयम्'** महाकाव्य के संस्कृत साहित्य मे अवदान को प्रस्तुत किया गया है।

प्रस्तुत शोध ग्रन्थ को पूर्ण करने में मुझे जिन विद्वानों का अपरिमित सहयोग मिला, उन सभी के प्रति हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ। सर्वप्रथम स्वर्गीय वसन्त त्र्यम्बक शेवड़े जी का हृदय से आभार प्रकट करना मेरा परम कर्तव्य है, क्योकि उनकी नारी चरित्र प्रधान कृति और वह भी दैवीचरित प्रधान ने मुझे इस पर कार्य करने के लिए बहुत अधिक प्रेरित किया।

इस शोध-ग्रन्थ के दु:साध्य-कार्य को आरम्भ से लेकर समाप्ति तक सम्पूर्ण श्रेय मेरी शोध निर्देशिका डॉ. (श्रीमती) हेमलता लोया को जाता है जिन्होंने अपने उत्कृष्ट वैदुष्य, पारदर्शिनी प्रतिभा, दीर्घकालिक अध्यापनानुभव एवं शिष्य-वत्सलता से मुझे सदैव उपकृत किया है। अपनी ज्ञानरश्मि के द्वारा उन्होंने मेर अज्ञानतमस को दूर करने में जो सहृदयता दिखलाई उसके लिए मै अपनी हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त करती हूँ।

मैं राजकीय महाविद्यालय कोटा के संस्कृत विभागीय समस्त गुरूजनों के प्रति हृदय से आभार व्यक्त करती हूँ जिन्होंने मुझे इस कार्य मे सहयोग दिया। मैं इस शोध-प्रबन्ध के अध्ययन, त्रुटि परिमार्जन आदि में सहायता करने के लिए डॉ. राधेश्याम पाण्डे महोदय के प्रति भी धन्यवाद व्यक्त करती हूँ।

मैं अपने इस शोध-प्रबन्ध को प्रामाणिक एवं सही तथ्य उपलब्ध करवाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने वाले डॉ. वी के नूलकर (पूना-महाराष्ट्र) के प्रति भी कृतज्ञता एवं आभार व्यक्त करती हूँ। डॉ. वी. के. नूलकर ज्योतिष तथा तन्त्र शास्त्र के विद्वान है इनके द्वारा मुझे शेवड़े जी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर जानकारी उपलब्ध करवायी गयी।

इस कार्य को पूर्ण करने में राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान नई दिल्ली के पुस्तकालय के कर्मचारियों एवं महाविद्यालय के पुस्तकालयाध्यक्ष के प्रति भी हार्दिक आभार एवं कृतज्ञता व्यक्त करती हूँ।

अपने परम आदरणीय पिताजी श्री बिरधीलाल मीणा और स्नेहमयी माँ श्रीमती सुगना मीणा से प्राप्त संस्कार और शिक्षा के अभाव में ज्ञानार्जन के क्षेत्र में इस सीढ़ी तक पहुँच पाना सम्भव नहीं था। माता-पिता के प्रति कृतज्ञता के भाव ऐसे भाव है जिन्हें शब्दों में आबद्ध नहीं किया जा सकता है उनके स्नेह ने सदैव मेरा मार्गदर्शन किया है अतः मै उनसे कभी ऋण मुक्त नहीं हो सकती। मैं अपने जीजाजी बी. एस. मीणा, दीदी प्रेमलता एवं भैया चन्द्रशेखर मीणा के प्रति आभार प्रकट करती हूँ, जिनकी सतत प्रेरणा मुझे इस शोध ग्रन्थ को पूर्ण करने के लिये मिलती रही है।

अपने सहयोगी शोधकर्त्री सरर्वेश अग्रवाल, वर्षा जैन का भी आभार व्यक्त करना चाहूंगी क्योकि उन्होंने विशेष अभिरूचि लेते हुए इस शोध-कार्य को पूर्ण करने में अपना अमूल्य समय व सुझाव दिये।

संस्कृत का टंकण कार्य अपेक्षाकृत कठिन कार्य है अनेक बार संशोधन करने के पश्चात् भी इसमें त्रुटियाँ रहना स्वाभाविक है मैं इस शोध प्रबन्ध के टंकणकार श्री दीपक मुदगल के प्रति आभार प्रकट करती हूँ और अन्त में इस शोध-ग्रन्थ को पूर्ण करने में प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से सहयोग करने वाले सभी लोगों का मैं हृदय से आभार प्रकट करती हूँ।

प्रस्तुत शोध ग्रन्थ को सर्वाङ्गपूर्ण होने का दम्भ मैं नहीं भर सकती। मेरी मति क्षुद्र है कवि वसन्त त्र्यम्बक शेवड़े का **'विन्ध्यवासिनीविजयम्'** महाकाव्य विशाल महासागर के समान है। तथापि मैंने इस महासागर से रत्न चुनने का यथा सम्भव प्रयास किया है। सुधी परीक्षकों से प्रार्थना करती हूँ कि वे मुझ अल्पज्ञा छात्रा की त्रुटियों को क्षमा करने की कृपा करें। इस विषय में **'गच्छतः स्खलनं क्वापि भवत्येन प्रमादतः'** इस उक्ति के अनुसार मेरी त्रुटियों को क्षमा करने की कृपा करें।

शोधकर्त्री

सीमा मीणा

अनुक्रमणिका

खण्ड/अध्याय	विषय - वस्तु	पृष्ठ
प्रथम खण्ड	**व्यक्तित्व एवं कृतित्व**	
प्रथम अध्याय	महाकवि वसन्त त्र्यम्बक शेवड़े: परिचय	1
द्वितीय अध्याय	'विन्ध्यवासिनीविजयम्' की सर्गानुसारी कथावस्तु का सामान्य परिचय	15
द्वितीय खण्ड	**काव्यशास्त्रीय परम्परा में प्राचीन तथा आधुनिक महाकाव्यों का स्वरूप**	
प्रथम अध्याय	प्राचीन महाकाव्यों का स्वरूप	37
द्वितीय अध्याय	आधुनिक महाकाव्यों का स्वरूप	51
तृतीय अध्याय	प्राचीन एवं आधुनिक काव्यशास्त्रीय लक्षणों के आधार पर 'विन्ध्यवासिनीविजयम्' का महाकाव्यत्व	71
तृतीय खण्ड	**'विन्ध्यवासिनीविजयम्' की काव्यशास्त्रीय समीक्षा**	
प्रथम अध्याय	'विन्ध्यवासिनीविजयम्' कथावस्तु की समीक्षा	90

खण्ड/अध्याय	विषय-वस्तु	
द्वितीय अध्याय	'विन्ध्यवासिनीविजयम्' महाकाव्य का भावपक्ष	106
	1. कथानक – आकलन	106
	2. चरित्र – चित्रण	109
	3. रस–निरूपण	125
तृतीय अध्याय	**'विन्ध्यवासिनीविजयम्' महाकाव्य का कलापक्ष**	141
	1. अलंकार योजना	141
	2. छन्द योजना	157
	3. वर्णन वैचित्र्य	167
	4. गुण विवेचन	178
चतुर्थ खण्ड	**विषय से सम्बद्ध अन्य रचनाओं के साथ तुलनात्मक अध्ययन**	
प्रथम अध्याय	वसन्त त्र्यम्बक शेवड़े कृत 'विन्ध्यवासिनीविजयम्' और 'अभिराज' राजेन्द्र मिश्र कृत 'जानकीजीवनम्' का तुलनात्मक अध्ययन	186

खण्ड/अध्याय	विषय-वस्तु	
द्वितीय अध्याय	आधुनिक नारी प्रधान महाकाव्यों में 'विन्ध्यवासिनीविजयम्' का स्थान	210
पंचम खण्ड	**उपसंहार**	
प्रथम अध्याय	'विन्ध्यवासिनीविजयम्' का वैशिष्ट्य	247
द्वितीय अध्याय	संस्कृत साहित्य को 'विन्ध्यवासिनीविजयम्' की देन	256
	सन्दर्भ ग्रन्थ सूची	261

प्रथम अध्याय

व्यक्तित्व एवं कृतित्व

जीवन के परम लक्ष्य पुरुषार्थ की प्राप्ति के लिए तीन मार्ग बताए गये है- ज्ञानमार्ग, कर्ममार्ग और भक्तिमार्ग। इन तीनों मार्गों में से भक्तिमार्ग को सर्वसुलभ और सर्वसुगम होने के कारण सर्वोतम माना जाता है। आचार्य नारद ने स्पष्ट कहा है -

'भक्तिरेव गरीयसी तदेव साध्यताम्।'

विशेषत: आज कलिकाल में भक्ति सर्वाधिक सुलभ है, युगानुरुप है। महाकवि वसन्त त्र्यम्बक शेवड़े द्वारा विरचित **'विन्ध्यवासिनीविजयम्'** नामक महाकाव्य में कवि ने सर्वप्रथम निवेदन में भक्तिपूर्वक देवगणों की आराधना की है -

नीलाम्भोजप्रतिमनयनां कुङ्कुमोद्नासिभालां।
बालादित्यद्युतिमधिगलं विस्फुरद्रत्नमालाम्

(1)

यामन्तन्तभुवनैक नायिकामामनन्ति मुनयो मनीषिण:।
तामहं मनसि नन्दनन्दिनीं विन्ध्यशैलनिलयां विभावये॥

(4)

स्पष्टतया कवि विनीत भक्ति परायण व्यक्तिविशिष्ट है। महाकवि वसन्त त्र्यम्बक शेवड़े जी के जीवन चरित के विषय में जो सामग्री प्राप्त हुई वह निम्नाकिंत प्रकार से प्रस्तुत की जा सकती है।

कविवर वसन्त त्र्यम्बक शेवड़े जी ने अपनी कृति **'विन्ध्यवासिनीविजयम्'** महाकाव्य के आरम्भ में स्वपरिचय प्रस्तुत किया है उसी के आधार पर उनके व्यक्तित्व का निरूपण यहाँ किया जा रहा है –

महाकवियों का जन्म सांसारिकों के कल्याणार्थ ही होता है। महाकवि वसन्त त्र्यम्बक शेवड़े दक्षिण भारत के हैं। महाराष्ट्र का सतारा नगर छत्रपति शिवाजी से सम्बन्धित है। इस नगर को शिवाजी के वंशजो की राजधानी होने का गौरव प्राप्त है। छत्रपति शिवाजी के राजदरबार में शेवड़े कुल के लोग सम्मानित पदों पर आसीन थे। मराठा साम्राज्य के समाप्त हो जाने पर शेवड़े कुल के लोगों ने अंग्रेजो के अधीन नौकरी आरम्भ कर दी थी। वसन्त त्र्यम्बक शेवड़े के 'पितामह' अंग्रेजी के विद्वान थे। वे मध्यप्रदेश के राजकीय विद्यालय में प्रधानाध्यापक के पद पर नियुक्त थे। उसी समय से शेवड़ेवंशीय लोग विदर्भ देश के निवासी हो गये जो पहले मध्यप्रदेश में था किन्तु इस समय महाराष्ट्र के अन्तर्गत है।

शेवड़े जी के पिता का नाम श्री त्र्यम्बक लक्ष्मण शेवड़े था। वे बी.ए., एल. एल. बी. थे। श्री लक्ष्मण शेवड़े प्रारम्भ में अमरावती में अधिवक्ता (एडवोकेट जनरल) बन गये तत्पश्चात् न्यायमूर्ति (हाईकोर्ट जज) पद को सुशोभित किया।

कवि की माता का नाम विमलाबाई था जो बाईनगर के बखले कुल में उत्पन्न हुई थी। कविवर शेवड़े जी के मातामह श्री सदाशिव रामचन्द्र बखले बम्बई के उच्च न्यायालय के प्रसिद्ध अधिवक्ता (एडवोकेट) थे।

शेवड़े जी का जन्म मुम्बई में अपने मातामह के घर 2 अक्टूबर 1917 में हुआ वसन्त त्र्यम्बक शेवड़े अपने पिता के द्वितीय पुत्र थे।

शेवड़े जी की प्रारम्भिक शिक्षा अमरावती में हुई और बाद में नागपुर में पूर्ण हुई। सन् 1941 में इन्होनें नागपुर विश्वविद्यालय से एम. ए. (अंग्रेजी माध्यम) परीक्षा ससम्मान उत्तीर्ण की। तत्पश्चात् विश्वविद्यालय से सम्बद्ध मौरिस कॉलेज में अध्यापन किया।

दृक पत्रिका (13) मे बीनासिंह द्वारा लिखे गये लेख 'वसन्त त्र्यम्बक शेवड़े का आधुनिक संस्कृत साहित्य को योगदान' के अनुसार अध्यापन के पूर्व शेवड़े जी ने प्राचीन पद्धति से सुप्रसिद्ध वैयाकरण श्री बाबाशास्त्री घाटे, श्री केशव गोपाल गर्दे तथा आचार्य गोविन्द बापट के सान्निध्य में व्याकरण एवं न्याय का सम्यक् परिशीलन किया।

भगवती के परम उपासक महाकवि पण्डित श्री वसन्त त्र्यम्बक शेवड़े विविध विषयों के विशेषज्ञ होने के कारण लोकोत्तर चरित्र वाले महापुरूषों की श्रेणी में अग्रणी हैं। आप में निर्भरता, सदाशयता, व्यवहारकुशलता आदि अनेक ऐसे सद्गुण थे जिनके कारण आप सांसारिक विषय वासनाओं से सर्वथा निर्लिप्त रहते हुए भी अत्यन्त सामाजिक तथा सहृदय थे।

महाकवि के निकट सम्बन्धी श्री वी. के. नूलकर जो कि संस्कृत के विद्वान तथा तन्त्र एवं ज्योतिष के प्रकाण्ड पण्डित है, से पूना में व्यक्तिगत रूप से मिलने पर उन्होंने बताया कि शेवड़े जी असाधरण प्रतिभा के धनी तथा परम शैव थे। वह नागपुर में भी अपने घर से अलग ही रहते थे। शेवड़े जी का पूर्व प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी सम्मान करते थे। मोहन भागवत (राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के सहसंचालक) भी शेवड़े जी के घनिष्ठ मित्र थे।

वसन्त त्र्यम्बक शेवड़े जी की प्रारम्भिक रचनाएँ मातृभाषा मराठी में ही थी परन्तु कुछ समय के पश्चात् वे संस्कृत में भी काव्य रचना करने लगे। शेवड़े जी काशीवास हेतु 1978 ई. में काशी आये और ब्रह्मानन्द त्रिपाठी के पारिवारिक सदस्य के रूप में रहने लगे। त्रिपाठी जी आयुर्वेद कॉलेज बनारस के प्रधानाचार्य थे। ब्रह्मानन्द त्रिपाठी शेवड़े जी को अपना गुरू मानते थे तथा कवि भी उन्हे अपने पुत्र की तरह स्नेह करते थे।

शेवड़े जी काफी ऊँची आवाज में बोलते थे उस समय वे घासीटोला में रहते थे उनकी ध्वनि इतनी तीव्र थी कि कोई व्यक्ति आधा किलोमीटर दूर से भी सुन सकता था।

शेवड़े जी को काशी विश्वनाथ मन्दिर समिति में प्रेसीडेन्ट का मान प्राप्त था। उन्होने अपने पूरे जीवन में कोई भी सरकारी पद ग्रहण करना स्वीकार नहीं किया था। वे अपने जीवनकाल में अनेकशः विदेश यात्रा पर भी गये। शेवड़े जी अपने अन्तिम समय में पूना आना चाहते थे किन्तु अपना अन्तिम संस्कार काशी

में ही चाहते थे किन्तु देव को यह स्वीकार नहीं था। परम कष्ट का विषय है कि 5 जुलाई 1999 को महाकवि शेवड़े शिवतत्व में विलीन हो गये। ऐसे प्रतिभासम्पन्न सरस्वती के वरद पुत्र जगन्माता एवं शिव के परमभक्त महाकवियों से साहित्य जगत् गरिमामय है इनके निधन से संस्कृत साहित्य की अपूरणीय क्षति हुई है। महाकवि शेवड़े विशिष्ट व्यक्तित्व सम्पन्न प्रतिभाशाली कवि थे –

'काव्यं तु जायते जातु कस्यचित् प्रतिभावतः।'

कवियों में भी कुछ कवि लौकिक प्रसिद्धि और अर्थ प्राप्ति आदि के प्रयोजन से कवि कर्म में प्रवृत होते हैं किन्तु महाकवि वसन्त त्र्यम्बक शेवड़े जी लौकिक ऐषणाओं से सर्वथा मुक्त निर्व्याज भक्ति परायण कवि थे। इस प्रकार की काव्य सृष्टि दुर्लभ है। यदि कदाचिद् शेवड़े जी आज इस धरती पर होते तो उनकी लेखनी से और भी श्रेष्ठ कविताओं का सृजन होता परन्तु इस स्थिति को देखकर भृर्तृहरि के श्लोक के अनुसार कहना पड़ता है– **'विधि रहो बलवान् इति मे मतिः।'**

कृतित्व

धर्मार्थकाममोक्षेषु वैचक्षण्यं कलासु च।
करोति कीर्तिं प्रीतिं च साधुकाव्य निबन्धनम्॥

क्रियाशक्ति व्यक्ति मात्र की विशिष्ट शक्ति है। इच्छा शक्ति, ज्ञानशक्ति के समान ही क्रिया शक्ति समस्त मानवों में विद्यमान होती है किन्तु सामान्य मनुष्य की कृति और कवि की कृति में बहुत अन्तर होता है। कवि की सामर्थ्य तो विधाता के समान ही नवीन सृष्टि की सर्जना क्षमता है। कवि सामान्य मानव न होकर काव्य की रचना करने वाला होता है। काव्य को कवि का कर्म ही कहा गया है –

'कवे! कर्म इति काव्यम्'।

राजशेखर के मतानुसार कवि शब्द की निष्पत्ति कवृ वर्णे–इस धातु से 'ई' प्रत्यय पूर्वक हुई है। इस प्रकार लोकोत्तर वर्णन में निपुण कवि के कर्म को काव्य कहते है।

काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये।
सद्यः परनिर्वत्तये कान्ता सम्मितयोपदेशयुजे॥

काव्य की उक्ति साधारण नहीं होती अपितु विशिष्टता लिये हुए होती है अधिक चमत्कृत होती है। कवि ऋषि होता है और ऋषयोमन्त्र द्रष्टारः के अनुसार कवि दर्शन और वर्णन दोनों में निपुण होता है, इसीलिये कवि का कृतित्व सामान्य

मानव के कृतित्व से विशिष्ट होता है।

लब्ध प्रतिष्ठ कवि वसन्त त्र्यम्बक शेवड़े का आधुनिक संस्कृत साहित्य में महत्वपूर्ण विशिष्ट स्थान रहा है। आपने काशीवास करते हुए अपना अधिकतर समय शास्त्रचिन्तन और काव्यनिर्माण में व्यतीत किया।

संस्कृत साहित्य की सभी विधाओं में समान रूप से अधिकार रखते हुए भी आप पाश्चात्य साहित्य के भी मर्मज्ञ विद्वान है। इतिहास, भूगोल जैसे विषयों पर भी शेवड़े जी का समान अधिकार है, जिसे देखकर सामाजिक चकित रह जाते है। ऐसे अद्‌भुत प्रतिभा सम्पन्न महाकवि की कतिपय कृतियों का परिगणन यहॉ प्रस्तुत है –

(1) शुम्भवधमहाकाव्यम्

महाकवि वसन्त त्र्यम्बक शेवड़े विशद कल्पना के शिल्पी है इस महाकाव्य में कुल 816 श्लोक है तथा 14 सर्ग है। महाकवि ने अपनी कल्पना के द्वारा कथावस्तु में समुचित विस्तार किया है। **'विन्ध्यवासिनीविजयम्'** महाकाव्य की तरह इस महाकाव्य में भी विविध वृत्तों का प्रयोग हुआ है। जिससे कवि के छन्द विषयक ज्ञान का परिचय मिलता है, इस महाकाव्य में कवि ने कहीं भी अनुष्टुप छन्द का प्रयोग नहीं किया है। संस्कृत वाङ्‌मय में दुर्गा के चरित्र का आश्रय लेकर लिखा गया यह महाकाव्य सर्वथा अनुच्छिष्ट, अस्पृष्ट, सारस्वत वैभव का उदाहरण प्रस्तुत करता है।

(2) विन्ध्यवासिनीविजयमहाकाव्यम्

षोडश सर्गात्मक इस महाकाव्य में 1039 पद्य हैं। यह महाकाव्य मार्कण्डेय पुराण के दुर्गासप्तशती अंश से लिया गया है। इसमें कवि ने दैवी के प्रति अगाध श्रद्धा, निष्ठा एवं अविचल विश्वासमयी भक्ति प्रदर्शित की है। यह नारी प्रधान महाकाव्य हैं इसमें विन्ध्यवासिनी को नायकत्व (प्रमुख पात्र) प्रदान किया गया है। इस महाकाव्य में वैदभी रीति और प्रसादगुण की प्रचुरता प्राप्त होती है जो पाठक और श्रोता दोनों के मन को पुलकित कर देती है। इस काव्य में नारी की महिमा, गरिमा, प्रतिष्ठापना का चित्रण, विन्ध्याचल के स्वभाव, गाम्भीर्य, जीवन दर्शन, महाराज उग्रसेन का दानवर्णन, आश्रम संस्कृति, यज्ञ, कूटनीति, देववाणी, प्रकृति चित्रण आदि विषय निगूढ़ है जो इसकी महत्ता को बढ़ाते है।

'विन्ध्यवासिनीविजय' महाकाव्य का आधुनिक संस्कृत साहित्य मे विशिष्ट स्थान है। इस महाकाव्य के लिए शेवड़े जी को साहित्य अकादमी पुरस्कार से भी सम्मानित किया गया है।

(3) रघुनाथतार्किक शिरोमणिचरितम्

'रघुनाथतार्किकशिरोमणि' सुप्रसिद्ध नैयायिक थे। इनके चरित का प्रथम प्रकाशन सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय के सरस्वती सुषमा नामक पत्रिका में हुआ। उसके पश्चात् यह कृति स्वतन्त्र पुस्तक के रूप में प्रकाशित हुई।

(4) श्रीमोतीबाबाजामदामचरितम्

यह एक खण्ड काव्य है। यह लोकोत्तरलक्षण लक्षित सन्तचरितात्मक काव्य है इसमें एक प्रसिद्ध सन्त मोतीबाबा का चित्रण हुआ है। इसका प्रकाशन नागपुर से हुआ है।

(5) श्रीकृष्णचरितम्

यह नागपुर से प्रकाशित प्रसन्न मधुर वैदर्भी रीति से मण्डित शतश्लोकात्मक खण्डकाव्य है। इसमें कृष्ण का चित्रण किया गया है।

(6) अभिनवमेघदूतम्

महाकवि कालिदास ने मेघदूत नामक अत्यन्त प्रसिद्ध खण्डकाव्य की रचना की है। शेवड़ेजी का यह 'अभिनवमेघदूतम्' कालिदास की इस प्रसिद्ध कृति से प्रतिस्पर्धा करने वाला खण्ड काव्य है। इसको कवि ने एक मास के अन्दर ही पूर्ण कर लिया था। इसकी कथावस्तु ने कालिदासीय मेघदूत की कथावस्तु को भी पीछे छोड़ दिया है। यह खण्डकाव्य दो भागों में विभक्त है–

पूर्वमेघ और उत्तरमेघ पूर्वमेघ में श्लोकों की संख्या 90 है तथा उत्तरमेघ में कुल श्लोको की संख्या 68 है। इस कृति में विप्रलम्भ शृंगार का मनोरम चित्रण हुआ है। कवि ने सरस और उदात्त भावों से पूर्ण छन्दों की रचना की है, जिससे शेवड़े जी की स्वाभाविक और लोकोत्तर कवित्त्व शक्ति का परिचय मिलता है। जो जगन्माता की कृपा कटाक्ष से ही सुलभ हुआ है।

(7) दुर्गास्तवमञ्जूषा

973 श्लोकात्मक इस कृति में 36 स्तोत्र हैं, जिनमें स्तोत्रकर्त्ता की स्वाभाविक भक्ति, स्वच्छन्द रूप से विचरण करती हुई पाठकों के हृदय को अलौकिक सुख की अनुभूति कराती है।

शेवड़े जी **'दुर्गास्तवमञ्जूषा'** में माँ दुर्गा के प्रति विनम्रता प्रदर्शित करते हुए कहते हैं – ''मैं वसन्त नामक मन्दधी, पार्वती की स्तुति करने उसी प्रकार उद्यत हो रहा हूँ जिस प्रकार दुर्बल पक्षीशावक अन्तरित अवगाहन की (वार करने की) कामना करता है'' –

स्तोतुमद्रितनयां प्रवर्तते मन्दधीरिह वसन्तनामकः।
अन्तरीक्षमगाहितुं यथा दुर्बलोऽपि कलाविङ्कशावकः॥

(प्रारम्भिक स्तवः श्लोक, 9)

(8) श्रीदेवदेवेश्वरमहाकाव्यम्

'श्रीदेवदेवेश्वरमहाकाव्यम्' महाकवि का तृतीय महाकाव्य है। यह महाकाव्य श्री देवेश्वर संस्थान पर्वती व कोयरुड पुणे, महाराष्ट्र संस्थान के प्रयास से 1993 में प्रकाशित हुआ। 'श्रीदेवदेवेश्वर' ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर विरचित पञ्चदश सर्गात्मक 'वीररस' प्रधान महाकाव्य है।

मराठा शासकों से सम्बद्ध कथानक पर आधारित इस महाकाव्य में भी शाक्तदर्शन का समुचित निदर्शन है। महाराष्ट्र में जगदम्बा के अनेक पीठ है जहाँ

वे विभिन्न नामों से अभिहित की जाती हैं - कहीं महालसा, कहीं रेणुका तो कहीं तुलजापुर की भवानी के नाम से प्रसिद्ध है,

महालसाख्यां क्वचिदादधाति यत्र क्वचिद्विन्दति रेणुकाख्याम्।
लक्ष्मीस्वरूपा क्वचिदादिशक्तिः क्वचिद् भवानी तुलजापुरस्तथा॥

(श्री देवदेवेश्वर 1-15)

(9) वृतमञ्जरी

इसमें सौ से अधिक वृतों के लक्ष्य और लक्षणों का सरल भाषा में निर्देश किया गया है। इसमें उदाहरण रूप मे प्रस्तुत सभी पद्य भगवती की स्तुति से सम्बद्ध है। यह ग्रन्थकर्ता की विशिष्टता है क्योकि वे भगवती के परम् उपासक थे।

(10)छन्दज्ञानप्रकाशिका -

यह कृति निश्चय ही परम श्रेष्ठ है और असाधारण है इसकी प्रशंसा काशी के सभी विद्वानों ने की है। इसमें कवि ने छन्दों पर विशेष रूप से प्रकाश डाला है।

(11)स्फोटतत्वनिरूपणतत्त्वप्रकाशिका -

यह व्याकरण शास्त्र से सम्बन्धित रचना है। इसमें व्याकरण शास्त्र के स्फोटतत्व का निरूपण हुआ है जिसका विवेचन भर्तृहरि के 'वाक्यपदीय' में भी

प्राप्त होता है। शेवड़ेजी ने स्फोट तत्व के रहस्य को हस्तामलकवत सुस्पष्ट कर दिया हैं। यह कृति श्री शेषकृष्ण विरचित 'स्फोट तत्व निरूपण' कृति की व्याख्या हैं जिसमें उसके विशद् अर्थो का बोध कराया गया है।

इस प्रकार महाकवि की कालजयी लेखनी से **'विन्ध्यवासिनीविजयम्'** **'शुम्भवध'** तथा **'देवदेवेश्वरचरितम्'** नामक तीन महाकाव्य **'रघुनाथतार्किकशिरोमणिचरितम्'**, **'श्रीकृष्णचरितम्'** तथा **'श्रीमोतीबाबाजामदारचरितम्'** नामक तीन खण्ड काव्य, वृत्तमञ्जरी नामक छन्दोविषयक लक्षण ग्रन्थ **'दुर्गास्तवमञ्जूषा'** नामक भक्तिपरक मुक्तक काव्य एवं अन्य अनेक विकीर्ण रचनाएँ उद्भूत हुई है।

शेवड़ेजी ने **'अभिनवमेघदूतम्'** में लिखा है –

देव्याः कण्ठाभरणपदवी शारदाया दधानः,
ख्यातिं यातः सरसललितै काव्यबन्धैर्वसन्तः।
आचामन्तिश्रवणपुटकै; सूय्यो मीलिताक्षाः
साक्षाद्द्राक्षामधुरिमंजूषां यस्य वाचा विलासान्॥

(अभिनवमेघदूतम्-68)

अर्थात् भगवती सरस्वती की कण्ठाभरण पदवी (गलहार रस) को प्राप्त, महाकवि वसन्त त्र्यम्बक शेवड़े अपने सरस तथा ललित काव्य रचनाओं द्वारा पर्याप्त प्रसिद्धि को प्राप्त हो गये है, जिनके द्राक्षा (मुनक्का) की मधुरता से युक्त काव्यगत वाग्विलासों के साहित्य रस का ऑख मूंदकर आस्वादन करने में

कुशल सहृदय विद्वान अपने श्रवणपुटकों (कानरूपीप्यालों) से इच्छानुसार पान करते रहते हैं।

'अभिनव कालिदास' की उपाधि से सम्मानित, उत्तप्रदेशसंस्कृत अकादमी, मध्यप्रदेश संस्कृत अकादमी तथा साहित्य अकादमी के अनेक उच्च स्तरीय पुरस्कारों से पुरस्कृत सुकवि शेवड़े के रचना संसार में भारतीय दर्शन की पृष्ठभूमि मे उच्चस्तरीय साहित्य के दर्शन होते है, शाक्त दर्शन की विविधमान्यताओं को **'विन्ध्यवासिनीविजयम्'**, **'शुम्भवध'**, **'वृत्तमञ्जरी'** तथा **'दुर्गास्तवमञ्जूषा'** आदि ग्रन्थों में सुगमता से देखा जा सकता है।

इनकी कृतियों में साहित्यशास्त्र के विविध मानको तथा रीति, गुण, औचित्य, वक्रोक्ति, अलंकारादि का समुचित सन्निवेश हैं।

'वृतमञ्जरी' नामक छन्दपरक लक्षण ग्रन्थ में उन्होंने स्वयं ही लक्षण तथा उदाहरण लिखा है। इन उदाहरणों मे दुर्गास्तुति की प्रधानता है।

महाकवि शेवड़े की रचनाओं पर वाल्मीकि, व्यास, कालिदास तथा भवभूति का प्रभाव झलकता है। वस्तुतः शेवड़ेजी ने उक्त महाकवियों की काव्य परम्परा को उत्तम रीति से आगे बढ़ाया है।

भारतीय तथा पाश्चात्य शिक्षा प्रणाली से शिक्षित तथा अनेक शास्त्रों के पारंगत पण्डित शेवड़ेजी का चिन्तन प्रौढ़ तथा लेखन परिमार्जित है जिनमें विविध शास्त्रों की मनोहारी पृष्ठभूमि परिलक्षित होती है। उनके कृतित्व का विवेचन करने

के अनन्तर असंदिग्ध रूप से कहा जा सकता है कि वसन्त त्र्यम्बक शेवड़ेजी का आधुनिक संस्कृत साहित्य में महत्वपूर्ण योगदान है।

द्वितीय अध्याय

'विन्ध्यवासिनीविजयम्' की सर्गानुसारी कथावस्तु का सामान्य परिचय

संस्कृत के सुविस्तृत काव्यजगत् में स्त्रीप्रधान महाकाव्यों की समृद्ध परम्परा प्राप्त होती है यथा विष्णुदत्तशर्मा कृत **'सौलोचनीयम्'**, आत्मरामशास्त्री प्रणीत **'सावित्रीचरितम्'**, श्रीनारायणशास्त्रीकृत **'उर्मिलीयम्'**, पूर्णचन्द्रशास्त्रीकृत **'अपराजितावधूमहाकाव्य'**, अभिराजराजेन्द्रमिश्र प्रणीत **'जानकीजीवनम्'** महाकाव्य इत्यादि। इसी परम्परा में वसन्तत्र्यम्बक शेवड़े कृत **'विन्ध्यवासिनीविजयम्'** महाकाव्य का भी महत्वपूर्ण स्थान है।

जगन्माता दुर्गा को कुलदेवता मानने वाले कुल में उत्पन्न होने वाले इस महाकवि ने मां दुर्गा की प्रेरणा से ही इस ग्रन्थ का प्रणयन किया है जो उनकी प्रतिभा को उजागर करता है। षोडशसर्गात्मक इस ग्रन्थ में 1039 पद्य है। यह महाकाव्य मार्कण्डेय पुराण के दुर्गासप्तशती अंश से लिया गया है। इसमें कवि की देवी के प्रति अगाध श्रद्धा, निष्ठा एवं अविचल विश्वासमयी भक्ति प्रदर्शित है।

इस महाकाव्य का सर्गानुसार वर्ण्य विषय इस प्रकार है –

प्रथम सर्ग

'विन्ध्याचलं प्रति नारदागमनम्' नामक प्रथम सर्ग में नारद के विन्ध्याचल पर आने का वर्णन किया गया है। महाकवि शेवड़े ने विन्ध्याचल को देवतात्मा कहा है। विन्ध्यनाम का यह पर्वतराज वनदेवताओं की निवासभूमि है यहां पर तपस्वियों के आश्रम हैं जो स्वर्ग की सीढ़ी के समान सुशोभित हैं।

इस सर्ग में विन्ध्याचल की प्राकृतिक सुषमा का वर्णन किया गया है। इस पर्वत को कुल पर्वतों का अग्रेसरत्व प्राप्त है। यहां पर श्रीनीलकण्ठेश्वर नाम का दिव्य शिवलिङ्ग सुशोभित है।

विन्ध्यपर्वत के पाद प्रदेश में रेवा नदी सुशोभित है जो चंचल कल्लोल करने वाली, संस्पर्श मात्र से लोगो की पीड़ा का हरण करने वाली नदी है। इस सर्ग मे गज को राजलक्ष्मी के चिह्न के रूप मे चित्रित किया है। समुद्र मन्थन के समय हालाहल विष के पान से पीड़ित भगवान शङ्कर की सेवा के लिए मलयानिल भी जिसके गौरव के लिए कुछ क्षण रूक कर व्यजनतुल्य कदली वनों को हिला कर पंखा करती हुई मलयानिल का सुन्दर वर्णन किया गया है।

विन्ध्याचल पर अनेक प्रपात हैं जो हर्षातिरेक से जयघोष करते हुए प्रतीत होते हैं। विन्ध्यप्रदेश में अनेक मृगसारमृग भी विद्यमान है इस प्रकार इस सर्ग में विन्ध्याचल की प्राकृतिक सुषमा का वर्णन किया है तथा ऐसे प्राकृतिक सुषमा से सुशोभित वातावरण में नारदागमन का वर्णन किया गया है।

द्वितीय सर्ग

'विन्ध्याचल नारद संवाद' नामक द्वितीय सर्ग में नारद के विन्ध्याचल के पास आकर वार्तालाप करने का चित्रण है। नारद को देखकर विन्ध्यपर्वत अतीव प्रसन्नता का अनुभव करता है। नारायण के स्मरण में सतत् रत नारदमुनि को दूर से ही देखकर विन्ध्य आसन से उठकर सेवकों को अर्ध्य देने का आदेश देते हैं।

नारदमुनि का अभिवादन करने के पश्चात् विन्ध्यगिरि नारद से वार्तालाप आरम्भ करते हुए कहते हैं – मैं स्वयं को धन्य मान रहा हूँ। हे सुरमुनि! आपका स्वागत है। आपके दुर्लभ दर्शन से मेरे नेत्र सफल हो गये हैं।

नारदमुनि अपना वार्तालाप आरम्भ करते हुए विन्ध्यगिरि को अपने त्रिभुवन पर्यटन करते हुए विष्णुलोक गमन, वहाँ लक्ष्मीनारायण के दर्शन करने पश्चात् शिव–पार्वती के दर्शन करने का वर्णन करते है।

अमरावती का वर्णन करने के पश्चात् नारदमुनि इन्द्र के अद्‌भुत ऐश्वर्य का वर्णन करते हुए इन्द्र के द्वारा विन्ध्याचल के अपमान की बात कहते हैं देवर्षि नारद से यह सुनकर कि देवराज इन्द्र ने अपनी सभा में मेरा अपमान किया है, विन्ध्याचल क्रोध से भर गया।

विन्ध्यगिरि के मन मे क्रोधाग्नि तो पहले से ही विद्यमान थी, नारद के वचनों से वह प्रचण्ड रूप से प्रज्वलित हो गई। जिस प्रकार तृणों में छिपी अग्नि

फूत्कार से प्रज्जवलित हो उठती है उसी प्रकार क्रोधाग्नि से विन्ध्यगिरि का विशाल विग्रह कॉपने लगा।

क्रोधित विन्ध्यगिरि ने देवर्षि नारद को सम्बोधित करते हुए कहा- हे मुनि! सुनो तुम शीघ्र ही इन्द्र के गर्व का नाश सुनोगे।

नारद से संक्षिप्त रूप से बात करके विन्ध्यगिरि मौन हो गये क्योकि मनीषीजन ज्यादा नहीं बोलते विन्ध्याचल तो स्वभाव से ही गम्भीर है।

तृतीय सर्ग

'मन्त्रविमर्शनाम' तृतीय सर्ग में सभी पर्वत मिलकर महेन्द्र से प्रतीकार करने के लिए विचार-विमर्श करते हैं। इस सर्ग में राजनीति का सुष्टु निरूपण हुआ है।

मलयगिरि कहते है जो पुरूष अपने बलाबल को बिना विचारे ही कार्य आरम्भ कर देता है वह दु:खी होता है और जीवनभर पश्चाताप करता हुआ पीड़ित होता है।

मलयगिरि के कथन के पश्चात् विन्ध्यगिरि बोलना आरम्भ करते हैं- उन्हे मलयगिरि के कथन से कष्ट हुआ फिर भी वे उनकी बात को उचित बताते हुए कहते है कि चतुरंगिणी सेना से शक्तिमान राजा भी नीति के बिना विजय प्राप्त करने में उसी प्रकार समर्थ नहीं होता है जिस प्रकार चिरयत्न से सिद्ध औषधि भी पथ्यविवर्जित होने पर प्रभाव रहित हो जाती है।

विन्ध्यगिरि आगे कहते है कि केवल बल से विजित शत्रु पुनः उत्थान प्राप्त कर लेता है किन्तु नीति के द्वारा वह दास के समान वशवर्ती हो जाता है जैसे मन्त्र बल से सर्प वशवर्ती हो जाता है।

बिना नीति के शक्ति सफल नही होती है और बिना शक्ति के केवल नीति भी निष्फल हो जाती है। राजा के लिए दोनो ही आवश्यक है जैसे रथ के लिए दोनो पहिए आवश्यक होते है। यदि स्वयं अपने कार्य को करने में समर्थ न हो तो उसे दूसरों के द्वारा सम्पन्न करा लेना चाहिए जिस प्रकार साँप को मारने के लिए चतुर व्यक्ति प्राघुणक की सहायता लेता है।

चतुर्थ सर्ग

'विन्ध्याचलोन्नमन' नामक चतुर्थ सर्ग में विन्ध्याचल के उन्नमन का भव्य एवं दिव्य चित्रण किया गया है। विन्ध्य का बढ़ना बलियज्ञ में वामन बने विष्णु के बढ़ने के समान ही था इस कौतुहल को देखने के लिए बालक और युवा ही नहीं अपितु जर्जर शरीर वाले वृद्ध भी यष्टि लेकर लड़खड़ाते हुए वहां आये।

इस उन्नमन के फलस्वरूप विन्ध्य पर निवास करने वाले हिरण, हाथी, मृग, शेर, पशु-पक्षी आदि पारस्परिक विरोध को त्यागकर एक कुटुम्ब के सदस्यों की भांति हो गये।

जब विन्ध्याचल आकाश में बढ़ने लगा तब चतुर्दिक त्राहि-त्राहि मच गयी। सूर्य और चन्द्रमा की गति रूक गई। रात्रि-दिन का क्रम विरमित हो गया। ऐसा

विंहगम दृश्य देखकर इन्द्र भी चिन्तित हो उठे और प्रतिकार का उपाय सोचने लगे। तत्पश्चात् नारद इन्द्र की सभा में प्रविष्ट होते हैं। इन्द्र नारद से इस विदन्ति के निवारण का उपाय पूछते है। नारदमुनि इसका उपाय भगवान से पूछने का निर्देश देकर अन्तर्धान हो जाते है।

पञ्चम सर्ग

'इन्द्रादीनां वैकुण्ठप्रयाण' नामक पञ्चम सर्ग मे इन्द्रादि देवगणों ने वैकुण्ठ पहुॅचकर त्रिभुवन नाथ विष्णु की स्तुति करना प्रारम्भ किया 'हे आर्तबन्धो! आप ही हम सबकी शरणस्थली हो। आप दुष्टों के संहारकर्ता हो, आप विविध अवतार धारण करते हो, एक हो किन्तु विविध रूपों में वर्णित हो शैव आपको शिव कहते हैं, वैष्णव आपको विष्णु कहते है जैसे अन्धे हाथी का वर्णन परस्पर विरोधी भिन्न रूपों में करते है उसी प्रकार विभिन्न दर्शन आपका वर्णन भिन्न रूपों में करते हैं।

देवताओं की स्तुति सुनकर भगवान रमेश ने उनके आगमन का कारण पूछा तब देवराज इन्द्र ने विन्ध्याचल के विस्तार से उत्पन्न संकट के बारे में भगवान विष्णु को अवगत कराया। भगवान विष्णु ने इन्द्र से कहा कि यह सब तुम्हारे कृत्य का ही परिणाम है अब तुम महर्षि अगस्त्य की शरण में जाओ। विन्ध्य उनका शिष्य है। अगस्त्य ही तुम्हारी सहायता कर सकते है। वे ही प्रवर्धमान विन्ध्यगिरि को खर्व बना सकते है।

कार्यसिद्धि का उपाय जानकर इन्द्र प्रसन्न हो गये तथा भक्तिपूर्वक

मधूसुदन विष्णु के चरणकमलों को प्रणाम करके इन्द्र ने अगस्त्य आश्रम के लिए प्रस्थान किया।

षष्ट सर्ग

'इन्द्रादीनां वाराणसी यात्रा नाम' षष्ठ सर्ग में वाराणसी का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। वाराणसी जाने से पूर्व इन्द्र सर्वप्रथम तीर्थराज प्रयाग पहुँचते है, वहां पर लोकरीति अनुसार सभी कार्य सम्पन्न करते है।

वाराणसी की महिमा का वर्णन करते हुए कवि ने कहा है कि वाराणसी परम रम्य है यह शिव की मुक्तिपुरी कही जाती है। इस असाधारण गौरवशाली नगरी में भाग्यहीनों के प्रवेश दुर्लभ हैं।

वाराणसी नाम की महिमा बताते हुए कहा गया है कि यह नगरी असी और वरूणा के अन्तराल मे विद्यमान है अतः इसका नाम वाराणसी है और प्रस्फुरित भव्य प्रकाश वाली होने के कारण इसे काशी भी कहा जाता है, यहां की दुकानों पर वैद्वर्य, माणिक्य, महेन्द्रनील प्रवाल आदि मौक्तिकों को देखकर विदेशी जन विस्मित हो जाते है।

काशी में वेदपाठी ब्राह्मणों की बहुलता है। यहां पर घनपाठी पदक्रमपाठी भी है किन्तु हजारों वैदिकों में संहितापाठ जानने वालो की गणना ही नही है। इसके पश्चात् कवि ने वाराणसी में इन्द्र आगमन से समुत्सुक लोगो, इन्द्र द्वारा दशाश्वमेघ घाट पर स्नान करने, विश्वेश्वर शंकर के दर्शन करने तथा अन्नपूर्णा

माँ के दर्शन करने का वर्णन किया है।

सप्तम सर्ग

'अगस्त्य दर्शन' नामक सप्तम सर्ग में गलित गर्व इन्द्र के द्वारा विन्ध्य गिरि के गुरु अगस्त्य के चरणों का आश्रय ग्रहण करने का वर्णन किया गया है।

अगस्त्यमुनि का आश्रम जाह्नवी नदी के तट पर स्थित है। जब इन्द्र इस पावन आश्रम में प्रवेश करते हैं तो उन्हें ऐसी अनुभूति होती है मानो उन्होंने सुधाम्बुधि में स्नान कर लिया हो। अगस्त्य के आश्रम का वर्णन करते हुए बताया गया है कि इस आश्रम में पशु-पक्षी अपने शाश्वतिक वैर का परित्याग करके स्वच्छन्द विचरण करते हैं। वृक्ष फलों से परिपूर्ण है, पृथ्वी शस्य से युक्त है, सैकड़ों गायें दूध देने वाली है, तालाबों में कमल खिले हुए हैं तथा शुकनासिका वृक्षों पर मधुर स्वर में गायन कर रही है।

अगस्त्य मुनि के आश्रम का चित्रण करते हुए आगे बताया गया है कि उटजों में कुशासन पर स्थित वटु वेद पाठ कर रहे थे एवं उदात्त, अनुदात्त, स्वरित युक्त कर्णमधुर स्वर आश्रम में फैल रहा था।

इन्द्र के आगमन की सूचना प्राप्त करके अगस्त्य मुनि उनका स्वागत सत्कार करते हैं। तत्पश्चात् मुनिवर इन्द्र से आगमन का प्रयोजन पूछते है। इन्द्र ने अपनी व्यथा बताते हुए विन्ध्यपर्वत के बढ़ने से उत्पन्न संकट का विस्तृत वर्णन करके उसे रोकने की प्रार्थना अगस्त्य मुनि से की। आगे इन्द्र कहते हैं कि

गुरुजन ही शिष्यजनो को अपथ से रोकते हैं आप भी विन्ध्यपर्वत को उन्नमन से रोक कर त्रिलोक की रक्षा कीजिए क्योंकि पुण्यकृतों के लिए परोपकार से बढ़कर कोई वृत नहीं होता है।

अगस्त्य मुनि इन्द्र की अनुनय-विनय पूर्वक की गई वार्तालाप से द्रवित हो जाते हैं तथा विन्ध्यपर्वत को समझाकर प्रकृतिस्थ करने की इन्द्र की प्रार्थना को स्वीकार कर लेते हैं।

अष्टम सर्ग

अष्टम सर्ग का नाम **'अगस्त्य विन्ध्याचल संस्तम्भनम्'** है। इस सर्ग में अगस्त्य मुनि के द्वारा विन्ध्यगिरि के संस्तम्भन का वर्णन है।

इन्द्रादि के चले जाने पर अगस्त्य मुनि विन्ध्याचल के पास जाते हैं। अगस्त्य मुनि के आगमन की सूचना पाकर विन्ध्यगिरि अपने गुरु का आदरपूर्वक स्वागत करते हैं।

कुटुम्बी जनों के साथ प्रणाम करके विन्ध्यपर्वत विनयपूर्वक बोले – आज मेरे लिए सुदिन है, महोत्सव है, विजयदशमी है कि आप मेरे घर पधारे है, विन्ध्यगिरि ने विस्तारपूर्वक अपने गुरु की वन्दना की और गुरु को ब्रह्मा, विष्णु और महेश से बड़ा बताया।

तत्पश्चात् अगस्त्य मुनि ने अपने आगमन का प्रयोजन बताया। अगस्त्य मुनि ने विन्ध्यगिरि को समझाया – हे वत्स! सुराधिपति ने याचना की है कि तुम

प्रकृति भाव को प्राप्त हो जाओ वृथा अनिवेश को त्याग दो। मुनि की आज्ञा को स्वीकार करते हुए विन्ध्यगिरि कहते हैं कि मैं आपका अनुशासन माला की भाँति शिरोधार्य करता हूँ। किन्तु शिशु की भाँति कुछ याचना भी करता हूँ। जगदीश्वरी अम्बिका मेरे कूटतट पर निवास करे तो नीचा होकर भी मैं उन्नत हो जाऊँगा। हे वदान्यशिरोमणि! मेरे अभीप्सित को पूर्ण करे जिससे प्रणतकल्पलता जगदम्बिका मेरे सानुतट को अपना निवास बना ले।

अगस्त्य मुनि विन्ध्यगिरि की प्रार्थना को स्वीकार कर भुवनेश्वरी से प्रार्थना करने हेतु हिमालय की ओर प्रस्थान करते हैं।

नवम सर्ग

'श्री जगन्मातुः विन्ध्याचल निवास' नामक नवम सर्ग में विन्ध्यगिरि के अनुनय को स्वीकार करके अगस्त्य मुनि के कैलाश में गमन का, अगस्त्य मुनि की कैलाश यात्रा का वर्णन और मार्ग में स्थित विशेष स्थलों का चित्रण सुन्दर ढंग से किया गया है।

इस सर्ग में विन्ध्याचल का चरित्र परमोन्नत कोटि प्रविष्ट दिखाया गया है। उसे महामुनि अगस्त्य का परमशिष्य, श्री विद्यापरमोपासक और जगन्माता का अनन्य आराधक चित्रित किया गया है। अन्यत्र उन्नयन आदि में विन्ध्यगिरि का उपहासपूर्ण चित्रण ही दृष्टिगोचर होता है।

इस सर्ग में अगस्त्य मुनि के वेत्रवती, विशाला नगरी पहुँचने, शिप्रानदी में

स्नान करके पुरारि की अर्चना करने, विदिशा तथा दशपुरगमन तथा करनवल पहुँचकर जह्नुसुता गंगा में स्नान करने का बड़ा ही सुन्दर वर्णन किया गया है।

इसके पश्चात् मन्दाकिनी, अलकनन्दा सहित भागीरथी को पार कर महामुनि ने बदरी विशाल का साक्षात्कार किया।

आगे चलकर मुनि धनाधिपति कुबेर की नगरी अलका पहुँच कर कुबेर से अनुमति प्राप्त कर कैलाश पहुँचे।

कविवर शेवड़े ने कैलाश पर्वत की शोभा का वर्णन बड़े ही सुन्दर ढंग से किया है, सर्वप्रथम मुनिवर ने जगत के अधिपति शिव की स्तुति की तत्पश्चात् शंकर से अनुज्ञा प्राप्त करके महर्षि जगज्जननी के दर्शन के लिए गये। देवी रत्नसिंहासनारूढ़ थी, हेरम्ब व षण्मुख पार्श्व भाग में स्थित थे तथा सुर सुन्दरियाँ नृत्य कर रही थी। ऐसी रम्भादिक के नृत्य का अनुमोदन करती हुई गौरी अम्बा को मुनिवर ने भक्तिपूर्वक प्रणाम किया तथा उनकी स्तुति करते हुए कहा है पार्वती! आपसे युक्त होकर ही महेश विश्व का सृजन, पालन तथा संहार करते हैं। आपके बिना उनमें निष्क्रियता ही रहती है।

आगे महर्षि ने देवी की महिमा का वर्णन करते हुए कहा है कि –

महामुनि अगस्त्य ने विस्तारपूर्वक माँ की स्तुति करने के पश्चात् अपनी याचना पार्वती के सामने प्रस्तुत करते हुए जगन्माता से विन्ध्याचल पर निवास करने का आग्रह किया। तब माँ ने मुनि की प्रार्थना को स्वीकार किया तथा

विन्ध्याचल पर स्थित हुई और निरस्तन्द्रा होकर त्रिलोकी का कल्याण करने लगी, दुर्ग नाम दुर्धषु महासुर का संहार करने के कारण माँ भगवती 'दुर्गा' नाम से प्रसिद्ध हुई।

दशम सर्ग

इस सर्ग का नाम **'शूरसेन जनपद वर्णन'** है। अन्तिम सात सर्गों में भगवान कृष्ण की कथा प्रस्तुत है। इन सर्गों में यह निरूपित किया गया है कि भगवती विन्ध्यवासिनी के कृपाकटाक्ष से ही कृष्ण लोकोत्तर कार्यों के सम्पादन में सक्षम हुये। इसमें माता विन्ध्यवासिनी के समुत्कर्ष का प्रदर्शन हुआ है।

विन्ध्याचल और हिमाचल के मध्य में शूरसेन जनपद स्थित है जहाँ पर गौवर्धन पर्वत है। कृष्ण द्वारा कालिया नाग से गोपालों की रक्षा का वर्णन इस सर्ग में किया गया है।

यदुवंशियों की प्रधान नगरी मथुरा के नामकरण की भी यहाँ कवि ने चर्चा की है। सर्वातिशयी गुणों के कारण इस नगरी का नाम 'मधुरा' था किन्तु 'यकार' और 'धकार' के साम्य के कारण लोग इसे प्रमादवश मथुरा कहने लगे।

वृन्दावन की अनेक विशेषताओं का वर्णन करते हुए कवि कहते हैं कि यह वृन्दावन मनुष्यों के लिए सतत् सुलभ है और पुण्यक्षयभीति वर्जित है। अपने समस्त गुणों के कारण निश्चय ही वृन्दावन नन्दन वन से श्रेष्ठ है।

इस प्रकार कवि ने शूरसेन जनपद का वर्णन बड़ी ही मनोरमता एवं कुशलता के साथ किया है।

एकादश सर्ग

इस सर्ग का नाम **'वसुदेव देवकी बन्धन'** है। इसमें मथुरा नगरी में वृष्णिवंशी उग्रसेन के शासन का चित्रण हुआ है। राजनीति निपुण उग्रसेन के राज्य में प्रजा सुखी एवं धन सम्पन्न थी। उग्रसेन अत्यधिक दानशील एवं विद्वानों का सम्मान करने वाले राजा थे। ऐसा कहा जाता है कि पण्डित जन दरिद्र होते हैं किन्तु राजा उग्रसेन ने अपनी दानप्रवृत्ति से इस अपयश को दूर कर दिया।

महाराज उग्रसेन के चण्डधी: कंस नाम का पुत्र था, समयानुसार युवा कंस को राजा ने युवराज बनाया।

मगधराज जरासन्ध की दो पुत्रियों अस्ति और प्राप्ति का विवाह कंस के साथ सम्पन्न हुआ तथा कंस ने अपने पितृव्य की पुत्री देवकी का विवाह वसुदेव के साथ कर दिया।

तत्पश्चात् नारद का आगमन होता है नारद कंस से कहते हैं कि तुम यज्ञ कर्म विरत हो। इन्द्र तुमसे कुपित है और तुम्हारा इष्ट नहीं चाहते हैं अत: अप्रमत्त होकर व्यवहार करो।

कंस अपने विनाश से भयभीत हो गया तथा देवकी के गर्भ से, उत्पन्न अष्टम पुत्र उसकी मृत्यु का कारण बनेगा यह सुनकर कंस ने वसुदेव और देवकी

को घर में ही बन्द कर दिया, कंस ने ऐसा अंकुश लगा दिया कि सारी मथुरा नगरी कारागृह की तरह बन गई।

द्वादश सर्ग

'वसुदेवस्य गर्गमुनिद्वारा विन्ध्याचले सहस्रचण्डीविधान' नामक द्वादश सर्ग है। वसुदेव को कंस द्वारा बन्दी बना लिया गया, उन्हें कैद से निकलने का कोई मार्ग नहीं मिल रहा था इस कारण वे खिन्न हृदय थे। एक दिन वसुदेव ने गर्ग मुनि को बुलाया तथा उन्हें अपनी व्यथा सुनाई।

गर्गाचार्य ने वसुदेव और देवकी दोनों को सान्त्वना दी तथा कहा कि - संसार के सभी लोगों को अदृष्ट के कारण ही सुख दु:ख प्राप्त होता है। अल्पमति वालो को ही उससे हर्ष-विषाद होता है। विद्वानों को नहीं। किसी को भी केवल एक ही प्राप्त नहीं होता है - सुख के बाद दु:ख आता है और दु:ख के बाद सुख आता है। कूपघटी की भाँति सुख-दु:ख परम्परा चलती रहती है।

आगे गर्गमुनि कहते है कि हे वसुदेव! तुम्हारा कष्ट समाप्त हो जाएगा और सुखोदय होगा। अपने बुरे अदृष्ट के शमनार्थ भगवती विन्ध्यवासिनी की भक्ति करो। माँ की महिमा का गुणगान करते हुए। गर्गाचार्य कहते हैं कि माँ देहधारियों के सभी कष्टों को दूर कर देती है, त्रिगुणात्मिका अम्बा सृजन, पालन एवं संहार करती है। विन्ध्यवासिनी माँ कल्पलता के समान अपने प्रणतभक्तों के मनोरथों को पूर्ण करती है।

वसुदेव को गर्गमुनि की बातों से अत्यधिक शान्ति प्राप्त हुई। वह अपने गुरु से कहते हैं कि मैं बन्दी बना लिया गया हूँ अतः स्वयं विन्ध्यगिरि जाकर पूजा नहीं कर सकता, कृपा करके आप ही जाकर मेरे लिए उपासना करे। वसुदेव गर्गाचार्य से माँ का मन्त्र बताने का आग्रह करते हैं जिससे वे निरन्तर उसका जाप करते रहें। कुलगुरु ने प्रणवपूर्व पञ्च दशाक्षर मंत्र वसुदेव को बताया। इसके पश्चात् गर्गमुनि विन्ध्यगिरि जाकर अष्टभुजा परमेश्वरी का ध्यान करने में मग्न हो जाते हैं।

गर्गमुनि द्वारा किये गए महायाग के पूर्ण होने पर माँ साक्षात् प्रकट हुई, करणार्द्रा माँ बोली – देवकी के गर्भ में साक्षात् विष्णु अष्टम पुत्र के रूप में जन्म लेगें तथा दुष्टों का विनाश करके जगत् का कल्याण करेंगें। मैं (विन्ध्यवासिनी माँ) नन्दगोप के घर यशोदा के गर्भ से उत्पन्न होऊँगी। हे मुनि! आप मथुरा जाओ, आपका कार्य सफल हुआ।

विन्ध्यवासिनी माँ को प्रणाम करके मुनिवर मथुरा लौट आते हैं तथा वसुदेवगृह जाकर सम्पूर्ण वृत्तान्त बताते हैं।

त्रयोदश सर्ग

इस सर्ग का नाम **'श्री कृष्ण जन्म'** है जयपरायण होने पर वसुदेव में भक्ति बढ़ी तब अम्बिका ने प्रकट होकर कहा–

हे वत्स तुम कंस से मत डरो वह तुम्हारा अपकार नहीं कर सकता है,

मेरे शरणागत को यम भी पीड़ित नहीं कर सकता। तुम्हारे छः पुत्रों को कंस के द्वारा मार दिया गया है किन्तु आठवें गर्भ में स्वयं भगवान विष्णु जन्म लेंगे वे ही कंस का वध करेंगें तथा जरासन्ध, काल यवन आदि को पराजित कर धरती का भार उतारेंगें। आगे विन्ध्यदेवी कहती है कि हे वसुदेव तुम देवकी को समझाओं पुत्र मृत्यु शोक को छोड़ दे मेरी कृपा से तुममें संदसद्विवेककुशल्य पति स्फुटित हो ऐसा कहकर विन्ध्यदेवी अंतर्धान हो गयी वसुदेव निद्रा से जाग गये। वसुदेव ने यह सारा वृत्तान्त देवकी को बताकर उन्हें सान्त्वना दी।

नन्द वसुदेव के मित्र थे उनके घर पर रोहिणी ने पुत्र को जन्म दिया। इसके बाद यशोदा और देवकी ने एक साथ गर्भधारण किया देवकी ने उसे ध्वनि की भाँति गूढ़ रखा परन्तु यशोदा के घर पर वाच्य की भाँति यह सुख स्फुट हुआ।

जगत्कल्याणार्थ तथा वसुधा के भार को हरने के लिए माधव अर्धरात्रि को देवकी के गर्भ से उदित हुए। नवनीत के समान कोमल शिशु को देखकर देवकी और वसुदेव का मन समाधि सुख में मग्न हो जाता है।

वसुदेव देवकी से शिशु रूप हरि को गोकुल ले जाने की बात कहकर नन्द गेह की और चल पड़ते है।

चतुर्दश सर्ग

'वसुदेवेन कृष्णस्य गोकुल प्रापण' नामक इस सर्ग में वसुदेव द्वारा कृष्ण को नन्दगेह में पहुँचाने का वर्णन है।

महासागर के समान यमुना को पार करने का कोई साधन न पाकर वसुदेव **'जय विन्ध्यवासिनी'** इस मंत्र का जाप करते हुए यमुना में प्रविष्ट हो गये। जब वसुदेव ने यमुना में प्रवेश किया तो उसमें शतहस्ति प्रमाण गहराई थी किन्तु जगदम्बा के प्रसाद से जलस्तर घुटने तक हो गया।

वसुदेव के गोकुल मे प्रविष्ट होते ही विन्ध्यवासिनी जगदम्बा की माया से गोकुल वासी निद्रामग्न हो जाते हैं। वन में मृग, घरों में कपोत, घुड़शालाओं में घोड़े, पिंजरों में तोते, मोर तथा गोशालाओं में गाय-बैल, चौराहों पर कुत्ते आदि सभी निद्रामग्न हो गये। अधिक क्या वर्णन किया जाय। संसार के रक्षण में नित्य जागरूक जगदम्बा भी स्तनपान करने वाली बालिका का रूप धारण करके सो गई। इस वर्णन में कवि ने स्वभावोक्ति और विरोधाभास अलंकारों का सहज और रम्य प्रयोग किया है।

इसके बाद वसुदेव अपने पुत्र को यशोदा के निकट सुलाकर तथा पुत्री (विन्ध्यवासिनी) को हाथ में उठाकर मथुरा लौट आये।

घर पहुँचकर नन्द ने पुत्री को यशोदा के पास सुलाकर हाथ जोड़कर प्रार्थना की हे जगदम्बा! यदि मेरा पुत्र दुरात्मा कंस को मार डालेगा तो मैं सकुटुम्ब विन्ध्यपीठ की यात्रा करुंगा। वसुदेव की प्रार्थना सुनकर शैशवावस्था में स्थित भवानी ने स्मित से ही उत्तर दिया।

उधर प्रभात में विनिवृत्तवाद की भाँति कंस के गृहरक्षक जागे और शिशु रूदन सुनकर शीघ्रता से अपत्य जन्म की बात कंस को बताई। कंस शीघ्र पहुँचता

है, देवकी कंस से प्रार्थना करती है कि यह पुत्र नहीं है, पुत्री है, इसकी हत्या मत करो।

यमराज की भाँति रौद्र रूप कंस अट्टहास के साथ बोला – मैं कैटभारि के पर वञ्चना पटुत्व को जानता हूँ, मोहिनी रूप धारण करके अमृत मन्थन के समय दनुजों को ठगा था। यह पुत्र हों या पुत्री इसका तो मरण ही उचित है, क्योंकि काटने को उद्यत सर्प के लिंग परीक्षण का अवकाश कहाँ होता है।

कंस ने जैसे ही स्तनपायिनी कन्या को मारने के लिए शिला पर पटकना चाहा वैसे ही उस दुष्ट के हाथ से छूटकर, आकाश में पहुँच कर घन–गम्भीर स्वर में दैवी बोली – हे! दुष्ट तू मुझ विन्ध्यवासिनी को नहीं जानता है, जिस प्रकार जलते हुए प्रदीप पर पतंग की मृत्यु निश्चित होती है, उसी प्रकार तुम्हारी मृत्यु वासुदेव के द्वारा निश्चित है। देवी के वचनों से हतचेतन कंस के देखते ही देखते जगत् जननी गगन में तिरोहित हो गयी।

पञ्चदश सर्ग

'कंसवध' नामक इस सर्ग में कृष्ण द्वारा कंस वध का वर्णन है। सर्गारम्भ में कृष्ण के बालचरित का चित्रण है, नन्दगृह में नियुक्त धात्री ने जब नन्द को पुत्र जन्म की सूचना दी तो नन्द आनन्दरूपी समुद्र में निमग्न हो गये। उन्होंने दूत भेजकर गर्गाचार्य को बुलाया, गर्गाचार्य ने जन्म नक्षत्र के अनुसार 'कृष्ण' नाम रखा और उनकी जन्म पत्री बनायी। जन्मपत्री के अनुसार सभी गृह उच्चस्थ होने तथा राजयोग होने की बात कही। आगे मुनि ने बताया कि इस बालक को शत्रु

से भय है किन्तु दुर्गा की कृपा से यह विघ्न समुद्र को पार कर लेगा।

उधर यशोदा कात्यायनी देवी की पूजा करने जाती है तथा अपने पुत्र 'कृष्ण' के कण्ठ में रक्षायन्त्र बांधती है।

मथुरा जाकर नारद कंस को कृष्ण के गोकुल में पलने की बात बताते हैं कंस यह सुनकर अत्यन्त व्यग्रचित्त हो जाता है और कृष्ण को मारने के लिए पूतना को भेजता है।

पूतना प्रकरण का कवि ने विस्तार से वर्णन किया है। कृष्ण ने चण्डिका के प्रसाद से कशल कालकूट मिश्रित पूतना के दुग्ध का बिना किसी बाधा के पान कर लिया जिस प्रकार शंकर ने समुद्र मंथन से निकले विष का पान कर लिया था। अपने प्राकृत रूप को धारण कर निष्प्राण पूतना भूतल पर गिरी कृष्ण उसके स्तन पर ऐसे लग रहे थे जैसे शैलाग्र पर सिंह स्थित हो।

कृष्ण की अनेक बाल लीलाओं का वर्णन कवि ने बड़े ही सुन्दर ढंग से किया है यथा –

कृष्ण के मुख में यशोदा द्वारा विश्व दर्शन, ऊरवल बन्धन लीला, तृणावर्त आदि राक्षसों का वर्णन।

गोकुल में बढ़ते उत्पात को देखकर नन्द सबके साथ वृन्दावन आ जाते हैं। वृन्दावन में कृष्ण की लालाओं का वर्णन कवि के द्वारा किया गया है – गौचारण, वेणुवादन, कालियानाग के विष से यमुना को मुक्त करना, गोवर्धन को

अंगुली पर उठाकर सभी गोपालों की रक्षा इत्यादि।

कृष्ण को मारने के सभी उपाय निष्फल हो जाने पर कंस कृष्ण को मथुरा लाने के लिए अक्रूर को भेजता है। कृष्ण अपने बड़े भाई बलराम और गोपों के साथ मथुरा जाना स्वीकार कर लेते हैं इस बात से गोपियाँ अत्यन्त दु:खी हो जाती है।

मथुरा में कृष्ण कुब्जा को सुन्दररूप प्रदान करते हैं। कृष्ण तथा बलराम दोनों चाणूर और मुष्टिक को मारते हैं। मथुरा में कृष्ण सिंह की भाँति उछलकर कंस के केश पकड़कर उसे मार डालते है। कङ्क आदि कंस के आठ भाईयों को भी मार दिया जाता है। कंस का आतंक समाप्त हो जाता है इससे सभी परिजन एवं प्रजा प्रसन्न हो जाती है।

षोडश सर्ग

'वसुदेवस्य विन्ध्याचले नवरात्र महोत्सव विधान' नामक इस सर्ग में विन्ध्याचल में जगदम्बा के पूजन का विवेचन किया गया है। इसमें शरद् ऋतु का भी बड़ा ही मनोहारी एवं हृदयावर्जक चित्रण किया गया है। कंस को मारकर कृष्ण ने घर में नियन्त्रित वसुदेव एवं देवकी को मुक्त कराया, पिता के कथनानुसार सिंहासन पर महाराज उग्रसेन को बैठाया। उधर वसुदेव गार्गाचार्य को बुलाते है तथा उनसे विन्ध्याचल पर जाने का उचित समय पूछते है, गर्गमुनि शारदीय नवरात्र में विन्ध्याचल दर्शन को श्रेष्ठ बताते हैं।

वसुदेव आदि सभी यादव अपने कुटुम्ब जनों के साथ विन्ध्याचल के लिए प्रस्थान करते है। सब लोग विन्ध्यगिरि के मनोरम दृश्य का अवलोकन करके प्रसन्नता का अनुभव करते है।

गर्गाचार्य के आदेशानुसार वसुदेव शिविर स्थापित करते हैं तत्पश्चात् वसुदेव आदि वृष्टिजन सुरसिन्धु में स्नान करके गर्गाचार्य के साथ जगदम्बा की पूजा करते हैं। यदुदत्त वसुदेव ने अपने दोनों पुत्रों के साथ पार्वती माता की चौंसठ उपचार पूर्वक पूजा अर्चना की तथा प्रार्थना करते हुए कहा कि – हे विन्ध्यवासिनी जगदीश्वरी! हे भक्तों पर करुणा करने वाली माँ! तुम्हारे चरण कमलों में मेरा मन भ्रमर की भाँति लगा रहे।

माँ के विविध रूपों – गिरि कानन में गिरिजा, विपत्ति के समुद्र में विन्ध्यवासिनी, भयों में भैरवी, दुर्गति में नवदुर्गा रूप में रक्षा करने की वसुदेव ने प्रार्थना की।

दूसरे दिन नवरात्र महोत्सव में सौ ब्राह्मणों को सप्तशती महोत्सव का पठन करने के लिए वरण किया गया तथा नियमपूर्वक माँ की आराधना एवं पूजा की गई।

दुर्गा अष्टमी सभी के साथ मनायी तथा देवी चरित्र वसुदेव के द्वारा सुना गया। नवमी के दिन बलि चढ़ाकर हिमसुता माता को प्रसन्न किया तथा बन्धुओं के साथ नवरात्र का पारण किया।

इस प्रकार नवरात्र महोत्सव समाप्त करके थके हुए वसुदेव सो गये तब स्वप्न में चण्डिका आई और बोली – हे वसुदेव! तुम्हारी सेवा से मैं प्रसन्न हूँ, मैं तुम्हे वरदान देती हूँ कि तुम्हारा पुत्र दुर्मदों का विनाश करेगा, इसके बाद कोई विपत्ति नहीं आयेगी। तुम पुत्र–पौत्रादि के साथ सुखपूर्वक जीवन यापन करोगे, तुम्हारे पुत्र के वीर चरित्र का गायन कैलाश पर्वत पर किन्नर करेंगें।

इस प्रकार वरदान देकर दुर्गा अन्तर्हित हो गई और वसुदेव का मन प्रसन्न हो गया।

प्रथम अध्याय

प्राचीन महाकाव्यों का स्वरूप

संस्कृत भाषा संसार की समस्त परिष्कृत भाषाओं में प्राचीनतम हैं। इसे 'देववाणी' या 'सुरवाणी' भी कहा जाता हैं। हिन्दू धर्म के सभी शास्त्र इसी भाषा में निबद्ध हैं। दण्डी ने काव्यादर्श में लिखा है –

संस्कृत नाम दैवी वागन्वाख्याता महर्षिभिः।
भाषासु मधुरा मुख्या दिव्या गीर्वाण भारती॥

आचार्य राजशेखर ने साहित्य को परिभाषित करते हुए लिखा है –

''शब्दार्थयोर्यभावत्सहभावेन द्विधा साहित्य विधा''।

संस्कृत साहित्य को मुख्य रूप से दो भागों में बांटा जाता है –

(1) वैदिक साहित्य

(2) लौकिक साहित्य

वैदिक साहित्य में ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद के अतिरिक्त इनसे सम्बद्ध ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद का समावेश किया जाता है।

लौकिक साहित्य में दृश्य काव्य, श्रव्य काव्य एवं इनके भेदों रूपक, उपरूपक एवं पद्यकाव्य, गद्यकाव्य एवं चम्पू काव्य का समावेश किया जाता है।

महाकाव्य लौकिक संस्कृत के अन्तर्गत आता है। भारतीय काव्य के निर्माण की पूर्ण प्रेरणा कवियों को रामायण एवं महाभारत जैसे महनीय राष्ट्रीय महाकाव्यों के अध्ययन से प्राप्त हुई है।

संस्कृत साहित्य की सर्वोत्कृष्ट विधा 'महाकाव्य' का उद्‌भव एवं विकास कैसे हुआ? इस पर विद्वानों में मत साम्य पाया जाता है। विभिन्न विद्वानों ने इस सम्बन्ध में जो विचार प्रस्तुत किये है वे सारतः दृष्टव्य हैं -

(1) महाकाव्य की उत्पत्ति के बीज वेद

भारतीय महाकाव्य के विकास में वेद से भी परम्परया स्फूर्ति प्राप्ति का संकेत हमें यत्र-तत्र उपलब्ध होता है वेदों में देवस्तुति के अतिरिक्त तत्कालीन दानशील उदार राजाओं की श्लाघनीय स्तुतियाँ भी उपलब्ध होती हैं, जिन्हे 'नाराशंसी' के नाम से अभिहित करते है। प्रभूत दान के कारण प्रत्युपकार की भव्य भावना से प्रेरित मन्त्रों को 'दानस्तुति' की संज्ञा प्राप्त है।

ऋग्वेद की (5/61) श्यावाश्व ऋषि ने अपने आश्रयदाता राजा तरन्त तथा उनकी विदुषी महिषी शशीयसी के दान की भूरि-भूरि प्रशंसा की है।

अथर्ववेद राजा परीक्षित के राज्यकाल में अनुभूयमान सौख्य की विपुल प्रशंसा में कतिपय मन्त्रों का उल्लेख करता है। (20/127)

(संस्कृत साहित्य का इतिहास-बलदेव उपाध्यय-पृ. 130)

प्रो. विन्टरनिट्ज ने भी वैदिक आख्यानों को अर्थात् संवाद सूक्तों को

महाकाव्य का स्रोत माना है। यम-यमी संवाद सूक्त, पुरूरवा-उर्वशी संवाद, सरमा-पणि आदि अनेक सूक्तों में महाकाव्य की स्पष्ट झलक मिलता है।

इसी प्रकार परवर्ती साहित्य ग्रन्थों जैसे ऐतरेय ब्राह्मण ग्रन्थ में प्राप्त **'हरिश्चन्द्रोपाख्यान'** तथा **'शुनः शेप'** कथा भी इसी मार्ग की पोषक है। इतिहास पुराण काल में भी **'सुपर्णाध्याय'** नामक आख्यान काव्य तत्वों से परिपूर्ण हैं इस प्रकार महाकाव्य के उपकरणों की सत्ता वेद आदि में होने पर भी ऋग्वेदीय-पुरूरवा-उर्वशी संवादसूक्त पर आधारित कालिदास के **'विक्रमोर्वशीय'** नाटक को छोड़ कर अन्य किसी भी कविजन ने इनका विशेष उपयोग अपने काव्यों में नहीं किया।

(2) महाकाव्य के उद्‌भव के मुख्य स्रोत

रामायण, महाभारत महाकाव्य इस संज्ञा का आधार रामायण व महाभारत में ही है। महाभारत में तो महत् विशेषण जुड़ा है ही, रामायण को भी स्वयं कवि ने महत् काव्य की संज्ञा दी है -

'कर्त्ता काव्यस्य महतः क्व चासौ मुनिपुङ्गवः'?

रामायण और महाभारत जैसे आर्ष काव्य इस साहित्य विधा के भास्कर हैं जिन्होने परवर्ती काव्यों को विषय-वस्तु, वर्णन-विधि तथा भाषा शैली भी दी है। फिर भी संस्कृत काव्यों की व्यवस्था एक कलात्मक सम्पूर्ण कृति के रूप में है जो अपेक्षाकृत अल्प स्थान में ही जीवन के विपुल आयाम को भरकर पाठक को हृदयावर्जन करे।

(संस्कृत साहित्य का इतिहास- डॉ. उमाशंकर शर्मा, 'ऋषि' पृ. 113)

संस्कृत साहित्य के अधिकांश महाकाव्य रामायण एवं महाभारत की ही कथा-विशेष पर आधारित है। कालिदास के **'रघुवंश'** महाकाव्य पर वाल्मिकी का कृतित्व ही छाया हुआ है। महाकवि प्रवरसेन का प्राकृतभाषा में लिखा महाकाव्य **'सेतुबन्ध'**, कुमारदास का **'जानकीहरण'**, भट्टि का महाकाव्य आदि अनेक महाकाव्य रामायण से प्रेरित है। भारवि कृत **'किरातार्जुनीयम्'** भट्ट नारायण कृत **'वेणीसंहारम्'** तथा राजशेखर कृत **'बालभारत'** आदि महाभारत से प्रेरित है। महाभारत में स्वयं यह अंश बार-बार कहा गया है कि यह ग्रन्थ एक ऐसा इतिहास, जिससे आगे के कवि प्रेरणा लेंगे -

इतिहासोत्तमादस्माज्जायन्ते कविबुद्धयः।
इदं कविवरैः सर्वेराख्यानमुपजीव्यते॥

वास्तव में तो रामायण एवं महाभारत कथा को लेकर जितना साहित्य भारत में रचा गया है, उस सबका ही प्रकारान्तर में मूल स्त्रोत रामायण और महाभारत ये दो महनीय ग्रंथ रहे है, क्योंकि वैदिक छन्दों के पश्चात् लौकिक छन्दों का स्वरूप इन्हीं दोनो में स्पष्ट सामने आया, महाकाव्य या सर्गबन्ध की अवधारणा भी इन्हीं में प्रकट हुई तथा रस एवं अलंकार के मापदण्ड भी इनसे स्थापित हुए।

(3) शिलालेखों का काव्योचित रूप

ईसा की प्रथम शताब्दी तथा इसके बाद के अनेक शिलालेखों में भी काव्य सर्जना मिलती है। डॉ. ब्यूलर ने सप्रमाण सिद्ध किया है कि इस युग में भी कमनीय स्तुतिकाव्यों की रचना होती थी, दानी राजाओं की कीर्तियाँ प्रशस्त

प्रशस्ति काव्यों में अंकित की गई हैं, यह गद्य तथा पद्य उभयविध काव्यों के प्रणयन का युग था। शक क्षत्रप रूद्रदामन का गिरनार शिलालेख (समय 150 ई.) अपनी रोचकता, भावप्रवणता और हृदयावर्जन के हेतु एक लघुकाय गद्य काव्य का आनन्द देता है –

स्फुट-लघु-मधुर-चित्र-कान्त शब्दसमयोदारालंकृत-गद्य-पद्य- (गिरनार शिलालेख)

कविवर हरिषेण की प्रयागवली समुद्रगुप्त प्रशस्ती (समय 350 ई) समुद्रगुप्त के दिग्विजय का वर्णन गद्य-पद्य मिश्रित फड़कती भाषा में करती है।

वत्सभट्टि द्वारा निर्मित मन्दसौर की प्रशस्ति वैदर्भी रीति का आश्रय लेकर सरस काव्य के विरचन में सिद्धहस्त कवि की कमनीय कृति है।

(संस्कृत साहित्य का इतिहास, बलदेव उपाध्याय, पृ. 131)

इस प्रकार ईस्वी सन् की आदिम पाँच शताब्दियों की काव्य रचना में वही शैली मिलती है, वही वर्णन पद्धति अपनी झाँकी दिखलाती है, वही समय पदविन्यास अपना मंजुल रूप दर्शाता है जिसे हम संस्कृत के माननीय काव्यों में देखने के अभ्यस्त हैं।

सूर्य का यह वर्णन नितान्त भव्य है –

यः प्रत्यहं प्रतिविभात्युदयाचलेन्द्र विस्तीर्णतुङ्गशिखरस्खलिततांशुजालः।
क्षीबाङ्गनाजनकपोलतलभिताम्रः पायात् स वः सुकिरणाभरणो विवस्वान्॥

अधिक वृष्टि के कारण जब नदियॉ अपने किनारों से बहने लगी तब कवि को प्रतीत होता है कि पर्वत मानों अपने मित्र समुद्र की ओर अपना नदीमय हाथ फैला रहा था –

अनेकतीरान्तजपुष्पशोभितो
नदीमयोहस्त इव प्रसरितः।

(स.सा. का इतिहास, बलदेव उपाध्याय, पृ. 132)

स्पष्ट है कि महाकाव्य का उद्‌भव ईस्वी की प्रथम शताब्दी में ही हो चुका था जिनका प्रभाव इन शिलालेखों पर स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है।

मुनित्रय के काव्य महाकाव्य

संस्कृत काव्य के उदय का इतिहास जानने के लिए व्याकरण शास्त्र के आदि आचार्य त्रयी (मुनित्रय) पाणिनी, वररूचि (कात्यायन) तथा पतञ्जलि के ग्रन्थों का अध्ययन अपेक्षित हैं।

पाणिनी ने **'पातालविजय'** तथा **'जाम्बवतीविजय'** नामक दो महाकाव्य लिखे किन्तु यह निश्चित नहीं है कि ये दोनो पृथक् काव्य थे या एक ही काव्य के दो नाम थे। राजशेखर के नाम से यह पद्य जल्हण रचित **'सूक्ति मुक्तावली'** (1257 ई.) में उद्‌धृत है –

नमः पाणिनये तस्मै यस्मादाविरभूदिह।
आदौ व्याकरणं काव्यमनु जाम्बवतीजयम्॥

(विन्टरनित्स–भारतीय साहित्य का इतिहास, पृ. 71)

नाभिसाधु ने रूद्रट के काव्यालंकार की टीका **'पातालविजय'** से एक श्लोक उद्धृत किया है। पुरषोत्तम की **'भाषावृत्ति'** तथा शरणदेव की **'दुर्घटवृत्ति'** में भी इस महाकाव्य का उल्लेख मिलता है।

पं. बलदेव उपाध्याय के अनुसार आर्ष काव्यों के पश्चात् **'जाम्बवतीविजय'** या **'पातालविजय'** संस्कृत का प्रथम महाकाव्य है। शरणदेव की **'दुर्घटवृत्ति'** में अठारवें सर्ग में एक पद्य उद्धृत किया गया है जिससे जान पड़ता है कि **'जाम्बवतीविजय'** महाकाव्य 8 सर्गो का अवश्य था –

त्वया सहार्जितं यच्च यच्च सख्यं पुरातनम्।
चिराय चेतसि पुरस्तरूणीकृतमद्य मे।

(जाम्बवतीविजयेपाणिनिनोक्तम्–इत्याष्टादशसर्गे)

वररूचि के नाम से सुभाषित पद्य **'सदुक्तिकर्णामृत'**, **'सुभाषितावली'** (14वीं शताब्दी ई.) तथा **'शार्ङ्गधरपद्धति'** (1363 ई.) जैसे संग्रह ग्रन्थों में संकलित है।

पतञ्जलि (150 ई. पूर्व) ने अपने माहभाष्य में दृष्टान्त के ढंग पर बहुत श्लोको को उद्धृत किया है, जिनके अनुशीलन से संस्कृत काव्यधारा की प्राचीनता स्वत: सिद्ध होती है। पतञ्जलि के 'कंसवध' तथा 'बलिबन्ध' नामक नाटको का भी उल्लेख मिलता है। पिङ्गलमुनि द्वारा रचित 'छन्दसूत्र' के अनुशीलन से महाकाव्य के उद्गम की प्राचीनता का बोध होता है। पिंगलमुनि के 'छन्दसूत्र' में नाना प्रकार के लौकिक तथा गीति काव्योचित छन्दों का विवरण उपन्यस्त है, जो वर्तमान महाकाव्यीय छन्दों का आधार है।

(स. सा. का इतिहास, बलदेव उपाध्याय, पृ. 136–137)

संस्कृत में महाकाव्य का उद्‌भव विक्रमपूर्व शताब्दियों की घटना है। पतञ्जलि से आरम्भ कर अश्वघोष (प्रथम शतक) तक के काव्यों की अप्राप्ति होने से इन पूर्व अश्वघोष काव्यो का पर्याप्त परिचय प्राप्त नहीं है अन्ततः कहा जा सकता है कि महाकाव्य का पूर्ण उद्‌भव विक्रम संवत् के आरम्भ में हुआ तथा विक्रमादित्य के संरक्षण में यह निरन्तर परिवर्द्धित व पल्लवित हुआ।

महाकाव्य का विकास

कवि ही काव्य का सृजन करता है। कवि द्वारा प्रयुक्त शैली ही काव्य की आधारभित्ति है। भाषा शैली सामाजिक एवं बौद्धिक परिवेश पर निर्भर है अतः इनमें परिवर्तन होने पर शैली विशेष भी परिवर्तित होगी इस प्रकार शैली उत्तरोत्तर परिवर्द्धित एवं परिष्कृत होती रहती है। यही शैली का विकास है यही काव्य का विकास है संस्कृत महाकाव्यों का विकास भी कवि द्वारा प्रस्तुत भाषाशैली तथा उस शैली के अनुगमन कर्त्ताओं पर अवलम्बित है शैली द्वारा महाकाव्य की विकास यात्रा निम्नलिखित बिन्दुओं द्वारा दृष्टव्य हैं –

सहज रसमय शैली का प्रारम्भ

लौकिक संस्कृत में कविता लिखने का उदय वाल्मीकि से हुआ है। रामायण हमारा आदि काव्य है। वाल्मीकि हमारे आदि कवि है। क्रौञ्च वध की जो घटना साधारण दर्शकों के हृदय में थोड़ी सी सहानुभूति उत्पन्न करने में ही समर्थ होती है वही वाल्मीकि के रससिक्त हृदय में शोकतरङ्गिणी के प्रवाहित होने का कारण बनती है और रसावेश में महर्षि का शोक श्लोक के रूप में

परिणत हो जाता है –

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत् क्रोञ्चमिथुनादेकमधवीः काममोहितम्॥

जिस अवसर पर यह श्लोक के रूप में वाल्मीकि की करुण रसाप्लावित वैरवरी स्खलित हुई, उसी समय भारतीय काव्य की दिशा का परिचय सहृदयों को मिल गया। काव्य तरङ्गिणी रसकूल का आश्रय लेकर ही प्रवाहित होती रहेगी इसकी पर्याप्त सूचना उसी समय मिल गयी। वाल्मीकि का आदिकाव्य संस्कृत भारती का नितान्त अभिराम निकेतन है। सरसता और स्वाभाविकता ही इसका सर्वस्व है। नाना रसो का मंजुल समन्वय, वर्णन में नितान्त स्वाभाविकता, छोटे–छोटे मनोरम पदों के द्वारा भावपूर्ण मधुर अर्थो की अभिव्यक्ति इस काव्य की विशिष्टता है। स्थान–स्थान पर वाल्मीकि ने अपने काव्य को अंलकारो से भूषित करने का भी उद्योग किया है, पर इन अंलकारों से वस्तु का सौन्दर्य और भी अधिकता से फूटता है और रसिकों के हृदय को हठात् मुग्ध बना देता है। अंलकारो के द्वारा रस की अभिव्यक्ति होती है, शोभा का विकास होता है गुण की गरिमा बढ़ती है। वाल्मीकि के काव्य में अंलकार की छटा कम सुहावनी नही हैं। गरूड़ की यह उपमा रामचन्द्र की उदात्तता के अनुरूप ही है –

राक्षसेन्द्रमहासर्पान् सरामगरूडो महान्।
उद्धरिष्यति वेगेन वैनतेय इवोरगान्॥

(स.सा. का इतिहास बलदेव उपाध्याय, पृ. 139–140)

'रसमयी पद्धती' को सुकुमार मार्ग भी कहते हैं। इस मार्ग के महाकाव्यों मे

कथानक के सरस अंशो को विशेष रूप से सरल तथा प्रसादगुणपूर्ण शैली में निरूपित करने की प्रवृति देखी जाती है।

आनन्दवर्धन ने इस सम्बन्ध में अंलकारों के निवेश पर कहा है –

रसाक्षिप्ततया यस्य बन्धः शक्यक्रियो भवेत्।
अपृथग्यत्ननिर्वर्त्यः सोऽलङ्कारो ध्वनौ मतः॥

(–ध्वन्यालोक–2/16)

इस सुकुमार मार्ग के मुख्यतया दो श्रेष्ठ कवि है–वाल्मीकि और कालिदास।

रसमय शैली का उत्कर्ष

कालिदास में वाल्मीकीय शैली का उदात्त उत्कर्ष मिलता है। कालिदास ने अपने आपको वाल्मीकि की कविता मे सिक्त कर दिया है। इसलिए उनके काव्य में वाल्मीकि की मनोरम पदावली तथा मंजुल भाव पूर्णतया भरे पड़े है। रघुवंश (1/4) में कालिदास ने 'पूर्वपूरिभिः' के द्वारा वाल्मीकि की ओर संकेत किया है। रघुवंश (14/33) में रामायण को **'कविप्रथमपद्धति'** कहा गया है।

कालिदास की शैली में अलङ्कारों एवं पाण्डित्य की अधिकता न होकर रसमय स्वाभाविकता है। अंलकार से वस्तु का सौन्दर्य निखरता है, उसका सलोनापन अधिक बढ़ता है वह रसिकों के हृदय में बरबस घर कर लेती है।

कालिदास की शैली को परवर्ती कुछ कवियों ने बडी सफलता के साथ अपनाया। अश्वघोष के ऊपर कालिदास की स्पष्ट छाप है। गुप्तकाल के

प्रशस्ति-लेखक हरिषेण और वत्सभट्टि ने कालिदास के काव्यों का गहरा अनुशीलन कर उसी के आदर्श पर अपनी कविता लिखी। इतना ही नहीं कालिदास के काव्यों की ख्याति भारतवर्ष के बाहर कम्बोज देश तक फैली थी। सुवर्णद्वीप, कम्बोज, जावा आदि देशो में उपलब्ध संस्कृत शिलालेखों में कालिदास की कविता का पर्याप्त अनुकरण पाया जाता है।

उदाहरण स्वरूप कम्बोज के राजा भववर्मा 600 ई. के शिलालेख की कुछ पंक्तियाँ तथा कालिदास के श्लोक साथ ही दिये जाते है जिससे इस कवि का विपुल प्रभाव स्पष्ट दीख पड़ता है।

(स.सा. का इतिहास-पृ. 141-142)

नवीन पाण्डित्यमय अलङ्कृत शैली

'विचित्र मार्ग' के रूप में पाण्डित्य पूर्ण शैली संस्कृत महाकाव्यों मे मिलती है। इस मार्ग का प्रवर्तन समय की साहित्यिक मान्यता, युग का वातावरण तथा सामाजिक रूढ़ियों के कारण हुआ। सुकुमार मार्ग जन-सामान्य के हृदयावर्जन के लिए था किन्तु विचित्र-मार्ग विद्वानों के आकर्षणार्थ विकसित हुआ। छठी शताब्दी ई. मे संस्कृत का सामान्य प्रयोग नहीं रहा अतः सामान्य जनता के लिए संस्कृत महाकाव्य लिखने का कोई औचित्य नहीं रहा विद्वानों में संस्कृत के प्रति गहन निष्ठा थी किन्तु वे शास्त्रीय वैदुष्यपूर्ण भाषा से ही प्रभावित हो सकते थे। फलतः महाकाव्यों को नई दिशा मे प्रवृत होना पड़ा जिसे अलङ्करण पद्धति या **'विचित्र मार्ग'** कहा गया।

(सं.सा. का इतिहास, डॉ. उमाशङ्कर शर्मा, पृ. 117-118)

इस युग में बौद्ध न्याय का उदय तथा विकास हुआ। दिङ्नाग और धर्मकीर्ति जैसे बौद्ध पण्डितों का और वात्स्यायन तथा उद्योतकर जैसे ब्राह्मण नैयायिकों के उदय का यही युग था। फलतः इस युग का वातावरण ही पाण्डित्यमय है। युग की विशिष्टता और साहित्यिक चेतना के कारण कविजनों के लिए प्राचीन पद्धति को छोड़कर एक नवीन पाण्डित्यमय अलङ्कृत शैली को अपनाना आवश्यक हो गया। ऐसे ही कविजनों के लिए प्राचीन रसमयी पद्धति को छोड़कर एक नवीन शैली को ग्रहण करना आवश्यक हो गया। जिसमें सारल्य के स्थान पर पाण्डित्य पर ही विशेष आग्रह था।

आचार्य कुन्तक ने इस अंलकार बहुल शैली को **'विचित्र-मार्ग'** की संज्ञा देते हुए इस अंलकृत शैली की दो विशेषताएं बताई है -

(1) विषय सम्बन्धी

(2) भाषा सम्बन्धी

भारवि के पहले वाल्मीकि तथा कालिदास ने अपने महाकाव्यों का जो विषय चुना था वह अत्यन्त विस्तृत तथा परिमाण मे विपुल है। कालिदास ने रघुवंश मे केवल 19 सर्गो के भीतर दिलीप से प्रारम्भ कर अग्निवर्ण तक रघुवंश के अनेक पीड़ियों का वर्णन बड़ी सफलता के साथ किया। भारवी के पहले काव्य का वर्णन विस्तृत होता था, प्राकृतिक वर्णन कम। भारवि का **'किरातार्जुनीयम्'** माघ का **'शिशुपालवधम्'** तथा श्री हर्ष का **'नैषधीयमचरितम्'** इसी काव्य शैली के पोषक है।

(भारतीय साहित्य शास्त्र-द्वितीय खण्ड, पृ. 186-196)

परवर्ती सभी कवियों ने या तो कालिदासीय शैली अथवा अलङ्कृत शैली को अपनाकर ही काव्य सृजन किया है। कवियो ने अपनी रूचि के अनुसार इन शैलियों मे से अन्यतम को अपनाया पद्मगुप्त परिमल ने **'नवसाहसांकचरितम्'** तथा श्रीहर्ष ने **'नैषध'** मे रसमयी शैली को अपनाया परन्तु अपने काव्य को अलंकृत करने की प्रवृति भी इनमे थी। 'अंलकृत शैली' का भव्य निदर्शन रत्नाकर का **'हरविजय'** है। द्वयर्थी महाकाव्यों में धनञ्जय का **'द्विसन्धान'** विधामाधव का **'पार्वतीरूक्मिणीय'**, हरिदत्तसूरी का **'राघवनैषधीय'** कविराजसूरि का **'राघवपाण्डवीय'** मुख्य है।

त्र्यर्थी काव्यों में राजचूढ़ामणि दीक्षित का **'राघवयादवपाण्डवीय'** तथा चिदम्बरमुनि का **'राघव-पाण्डव-यादवीय'** मुख्य है। इन काव्यों मे पाण्डित्य का प्रदर्शन ही मुख्य है, हृदय को विकसित करने वाली काव्य की अभिव्यक्ति नितरां न्यून है।

कतिपय महाकाव्यों में पौराणिक विषय वस्तु को पौराणिक शैली में ही प्रस्तुत किया गया। क्षेमेन्द्र की **'रामायणमंजरी'**, **'भारतमंजरी'**, **'दशावतारचरित'** तथा जसरथ का **'हरचिंतामणि'** इसी प्रकार के महाकाव्य है।

ऐतिहासिक चरित्रों या प्रसंगो को आधार बनाकर रचे गये महाकाव्य - **'नवसाहसांकचरित'**, **'राजतरंगिणी'**, **'विक्रमांकदेवचरित'** आदि इनके उदाहरण है।

इस प्रकार महाकाव्य के विकास पर दृष्टिपात करने से स्पष्टतः प्रतीत

होता है कि आरभिक युग मे नैसर्गिकता का ही काव्य में मूल्य था। वही गुण आदर की दृष्टि से देखा जाता था। परन्तु आगे चलकर पाण्डित्य का जोर बढ़ा। न्याय और वेदान्त के गम्भीर अध्ययन के कारण पाण्डित्य का एक नवीन युग ही आ खड़ा हुआ। फलतः कवियो ने अपने काव्यों में अक्षराडम्बर तथा अंलकार विन्यास की ओर अपना दृष्टिपात किया, उन्हें ही काव्य का जीवन मानने लगे और इसलिये पिछले युग में सुकुमार मार्ग के स्थान पर विचित्र मार्ग का प्रसार हुआ।

द्वितीय अध्याय

आधुनिक महाकाव्यों का स्वरूप

संस्कृत साहित्य के इतिहास के आधुनिक काल का आरम्भ कब से माना जाय? निश्चित रूप से अनेक विचारकों मे इस सम्बन्ध में यत् किञ्चित् मतभेद लक्षित होता है। इसी के साथ साहित्य के सन्दर्भ मे आधुनिकता क्या है, यह भी एक विचारणीय प्रश्न है। जो विगत है वह प्राचीन है और जो प्रवर्तमान है वह आधुनिक है, ऐसा विचार आधुनिकता के निर्णायक तथ्य के रूप में मान्य नहीं है। कालिदास ने अपने समय से पूर्व रचित काव्य-साहित्य को ''पुराण'' और उसकी अपेक्षा अपने काव्य को ''नव'' कहा था, किन्तु यह आधार साहित्य के इतिहास के सन्दर्भ में व्यहार्य प्रतीत नहीं होता। इस प्रसंग मे डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी का यह वक्तव्य विचारणीय है -

''विश्व और देश में बदलती राजनीतिक, सामाजिक स्थितियों के बोध के साथ समग्र राष्ट्र के ऐकात्म्य के प्रति दृष्टि कम से कम एक व्यावर्तक है, जो काल और विषय वस्तु की दृष्टि से आधुनिक काल का उपक्रम कराता है।''

('नवोन्मेष' राजस्थान संस्कृत अकादमी, जयपुर पृ. 119)

प्रो. वर्णेकर जी ने अपने मराठी ग्रन्थ ''अर्वाचीन संस्कृत साहित्य'' में अर्वाचीन काल का आरम्भ सत्तरहवीं शताब्दी माना है, किन्तु उनके इस विचार

से स्पष्ट रूप से अपनी असहमति व्यक्त करते हुए अपने एक व्यक्तिगत पत्र में आचार्य पं. बलदेव उपाध्याय जी ने अर्वाचीन काल का आरम्भ 1750 ई. से माना है।

डॉ. हीरालाल शुक्ल ने अपने ग्रन्थ 'आधुनिक संस्कृत साहित्य' में 1784 को संस्कृत के नवजागरण के प्रंसग में महत्वपूर्ण माना है। संस्कृत साहित्य के आधुनिक काल को डॉ. राजेन्द्र मिश्र ने देववाणी सुवासः (प्र.भा.) की भूमिका में - पुनर्जागरण काल (1784-1884) स्थापना काल (1884-1950) तथा समृद्धिकाल (1950- अब तक) के रूप में तीन भागों में विभक्त किया है।

(आधुनिक संस्कृत साहित्य का इतिहास - खण्ड-7, पृ. 29)

एक विद्वान दौ सौ वर्ष की अवधि के इस काल को इस रूप में विभक्त करते है -

- **1800-1900 तक 19वीं शताब्दी-स्वतन्त्रतापूर्वकाल।**
- **1900-1950 तक 20वीं पूर्वार्ध स्वतन्त्रता संघर्षकाल।**
- **1950-1990 20वीं शताब्दी उत्तरार्द्ध स्वातन्त्र्योतर काल।**

निश्चित रूप से ऐसे विभाजनों को राजनीतिक परिवर्तनों की दृष्टि से प्रस्तुत किया गया है और इस प्रकार के परिवर्तनों के साहित्य पर पड़ने वाले प्रभाव को भी नकारा नहीं जा सकता।

युगों में विभाजन

संस्कृत साहित्य के आधुनिक काल को मुख्यत: तीन युगो में विभाजित किया जाना चाहिए –

- **राशिवडेकर युग – 1890–1930**
- **भट्ट युग – 1930–1960 तथा**
- **राघवन युग – 1960–1980**

इसका संकेत गद्य साहित्य के हमारे लेखक श्री कलानाथ शास्त्री ने अपनी ''पृष्ठभूमि' में दिया है। अप्पाशास्त्री राशिवडेकर एक मौलिक रचनाकार तो थे ही साथ ही वे 'संस्कृतचन्द्रिका' और 'सुनृतवादिनी' पत्रिकाओं के सम्पादक के रूप मे उन्होने संस्कृत मे नवीन युगीन प्रवृति में लेखन को नाना कठिनाईयों के बावजूद प्रोत्साहित किया और संस्कृत के विस्तृत समाज में एक जागरूकता लायी। इस युग के कुछ और मनीषियों के नाम लिये जा सकते है जैसे – हृषिकेश भट्टाचार्य, म. म. रामावतार शर्मा, म. म. विधुशेखर भट्टाचार्य आदि, जिनका साहित्य में आधुनिकता को प्रवर्तित करने में बहुत योगदान है।

यह युग पं. भट्ट मथुरानाथ शास्त्री के नाम से प्रवर्तित है। भट्टजी ने भी 'संस्कृत रत्नाकर' और 'भारती' जैसी पत्रिकाओं का सम्पादन किया और स्वयं संस्कृत में नयी विधाओं मे लेखन करके नये लेखकों के लिये मार्ग प्रशस्त किया। भट्ट युग के अन्य उल्लेखनीय रचनाकार है, यतीन्द्र विमल चौधरी।

राघवन युग के प्रवर्तक डॉ. वेंकट राघवन ने साहित्य अकादमी की

''संस्कृत प्रतिभा'' का सम्पादन किया। डॉ. राघवन के युग में समकालीन संस्कृत साहित्य के क्षेत्र में एक नयी ऊर्जा का संचार हुआ और उसमे नये प्रयोग घटित होने लगे जिन्हे अखिल भारतीय स्तर पर मान्यता मिली।

संस्कृत की काव्य साहित्य धारा को कालिदास पूर्ववर्ती, कालिदास के समकालीन और कालिदासेत्तर इन तीन भागों में विभक्त कर सकते हैं तीनो परस्पर भिन्न है। आधुनिक संस्कृत काव्यधारा सर्वथा विलक्षण है वर्तमान समय मे जीवन बोध और सामाजिक स्थिति में बहुत तेजी से परिवर्तन हुआ है परिणाम स्वरूप सहृदय हृदय की रूचि में भी परिवर्तन हुआ है। अर्वाचीन संस्कृत साहित्य की विलक्षणता का यही कारण है।

(आधुनिक संस्कृत साहित्य श्रीः, पृ. 19-20)

आधुनिक संस्कृत साहित्य ने अपनी रचनाधारा, सम्भावनाओं एवं प्रवृतियों के द्वारा अनेक आयामों का स्पर्श किया है। उसके सृजन की यात्रा मे नैरन्तर्य देखा जा सकता है। अपनी विविध विधाओं के माध्यम से उसने अपने नवलेखन का शंखनाद किया है। रचनाकारों की कई पीढ़ियाँ इसे सम्पन्न बनाने मे सक्रिय है। इसमें मथुरानाथशास्त्री, अप्पाशास्त्री, राशिवडेकर, जानकी वल्लभ शास्त्री आदि रचनाकार जहॉ अपनी प्राचीन पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करते है व्ही राघवन, बच्चूलाल अवस्थी, रामकरण शर्मा, जगन्नाथ पाठक, पुष्पा दीक्षित, राजेन्द्र मिश्र, राधावल्लभ त्रिपाठी, शिवकुमार मिश्र, देवर्षि कलानाथ शास्त्री अपनी नवीन शैली एवं प्रयोगशीलता से भावाभिव्यक्ति कर रहे है।

आधुनिक संस्कृत साहित्य में भी कुछ कवियों ने प्राचीन परम्परा का अनुसरण करते हुए रामायण और महाभारत आदि को आधार बनाकर महाकाव्यों की रचना की है। यथा- छज्जुराम शास्त्री की **'शिवकथामृतम्'** डॉ. रमेशचन्द्र शुक्ल का **'सुगमरामायणम्'** तथा **'श्रीकृष्णचरितम्'** हरिदास सिद्धान्त वागीश का **'रूक्मणीहरणम्'** डॉ. सुधीकान्त भारद्वाज प्रणीत **'परशुरामोदयम् महाकाव्यम्'** इत्यादि। डॉ. कपिल द्विवेदी ने **'आत्मविज्ञानम्'** नामक 20 सर्गो के महाकाव्य की रचना की है जिसमें आत्म ज्ञान सम्बन्धी विषयों को प्रश्नोत्तर के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

(आधुनिक संस्कृत साहित्य श्रीः पृ. 21)

इस समय प्रसिद्ध पात्रों के जीवन पर आधारित महाकाव्यों की भी रचना की गई है। सुबोधचन्द्रपन्त ने **'झाँसीश्वरीचरितम्'** श्री पद्मशास्त्री ने **'लेनिनामृतम्'** श्री स्वयं प्रकाश शर्मा ने **'श्रीभक्तिचरितम्'** और श्री विश्वनाथ केशव छत्र शास्त्री ने **'सुभाषचरितम्'** और **'भारतीय स्वातन्त्र्योदयः'** काव्यो की रचना की। इसी प्रकार क्षमाराव विरचित **'स्वराज्यविजयः'** मधुकर शास्त्री कृत **'गान्धिगाथा'** श्याम वर्ण द्विवेदी कृत **'विशालभारतम्'** रघुनाथ प्रसाद चतुर्वेदी कृत **'श्री जवाहरज्योतिः'** परमेश्वर दत्त त्रिपाठी कृत **'रक्ताक्तहिमालयम्'** सत्यव्रत शास्त्री कृत **'इन्दिरागाँधीचरितम्'** भी प्रसिद्ध है।

इन काव्यों मे आधुनिक चरित्रों का चित्रण किया गया है। आधुनिक काल के संस्कृत कवि भारतीय होते हुए भी समस्त भूमण्डल के प्रतिनिधि प्रतीत होते

है। उन्होने अन्य देशों के महापुरूषों को आधार बनाकर भी महाकाव्यों की रचना की हैं उदाहरण स्वरूप डॉ. शशिधर शर्मा ने केनेडी **'करूणाञ्जलिः'** पद्मशास्त्री ने **'लेलिनामृतम्'** और सत्यव्रत शास्त्री ने **'बोधिसत्त्वचरितम्'** महाकाव्य की रचना की है।

कुछ कवियों ने अपने पिता और पितामह को आधार बनाकर महाकाव्यों की रचना की हैं। उदाहरण स्वरूप क्षमाराव ने अपने पिता के चरित्र को आधार बनाकर **'शंकर जीवन स्थानम्'** और श्री विधाधरशास्त्री ने अपने पितामह 'हरनामदत्त' के चरित्र को आधार बनाकर **'हरनामामृतम्'** नामक महाकाव्य की रचना की।

(आधुनिक संस्कृत साहित्य श्रीः पृ. 21-22)

आधुनिक संस्कृत के कवियों का मूलभूत उद्देश्य राष्ट्रीय भावनाओं का जागरण है। इसीलिए कालिदासादि कवियों की तरह रसाभिव्यक्ति के प्रति आग्रह नहीं है।

अर्वाचीन संस्कृत रचनाकारों ने देश की परिवर्तित परिस्थितियों को समझ कर अपने समय और समाज को रचना के रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। श्रीश्वर विद्यालङ्कार उन संस्कृत रचनाकारों मे से एक है, जिन्होंने नयी सभ्यता और राज्यप्रणाली की समाशंसा करते हुए यूरोपीय मानस को भी अपनी रचनाओं में प्रस्तुत करने का प्रयास किया। उनकी दो कृतियॉ **'दिल्लीमहोत्सवमहाकाव्यम्'** तथा **'विजयिनीकाव्य'** ऐतिहासिक महत्व की

रचनाएँ है, दिल्ली महोत्सव अंग्रेजी राज्य के प्रति आस्था और भक्तिभाव से प्रेरित है। वह अंग्रेजी शासन में हुई दिल्ली की प्रगति से प्रभावित है। अंग्रेजी शासन के प्रति आस्था भाव होते हुए कवि दिल्लीमहोत्सव काव्य का कवि राष्ट्रभावना की अभिव्यक्ति में अग्रसर है। समग्र भारत के भौगोलिक स्वरूप तथा भारतीय वसुन्धरा की नैसर्गिक अभिरामता की चेतना अब संस्कृत कवि में एक राजनीतिक बोध के साथ प्रकट होती है। दिल्ली महोत्सव का वर्णन करते हुए विद्यालंकार कहते है –

कश्मीर द्वार शोभां रचयति वपुषाऽद्यापि योद्यानभूमि-
र्दूरादाकाशनीचैः कुसुमशतवती नन्दबोद्यानमेव।
यामेनां राजराज्ये भणति जनगणी कुदि्सया कुदि्सयेति
द्राक्षाभ्राभ्रातकाद्येस्तरूभिरतिकगुरुर्वक्षवाटीव भाति॥

(4/3)

श्रीश्वर विधालंकार का ही दूसरा काव्य 'विजयिनी' काव्य है। इस काव्य में रानी विक्टोरिया का जीवनचरित्र है। योरोप के वातावरण और नव सभ्यता से कवि ने इसमें साक्षात्कार किया है। कवि विद्यालंकार की व्युत्पति और ज्ञान तथा साहित्य के नये वातायनों से परिचय यहाँ विशेष रूप से प्रतिफलित है। इसी क्रम में एक और महत्वपूर्ण रचना महोमहोपाध्याय लक्ष्मण सूरि द्वारा रचित **'कृष्णलीलामृत'** महाकाव्य उल्लेखनीय है।

(संस्कृत साहित्य : बीसवींशताब्दी, पृ. 3-7)

अभिनव संस्कृत साहित्य जगत में उदीयमान नारी कवयित्री में पण्डिताक्षमाराव

का नाम अत्यन्त प्रसिद्ध है। क्षमा देवी के काव्य ने उनके अपने व्यक्तिगत अनुभवों की प्रच्छन रेखाएँ देखी जा सकती है। राष्ट्रप्रेम के भाव को कर्म मे चरितार्थ न कर पाने की कसक उनके **'सत्याग्रहगीता'**, **'उत्तरसत्याग्रहगीता'** और **'उत्तरजयसत्याग्रहगीता'** काव्यो में झलकती है। यह क्षमादेवी नारी हृदय का संवेदन और अनूभूति प्रवणता ही थी जिसके कारण गीता की विधा को उन्होने राष्ट्र के नवजागरण के शंखनाद से गुंजित करते हुए नवयुग का नया काव्य रचा है। **'सत्याग्रहगीता'** मे गाँधीजी के जीवन दर्शन और कर्म को व्यक्त करने के लिए तद्नुरूप भाषा शैली अपनायी है। कवयित्री ने इसमें न कहीं अतिश्योक्ति की है न यथार्थ का हनन ही। गाँधीजी पर क्षमादेवी की महाकाव्यत्रयी संस्कृत साहित्य में अभिनव सोपान सरणि का निर्माण है। इसके अतिरिक्त पण्डिता क्षमाराव ने **'श्रीतुकारामचरित'**, **'श्रीरामदासचरितम'** और **'ज्ञानेश्वरचरितम्'** इन तीन महाकाव्यो में महाराष्ट्र के तीन महान् सन्तों का वर्णन किया है।

आधुनिक समय में श्रीधर भास्कर वर्णेकर की साहित्य साधना परिपाक 'शिवराज्योदयम्' नामक विशाल महाकाव्य है। **'शिवराज्योदयम्'** महाकाव्य वर्णेकर जी आधुनिक संस्कृतसाहित्य को अमूल्य योगदान है। यह वस्तुतः वाल्मीकि, व्यास और कल्हण की परम्परा में रचा हुआ विराट् महाकाव्य का प्रतिदर्श है। इस महाकाव्य में केवल शिवाजी जैसे आदर्श नायक का चरित्र ही नहीं, समग्र युग और इतिहास का एक विस्तीर्ण फलक यहां प्रस्तुत किया गया है। **'शिवराज्योदयम्'** महाकाव्य को पढ़ना एक उदात्त कविता का अनुभव भी देता है। द्वितीय सर्ग में समर्थ गुरू रामदास का विराट् चित्र समर्थ शब्दावली में मनोयोग से अंकित किया गया है –

भक्तिप्रियोऽनिकेतश्च वसुधैवकुटुम्बकः।

लोक प्रपञ्चनिरतस्थाप्येकान्तमाश्रितः॥

भक्ति (सेवा, भगवद्भक्ति) से प्रेम रखने वाले हो कर भी निकेतन रहित और सारी धरती को ही कुटुम्ब मानने वाले, लोकप्रपञ्च मे निरत रह कर भी एकान्त का सेवन करने वाले वे रामदास थे।

शिवाजी के चरित्र पर लिखा गया एक अन्य महाकाव्य **'क्षत्रपतिचरितम्'** उमाशंकर त्रिपाठी द्वारा रचित एक विशाल महाकाव्य है। त्रिपाठी जी का **'क्षत्रपतिचरितम्'** बीसवी शताब्दी के सबसे प्रौढ़ और श्रेष्ठ महाकाव्यो में से एक है।

वर्तमान समय में कई यशस्वी महापुरुषों यथा - शिवाजी-झाँसीरानी लक्ष्मीबाई-लोकमान्यतिलक, मोहनदासकर्मचन्दगाँधी-सुभाषचन्द्रबोस-जवाहरलाल नेहरू-राजेन्द्रप्रसाद-इन्दिरागाँधी-मदनमोहनमालवीय इत्यादि महापुरूषों को आधार बनाकर काव्य रचना हुई है।

परमानन्द शास्त्री ने तीन संस्कृत महाकाव्यों की रचना की है। **'जनविजयम्'** **'चीरहरणम्'** तथा **'कालिदासचरितम्'**। इनमे से पहले दो प्रकाशित है। शास्त्रीजी के महाकाव्य भी पारम्परिक बन्धच्छटा के साथ नवोन्मेष लिये हुए है। **'जनविजयम्'** महाकाव्य समकालीन घटनाओं को सीधे-सीधे चित्रण करने वाला अनोखा महाकाव्य है। परमानन्द शास्त्री ने अपने जनविजय महाकाव्य में आपातकाल की विसंगतियों का बेबाक चित्रण किया है -

सर्वत्र भीतहृदया मनुजा मनाङ्नो
उत्सेहिरे कथयितुं काचिदेकशब्दम्।
इष्टेषु मित्रसुजनेस्वपि संशयाना-
रचारा यतः प्रतिपदं व्यरचरन् हि तस्याः॥

देशो निलम्बितसमस्तजनाधिकारः,
किं न प्रतीयत इव स्म विशालकाय।
कारा निलम्बितसमस्तजनाधिकारा,
देशस्य किं नहि मता विहितानुकाश॥

(जनविजय-8/66-67)

सर्वत्र मनुष्य भयभीत थे, एक शब्द कोई किसी से नहीं कह पा रहा था, क्योकि इष्ट मित्रों और स्वजनों में उसके गुप्तचर मिले हुए थे। देश में समस्त जनता का अधिकार निलम्बित था, देश एक विशाल कारागार बन गया था, या कारागार देश की तरह हो गये थे।

'चीरहरणम्' महाकाव्य में द्रौपदी के चीरहरण की कथा है। इस महाकाव्य की द्रौपदी सामाजिक विषमताओं में पिसती आज की नारी का प्रतीक बन गयी है।

इसी क्रम को आगे बढ़ाते हुए कविवर अखिलानन्द शर्मा द्वारा रचित **'दयानन्ददिग्विजय'** महाकाव्य 21 सर्गो मे निबद्ध है। इस महाकाव्य में कवि ने स्वामी दयानन्द को भारत के उन्नायक के रूप में प्रतिष्ठित करते हुए लिखा-

यत्कृतं मुनिवरेण भारते भारतो दयकृते शिवं कृतम्।
भारतोन्नतिविष्टचेतसा भारते भवतु तन्मुदे सताम्॥

(दयानन्ददिग्विजय-18/62)

चम्पारण जिले के सरारा ग्राम के निवासी कविवर विन्ध्येश्वरी प्रसाद मिश्र ने महाभारत और पद्मपुराण में प्राप्त कर्ण और अर्जुन के बीच युद्ध से सम्बद्ध कथानक को लेकर 22 सर्गो मे **'कर्णार्जुनीय'** महाकाव्य की रचना की। इनकी दूसरी महाकाव्य रचना **'महर्षिज्ञानानन्दचरित'** है जो 23 सर्गो में प्रस्तुत हुई है।

'अर्वाचीनसंस्कृतमहाकाव्यानुशीलम्' के लेखक डॉ. रहसविहारी द्विवेदी को कर्णार्जुनीय महाकाव्य में साम्प्रतिक युगजीवन के सम्बन्ध में चित्रण नहीं मिला है। वस्तु विन्यास मे कवि केवल पौराणिक शैली का अनुकरण करता है। कवि का दूसरा महाकाव्य श्रीभारत धर्म महामण्डल के संस्थापक स्वनामधन्य महामनीषी स्वामी ज्ञानानन्द जी के जीवन पर आधारित है।

गोस्वामिबलभद्र प्रसाद शास्त्री जी का 12 सर्गो में रचित **'नेहरूयशः सौरभ महाकाव्य'** पं. जवाहरलाल नेहरू के राष्ट्रियचरित्र पर रचित महाकाव्यों में से एक है। नेहरू जी के चरित्र पर आधारित अन्य महाकाव्य श्याम वर्ण द्विवेदी कृत **'जवाहरदिग्विजयम्'** एवं रघुनाथ प्रसाद चतुर्वेदी रचित **'जवाहरज्योति महाकाव्यम्'** है।

अनेक पारम्परिक शैली के महाकाव्यो मे भी समकालीन बोध के साथ सामाजिक स्थितियों के प्रति संस्कृत के रचनाकार की जागरूकता दिखाई देती

है रामसेवक मालवीय के **'भूभामिनीविलासम्'** में साकेत के भिखारियों पर व्यंग्य करते हुए कहा गया है –

कुले हि संख्याः कलिकालशूले संस्तीर्णकाष्ठासनपादमूले।
एकां कृशाङ्गीं क्षुधया तदग्रे गां ब्रह्मबन्धुर्जरतीं बबन्ध॥

(भूभामिनीविलासम्–7/42)

अवसरवादी पंडो की चेष्टाओं का सजीव चित्रण करते हुए कवि कहता है

पान्थं समासाद्य तु घाटवाराः पंडाः क्वचिच्छद्मविरक्तवेषाः।
छलन्ति लुण्ठन्ति च तीर्थ कारान् शवं पथैकं परिवार्य गृध्रा॥

यहाँ **घटावार** शब्द लोकभाषा से लिया गया है।

नवचेतना जाग्रत करने में काशीनाथ द्विवेदी का **'रूक्मिणीहरण'** महाकाव्य काव्यात्मक समृद्धि के लिये विशेष सराहा गया है। इसमें श्रीकृष्ण आधुनिक सुधारवादी तथा गाँधीवादी नेताओं की भाषा में बोलने लगते हैं। वे अस्पृश्यता तथा जातिवाद का विरोध करते है –

अमु स्पृशेयं न विशेत् सुपर्वणां द्विजप्रवेश्यायततानिनपरः।
अमुष्य पेयं न पयोऽस्य पीयतामितीदृशी वोरूचिरा व्यवस्थितः॥

जनुः समानं परिदृश्यते यतः कुतस्तनी जातिभिदा तदिव्यते।
निरूपिता यामवलम्ब्य जन्मिनां विभिन्त्ररूपा निगमेषु कृतयः॥

(रूक्मिणीहरणम् 11/84–85)

धर्म के नाम पर होने वाले पाखंड पर तीखा प्रहार इस महाकाव्य में पहली बार ऐसी शब्दावली में हुआ है, जिसमें एक प्रकार का सात्विकरोष शोषण और अन्याय के विरूद्ध प्रकट है –

नमोऽस्तु पाखण्डविनिर्मिताय ते द्विजेन्द्र धर्मायविऽम्बितात्मने,
सहैधसा यत्र लतेव नूतना शयेन सत्रा तरणी प्रदह्यते॥

(रूक्मिणीहरणम् 11/91)

दूसरी ओर ठेठ पारम्परिक रचनाएं भी संस्कृत में अविच्छिन्त्र रूप से आ रही है, गंगाधर शास्त्री कृत **'अलिविलासिसंलापः'** या पं. शिवकुमार शास्त्री का **'यतीन्द्रजीवनचरितम्'** शास्त्रीय विमर्श और प्रौढ़ि की दृष्टि से महत्वपूर्ण है।

पौराणिक या प्राचीन कथाओं को आधार बनाकर अनेक महाकाव्य वर्तमान समय में लिखे गये है। डॉ. रसिक बिहारी द्विवेदी ने स्वातन्त्रोत्तर संस्कृत महाकाव्यों का विवेचन 'देववाणी सुवासः' में प्रकाशित अपने लेख में किया है। इनमें से 57 महाकाव्य प्राचीन कथाओं पर आधारित है तथा 69 महाकाव्य आधुनिक विषयो को लेकर लिखे गये है। 'आधुनिक संस्कृत महाकाव्यमानुशीलनम्' नामक ग्रन्थ में डॉ. द्विवेदी ने केवल एक दशक (1960–70) में प्रकाशित 52 संस्कृत महाकाव्यों का विवेचन किया है। आधुनिक काल में संस्कृत में अन्य आधुनिक विधाओं में रचना की अपेक्षाकृत न्यूनता तथा महाकाव्यों का इतनी बड़ी संख्या में लिखा जाना पारम्परिक विधा के सातत्य और संस्कृत में लिखने वालो की उसकी सीमा में बंधे रह जाने की दुर्बलता को भी द्योतित करता है। पर साथ ही इस काल में रचे गये महाकाव्यो में कुछ ऐसे भी है जो प्राचीन कथा के ब्याज

से अपने समय की व्याख्या करते हैं। उदाहरण के लिये प्रभुदत्त ब्रह्मचारी का महाकाव्य **'गणपतिसम्भवम्'** गणेश के पौराणिक चरित्र को आज के लोकतान्त्रिक मूल्यों के प्रतीक के रूप में व्याख्या करता है।

दत्वैवात्मशिरो बलिं गणपतिः प्राप्तोऽभवत् पूज्यताम् ,
एवं राष्ट्रसुशासनेच्छुचरिते लोकेलिमः स्याद् बलिः।
न स्यात् केवलमुत्सवेषु मिलितो राष्ट्रध्वज स्पर्शकः,
बाह्येनैव गलेन गायति च यः स्वां राष्ट्रगीतावलिम्॥

(गणपतिसम्भवम् 4/9)

उत्सवों में ही केवल राष्ट्रध्वज को छूना, बाहरी गले से राष्ट्रगीतावली गाना–यह आज की भाषा में आज की स्थितियों को प्रकट करने वाली शब्दावली है।

पौराणिक कथावस्तु को आधार बनाकर प्रणीत कुछ महाकाव्य इस प्रकार है– कालीपदतर्काचार्य रचित सत्यानुभाव और योगिभक्त चरित, रामावतार मिश्र कृत 'श्रीदेवीचरित' छज्जुरामशास्त्री कृत 'परशुरामदिग्विजय' तथा 'शिवकथामृतम्' डॉ. सुधीकान्त भारद्वाज कृत 'परशुरामोदयम्' महाकाव्यम् इत्यादि।

डॉ. रेवा प्रसाद का **'स्वातन्त्रयसम्भवम्'** महाकाव्य पण्डिता क्षमाराव तथा स्वामी भगवदाचार्य की भारतीय स्वातन्त्रय संग्राम पर आधारित महाकाव्यत्रयी के आगे की कड़ी है। हरिनारायण दीक्षित कृत भीष्मचरित में भीष्म के चरित्र की आज के समाज शास्त्र के अनुरूप व्याख्या प्रस्तुत की गई है। वसन्तत्र्यम्बक शेवड़े जी का **'शुम्भवध'** महाकाव्य में शास्त्रानुशीलन से समर्पित राजनीतिक विषयक,

विचारो की अभिव्यक्ति आज के सन्दर्भ में की गई है। कुछ महाकाव्यो मे इस विधा का ही नया रूप उभरा है। इस दृष्टि से दो महाकाव्य उल्लेखनीय है - पद्मशास्त्रीकृत **'लेलिनामृतम्'** तथा शिवदत्त चतुर्वेदी का **'चर्चामहाकाव्यम्'**। प्रथम में साम्यवाद निरूपण के साथ लेलिन का चरित्र व भारत रूस मैत्री निरूपित है। द्वितीय महाकाव्य में 24 सर्गो में देवपूजा सर्ग से अन्तिम हा-हा हू-हू सर्ग तक पूर्व के व अपने समय के उल्लेखनीय लोगों का वृतान्त है।

माधव श्रीहरिअणे द्वारा अपने समय के महान् राष्ट्रनेता और गीता रहस्य के प्रसिद्ध लेखक कर्मयोगी लोकमान्य बालगंगाधर तिलक के जीवन की घटनाओं पर आधृत **'श्रीतिलकयशोऽर्णवः'** ग्रन्थ एक ऐतिहासिक महत्व का काव्य है।

''स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है'' इस मन्त्र के दाता तिलक की प्रस्तुत 'यशोगाथा' में नाना घटनाओं का उल्लेख है। उदाहरणार्थ जब 'तिलक' ने केसरी पत्र का सम्पादन कार्य अपने हाथ मे लिया तो उनके मन मे जन-सेवा का भाव था, क्योकि लोक ऋण से उसी प्रकार मुक्ति पाई जा सकती थी। कवि लिखते है -

अहं सर्वेसकृतः सज्जनैर्देशबान्धर्वेः।
सर्वपक्षैः सर्ववर्णेः सर्वधर्मानुयायिभिः॥
ऋणापकरणं शक्यं नाधमर्णेन वै पृथक्।
प्रशस्यते सङ्घटिता जनसेवा विवेकिभिः॥

(तिलकयशोऽर्णवः 26/45-46)

(सभी पक्षो, वर्णो, धर्मो के अनुयायी सज्जनों, देश के बन्धु जनों ने मेरा उपकार किया है, अलग से अधमर्ण मैं ऋण को चुकता नहीं कर सकता, विवेकी लोग संघटित जनसेवा की प्रशंसा करते है।)

इसी प्रकार रघुनन्दन शर्मा ने तुलसी जीवन दर्शन पर आधारित **'श्रीतुलसीमहाकाव्यम्'** की रचना की है। वी. के. एन. एझतचन ने **'केरलोदय'** नामक ऐतिहासिक महाकाव्य की रचना की है, ओगेटि परीक्षित शर्मा ने दो महाकाव्यों **'यशोधरामहाकाव्य'** तथा **'श्रीमत्प्रतापराणायन'** का प्रणयन किया है। प्रथम गौतम सिद्धार्थ के गृहत्याग की प्रसिद्ध कथा पर आधारित है। तथा **'श्रीमत्प्रतापराणायन'** महाकाव्य प्रताप के जीवन चरित्र पर आधारित है, श्रीमत्प्रतापराणायन महाकाव्य कवि की महीयसी प्रतिभा का 'विस्फोट' कहा जा सकता है। श्री पी. सी. देव ने **'क्रिस्तुभागवतम्'** नाम से ईसा मसीह के जीवन पर 33 सर्गो के महाकाव्य की रचना की है। जग्गू कुल भूषण ने अपने काव्य **'अद्भुतदूतम्'** में कृष्ण को एक मानव रूप में चित्रित न करके 'अवतार' के रूप में चित्रित किया है।

इसके अतिरिक्त आधुनिक परिदृश्य पर डॉ. रसिक बिहारी जोशी का प्रसिद्ध महाकाव्य **'मोहभङ्गम्'** भी प्रसिद्ध है। यह अष्टसर्गात्मक है। इसमें मानव हृदय में निरन्तर उत्पन्न होने वाली द्वन्द्व की प्रवृत्ति को अङ्कित किया गया है। सत्यव्रत शास्त्री का **'रामकीर्तिकौमुदी'** तथा **'बोधिसत्त्वचरितम्'** आदि में नये विषयों का समावेश है। अनेक विधाओं में अपनी रचना प्रवृति से आधुनिक संस्कृत साहित्य को सम्पन्न करने का प्रयास किया उनमें कविवर रमेशचन्द्र

शुक्ल का स्थान अन्यतम् है। इनके महाकाव्य **'सुगमरामायण'** (14 सर्ग) तथा **'श्रीकृष्णचरित'** (11 सर्ग) है।

''नवोत्साहो नवो भावो नवा दृष्टिर्नवा कृतिः'' की भावना से निर्माण में प्रवृत्त कविवर विद्याधर शास्त्री की आधुनिक संस्कृत कवियो में अपनी एक अलग पहचान है। इनका **'हरनामामृत्तम्'** महाकाव्य 16 सर्गो में विभक्त है तथा पितामह पं. हरिनाम दत्त के जीवन चरित्र पर आधारित है। द्विजेन्द्र लाल शर्मा पुरकायस्थ ने शुक्राचार्य, कच और देवयानी के प्रसिद्ध पौराणिक कथानक पर आश्रित 12 सर्गो का महाकाव्य **'महामहम्'** की रचना की है।

मधुकर शास्त्री द्वारा रचित **'श्री महावीर सौरभम्'** 16 सर्गो का महाकाव्य है यह तीर्थकर महावीर स्वामी के जीवन पर आधारित है। कवि की यह उक्ति आज के राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में कितनी सार्थक है –

इन्द्रभूते व्यक्तिसेवा न मे जात्वपि रोचते।
जनार्चेव जिनार्चाऽस्ति जनतेव जनार्दनः॥

(श्रीमहावीरसौरभम् 11/17)

पं. श्रीरामदवे कृत 'भृत्याभरणम्' एवं 'राजलक्ष्मीस्वयंवर' विलक्षण कृतियां है भृत्याभरणम् महाकाव्य 36 सर्गात्मक है। इस महाकाव्य में कवि ने नौकरशाही की प्रवृतियों का वर्णन किया है। कवि ने नौकरी को भगवान की माया शक्ति की संज्ञा देते हुए बताया है कि यह नौकरी अपना भ्रष्टाचार रूपी जाल फैला रही है। उससे सम्पूर्ण राष्ट्र ही खतरे मे पड़ गया है। आज राष्ट्र की उन्नति के हाथ

भृत्या की लालफीताशाही से बन्धे हुए है। इस बन्धन से छुटकारा केवल भगवान ही दिला सकता है।

कवि के हृदय की जो वेदना भृत्या को लेकर प्रकट हुई है वे अत्यन्त कष्टकारी है। कवि ने स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय की आशाओं के विपरीत देश की स्थिति पर नारद के मुख से वेदना प्रकट की –

लुप्ताऽस्मिता कथमितः परिपालितार्थैः
किं वा व्यपाश्रयहतो निजराष्ट्रधर्मः।
मन्ये मृगेन्द्रमदमर्दन विक्रमोऽयं
देवादि सर्वदमनो निगडे निबद्धः॥

(भृत्याभरणम्)

श्री रामदवे का दूसरा महाकाव्य **'राजलक्ष्मीस्वयंवर'** यह प्रवृति बोधक है, यह 18 सर्गात्मक है। इस काव्य में कवि की राष्ट्रभक्ति एवं देश की सांस्कृतिक चिन्तन झलकता है।

पं. शिवगोविन्द त्रिपाठी कृत **'गान्धिगौरवम्'** नूतन प्रयोगों के द्वारा वैशिष्ट्य का अवगाहन करता है। 'नाति स्वल्पाः नातिदीर्घाः सर्गाअष्टाधिका इह' के अनुसार अष्टसर्गात्मक इस महाकाव्य मे 792 श्लोक है। इसमे युग पुरूष महात्मागांधी जी की जीवनचर्या के माध्यम से गान्धिवाद, को जो 1920 में राष्ट्रीय आन्दोलन का मुख्य विषय रहा है। प्रश्रय देते हुए सत्य, अहिंसा और सत्याग्रह की त्रिवेणी सङ्गम प्रस्तुत किया गया है।

आधुनिक महाकाव्यो में रेवाप्रसाद द्विवेदी जी के **'स्वातन्त्रयसम्भवम्'** महाकाव्य का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। इनका एक अन्य महाकाव्य **'सीताचरितम्'** में सीता के चरित्र की राष्ट्रवादी व्याख्या प्रस्तुत की गई है। इसी क्रम में राजेन्द्रमिश्र कृत **'जानकीजीवनम्'** महाकाव्य भी सीताचरित्र पर अवलम्बित है। इसमें रामराज्याभिषेक तक सीता का चरित्र उपनिबद्ध है। सीतानिर्वासन प्रंसग को कवि ने अग्राह्या प्रक्षेप बताया है। भक्तिभाव के साथ लोकजीवन, लोकाचार और लोकगीतों की छठा यत्र-तत्र है। इसी प्रकार आधुनिक काव्य जगत् मे नारी प्रधान अनेक महाकाव्यो का प्रणयन हुआ है यथा - विष्णुदत्त शर्मा कृत **'सौलोचनीयम्'** आत्मरामशास्त्रि प्रणीत **'सावित्रीचरितम्'** श्री नारायण शुक्ल का **'उर्मिलीयम्'** ओगटेपरीश्रित शर्मा कृत **'यशोधराचरितम्'**, सुबोधचन्द्र पंत कृत **'झाँसीश्वरीचरितम्'**, कालिकाप्रसाद शुक्ल का **'राधाचरितम्'**, बालभद्रशास्त्री कृत **'इन्दिराजीवनम्'** भीमकान्त पंथी प्रणीत **'जगदम्बिकावैभवम्'**, रामचन्द्रमिश्र कृत **'वैदेहीचरितम्'** डॉ. पूर्णचन्द्र शास्त्री कृत **'अपराजितावधूमहाकाव्यम्'** इत्यादि।

इस प्रकार आधुनिक महाकाव्यों मे राष्ट्रीय विभूतियों गाँधी, नेहरू, विवेकानन्द, सुभाष, झाँसी की रानी, इन्दिरागाँधी, शिवाजी, तिलक आदि को लेकर महाकाव्यों की रचना हुई है। आधुनिक महाकाव्यों में नए विषयों का काव्य में समावेश किया गया है।

संस्कृत महाकाव्य लेखन आज अपने स्वर्णयुग में प्रविष्ट है। आज की संस्कृत सुरापगा में अनेक साहित्य सरिताओं का संगम हुआ है। इसके प्रवाह में

सम्मिलन्ती सरिताँए इसकी ही उस लोक से प्रवाहित होती है जिसमें जीवन को कल्मषरहित कर देने की अदभुत क्षमता अतीतकाल से विद्यमान है। इनके संगम में टकराव नहीं आलिंगन की आकुलता है और यह स्थल तीर्थ नहीं तीर्थराज है, जहाँ आकर्षक भी है पवित्रता भी। गंगा का पूर्वसंचित जल जिस प्रकार शताब्दियों तक विकृत नहीं होता उसी प्रकार वाल्मीकि–कालिदासादि का पूर्व संचित परम श्रद्धाह रससिक्त साहित्य आज भी अनाघ्रत पुष्प की ताजगी और पुण्यों के अखण्ड फल के समान स्वादु है। जिस प्रकार शताब्दियों बाद गंगा का प्रवाह आज भी अविच्छिन्न है उसी प्रकार संस्कृत साहित्यधारा अद्यावधि अजस्त्र प्रवाहमान है, गंगा का संचित जल भी यदि वासी और विकृत नहीं होता तब आज का प्रवाह अनवगाहनीय कैसे हो सकता है? आज वैज्ञानिक युग का स्वतंत्र संस्कृत रचनाकार जो कुछ लिख रहा है उसका विशद अध्ययन और अनुशीलन संस्कृत साहित्य और राष्ट्र दोनो के लिए परम कल्याणकारी है। आज के संस्कृत महाकाव्य सत्य (यथार्थ) शिव और सुन्दर होने के कारण अवश्य ही स्वागतार्ह है।

तृतीय अध्याय

प्राचीन एवं आधुनिक काव्यशास्त्रीय लक्षणों के आधार पर 'विन्ध्यवासिनीविजयम्' का महाकाव्यत्व

संस्कृत वाङ्मय भारत की ही नहीं अपितु विश्व की एक अमूल्य निधि है, जिसके अनन्त रत्नों की आभा से यह निखिल भूमण्डल प्रकाशित होता रहा है प्रधानतः भारत ही इस अमृत कल्प वाङ्मय की उत्स भूमि रही है, क्योकि इसके अरूण प्रकाश से प्रकाशित प्राञ्जल प्रांगण में महर्षियों ने सर्वप्रथम साम का गान किया था। संस्कृत वाङ्मय में भी काव्य का महत्वपूर्ण स्थान है। संस्कृत काव्य के मुख्यतः दो भेद होते है- दृश्य काव्य और श्रव्य काव्य।

दृश्य काव्य

दृश्य काव्य रंगमंच के ऊपर प्रयोगकर्मी अभिनेताओं द्वारा अभिनय होता है जो कि (रामादि पात्रों की) अवस्थाओं के अनुकरणों से भरा-पुरा होता है (फलतः) नेत्रों एवं कानो के लिए रसायन कल्प होता है।

श्रव्य काव्य

जिसका कर्णेन्द्रिय ग्राह्य आनन्द सहृदयों द्वारा ग्रहण किया जाता है उसे श्रव्य काव्य कहते है। श्रव्य काव्य के पुनः तीन भेद किये है -

(1) गद्यकाव्य (2) पद्यकाव्य (3) चम्पूकाव्य

प्रातिभ कथन के कारण गद्य को गद्य कहते है। पदों अर्थात् चार चरणों द्वारा नियमित होने के कारण पद्य को पद्य कहते है। तथा गद्य एवं पद्य से समन्वित (शैलियों) का मिश्रण चम्पू कहलाता है। गद्य काव्य के कथा और आख्यायिका ये दो भेद किये गये है तथा पद्य के भी दो महाकाव्य तथा गीतिकाव्य किये है, गीतिकाव्य को ही खण्डकाव्य कहते है। चम्पू का कोई भेद नही होता। गीतिकाव्य के पुनः विषय की दृष्टि से 3 भेद किये गये है। स्तोत्र सम्बन्धी, नीति सम्बन्धी तथा श्रृंगार सम्बन्धी। स्तोत्र, नीति तथा श्रृंगार सम्बन्धी खण्डकाव्यों के यद्यपि प्रबन्ध और मुक्तक दोनो रूप संस्कृत साहित्य में मिलते है परन्तु स्तोत्र और नीति प्रायः मुक्तक के रूप में अधिक है। श्रृंगारिक खण्ड काव्यों में प्रबन्ध और मुक्तक दोनों रूपो का समान रूप से प्रयोग है काव्य का दूसरा भेद दृश्य है उसके भी दो भेद है – रूपक और उपरूपक।

तालिका के माध्यम से इनको और अधिक स्पष्ट किया जा सकता है

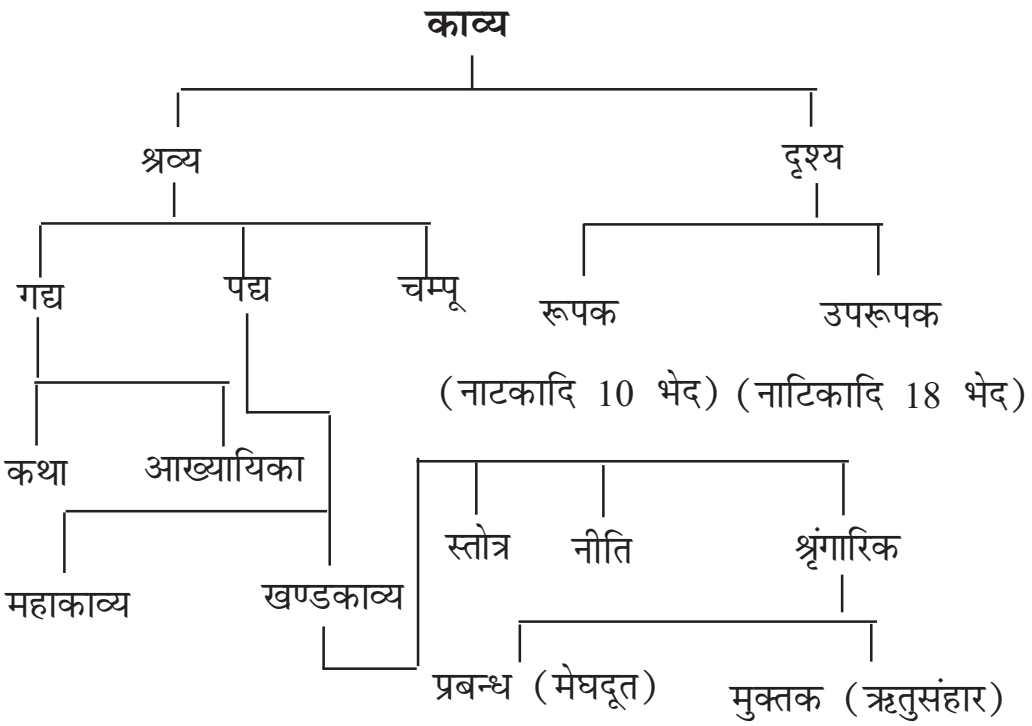

महाकाव्य का शास्त्रीय लक्षण प्राचीन ग्रन्थों में उपलब्ध नहीं होता है। लक्ष्य के आधार पर लक्षण की कल्पना की जाती है। इस नीति के अनुसार वाल्मीकि रामायण तथा कालिदासीय महाकाव्यों के विश्लेषण करने से आलोचकों ने महाकाव्य के शास्त्रीय रूप का अनुगमन किया। तथा महाकाव्य के लक्षण प्रतिपादित किये।

महाकाव्य श्रव्य काव्य की विधाओं में सबसे प्रमुख माना गया है। महाकाव्य शब्द महत् और काव्य इन दो शब्दों को मिलाकर बना है। महत् का अर्थ महान् या बड़ा है। इस विशेषण से इस काव्य प्रकार की प्रधानता प्रकट होती है। महत् काव्य इस संज्ञा का प्रयोग सर्वप्रथम वाल्मीकि रामायण में मिलता है। वहॉ वाल्मीकि रामायण को महत् काव्य कहा गया है।

महाकाव्य का अन्य नाम भी मिलता है 'सर्गबंध' यह नाम भी वाल्मीकि रामायण के प्रभाव से ही प्रचलन में आया हुआ प्रतीत होता है, क्योकि वाल्मीकि रामायण पहला काव्य है, जिसका विभाजन काण्डों के अन्तर्गत सर्गो में हुआ है। संस्कृत कवियों में माघ ने सर्वप्रथम महाकाव्य का विशिष्ट काव्य प्रकार के अर्थ में उल्लेख किया है –

विषयं सर्वतोभद्रचक्रगोमूत्रिकादिभिः।
शलौकैरिव महाकाव्यं व्यूहैस्तदभवद बलम्॥

महाराष्ट्री, प्राकृत तथा अपभ्रंश भाषाओं में रचे गये महाकाव्यों को आश्वासबंध तथा संधिबंध कहा गया है। इनका विभाजन आश्वासों तथा संधियों में हुआ है।

काव्य शास्त्र के आचार्यो मे सर्वप्रथम गण्य भामह ने महाकाव्य का लक्षण प्रतिपादित किया है भामह का कथन है कि उन्होनें सत्कवियों के मतों को देखकर तथा स्वयं की मेधा से महाकाव्यादि का लक्षण ग्रंथित किया है।

(काव्यलंकार 6/64)

सर्गबन्धो महाकाव्यं महतां च महच्चयत्।
मन्त्रदूतप्रयाणजिनायकाभ्युदयैश्च यत्।।
पञ्चभिः सन्धिभिर्युक्तं नातिव्याख्येमृद्धितम्।
चतुवर्गाभिधानेऽपि भूयआर्योपदेशकृत।।
युक्तं लोकस्वभावेनरसैश्च सक्तैः पृथक्।।

(काव्यालंकार 11.19-20)

अर्थात् सर्गबन्ध महाकाव्य कहलाता है। यह आकार मे बड़ा (महत्) तथा महान् लोगों के चरित्र का निरूपण करने वाला काव्य है इसमें मंत्र (परामर्श, मंत्रणा) दूत, युद्ध का वर्णन होता है तथा नायक का अभ्युदय दिखाया जाता है। महाकाव्य ग्राम्य शब्दो से रहित, अर्थ सौष्ठव से युक्त अंलकार से युक्त तथा सत्पुरूषों के चरित्र को प्रस्तुत करने वाला होना चाहिए। इसमें चतुवर्ग (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष) का प्रतिपादन लोकस्वभाव तथा सभी रसों का निरूपण होना चाहिए।

आचार्य भामह के बाद आचार्य दण्डी ने अपने काव्यादर्श में महाकाव्य की परिभाषा इस प्रकार दी है -

सर्गबन्धो महाकाव्यमुच्यते तस्य लक्षणम्।
आशीर्नमस्क्रिया वस्तुनिर्देशो वापितन्मुखम्।।

इतिहास कथोद्भूतमितरद्वा सदाश्रयम्।
चतुर्वर्गफलायतं चतुरोदात्त नायकम्॥

नगरार्णवशैलर्तु चन्दार्कोदयवर्णनैः।
उद्यानसलिल क्रीडा मधुयानरतोत्सवैः॥

विप्रलम्भैविवाहैश्च कुमारोदय वर्णनैः।
मन्त्रदूत प्रयाणाजिननायकाभ्युदमैरपि॥

अंलकृतम् संक्षिप्त रसभाव निरन्तरम्।
सर्गैरनति विस्तीर्णः श्राव्यवृत्तैः सुसन्धिभिः॥

सर्वत्र भिन्न वृत्तैरूपेतं लोकरञ्जनम्।
काव्यं कल्पान्तरस्यामि जायते सदलंकृति॥

(काव्यालंकार प्रथम परि. 14-19)

अर्थात् महाकाव्य को सर्गो में बंधा होना चाहिए प्रारम्भ मे आर्शीवाद, देव नमस्कार एवं वर्ण्यवस्तु के सूचन का मंगलमय विधान करना चाहिए। इसकी कथावस्तु इतिहास से उद्भुत हो या कोई अन्य प्रख्यात वृत्त होना चाहिए। जिसका सम्बन्ध किसी सज्जन चरित्र से हो। इसका नायक चतुर एव उदात्त होना चाहिए एवं इससे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चतुवर्णो की उद्देश्य सिद्धि होनी चाहिए। इसमें नगर, समुद्र, शैल, ऋतु, सूर्योदय, उपवन, जलक्रीड़ा, मदिरापान, प्रेम लीलाएं,

विरह प्रंसग आदि का सम्यक् वर्णन होना चाहिए। महाकाव्य को अंलकृत, विस्तृत, रसभाव से परिपूर्ण, अपेक्षाकृत कम बड़े सन्धियों वाले एवं मधुर छन्दों में निबद्ध सर्गो से युक्त होना चाहिए। लोकरंजन में इसे सक्षम होना चाहिए, सदलंकृत होने पर इस प्रकार का महाकाव्य कल्पान्तर स्थायी होता है।

परवर्ती आचार्य विश्वनाथ ने साहित्यदर्पण में महाकाव्य के लक्षण इस प्रकार निरूपित किये है –

सर्गबन्धो महाकाव्यं तत्रैको नायकः सुर।
सद्वंशः क्षत्रियो वापि धीरोदात्तगुणान्वितः॥

एकवंशभवा भूपाः कुलजा बहवोऽपि वा।
श्रृङ्गारवीरशान्तानामेकोऽङ्गी रस इष्यते॥

अङ्गनि सर्वेऽपि रसाः सर्वे नाटकसन्धयः।
इतिहासोद्भवं वृत्तमन्यद्वा सज्जनाश्रयम्॥

चत्वारस्तस्य वर्गाः स्युस्तेष्वेकं च फलं भवेत्।
आदौ नमस्क्रियाशीर्वा वस्तुनिर्देश एव वा॥

क्वचिन्निन्दा रवलादीनां सतां च गुण कीर्तनम्।
एकवृत्तमयैः पद्यैरवसानेऽन्यवृत्तकैः॥

नातिस्वल्पा नातिदीर्घा सर्गा अष्टाधिका इह।
नानावृत्तमयः क्वापि सर्गः कश्चन दृश्यते॥

सर्गान्ते भाविसर्गस्य कथायाः सूचनं भवेत्।
संध्यासूर्येन्दुरजनी प्रदोषध्वान्तवासराः॥

प्रातर्मध्याह्नमृगशैलर्तुवनसागराः
संभोग विप्रलभ्यौ च मुनिस्वर्गपुराध्वराः॥

(साहित्यदर्पण पृ. 604-609, 315-322)

अग्निपुराण में महाकाव्य के लक्षण मे कुछ और नयी परिकल्पनाओं का समावेश किया गया है तदनुसार महाकाव्य में शक्वरी, अतिजगती, अतिशक्वरी तथा त्रिष्टुप या पुष्पिताग्रा आदि छन्दों का प्रयोग अपेक्षित है। महाकाव्य (रामायण, महाभारत) की कथा पर आश्रित हो सकता है अथवा किसी सज्जन के चरित्र पर भी।

रूद्रट ने अपने काव्यालंकार (18/18-19) में दण्डी के द्वारा निर्दिष्ट काव्य लक्षण को कुछ विस्तार के साथ दुहराया है। रूद्रट ने उतने ही विषय के उपबृहण तथा अलंकरण को उचित माना है। जिससे कथावस्तु का कथमपि विच्छेद न हो सके। कालिदास के काव्यों में अलङ्करण काव्य वस्तु का विच्छेद कथमपि नहीं करता।

अनेक आचार्यो ने महाकाव्य सम्बन्धी जो मंतव्य दिए उनकी शब्दावली और निरूपण शैली यद्यपि भिन्न है पर वह इन्ही प्रमुख तत्त्वों की ओर संकेत करती है -

(1) कथानक

(2) चरित्र

(3) वस्तुव्यापार

(4) रस और भाव व्यञ्जना

(5) शैली और रूप संघटक

(6) उद्देश्य और भाषा

इसमें कथानक को विख्यात या लोकविश्रुत्त व्यक्ति से सम्बन्धित होना चाहिए। वस्तु व्यापार जीवन के विस्तार को निरूपित करने वाला एवं समग्रता का बोध कराने वाला होना चाहिए। किसी एक रस को प्रधान रूप से एवं अन्य रस को गौण रूप में अभिव्यक्त होना चाहिए। भाव व्यंजना रसपूर्ण एवं मार्मिक होनी चाहिए। रूप संघटन मे नाटक सन्धियों का समावेश इसलिए अपेक्षित होना चाहिए की कथा-शरीर सुसंगठित रहे और ''औत्सुक्य'' का भाव आद्यान्त बना रहे। धर्म-अर्थ-काम और मोक्ष में से किसी एक की रसात्मक अभिव्यंजना होनी चाहिए भाषा प्रौढ़, प्राञ्जल एवं परिष्कृत होनी चाहिए।

महाकाव्य का पाश्चात्य मत

पाश्चात्य विचारको में अरस्तू, डब्लू. पी. केर, डिक्सन, एबरक्रोम्बी, सी.

एम. बावरा प्रभृति ने महाकाव्य के सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त किए है। इन विचारको ने 'महाकाव्य' को 'एपिक' (महाकाव्य) अथवा हिरोइक पोयट्री (वीरकाव्य) इन दो नामों से अभिहित किया है।

ये दो प्रकार के होते हैं -

(1) APIC of Groth (विकसित महाकाव्य)

(2) APIC of Art (कलात्मक महाकाव्य)

इनके अनुसार महाकाव्य के अन्तस्त्व चार हैं -

(1) महान् उद्देश्य।

(2) महच्चरित्र।

(3) महती घटना और।

(4) समग्र जीवन की घटनाओं का प्रभावपूर्ण चित्रण।

विकसित महाकाव्य वह है जो अनेक शताब्दियों में अनेक कवियों के प्रयत्न से विकसित होकर अपने वर्तमान रूप में आया है वह प्राचीन गाथाओं के आधार पर महाकाव्य होता है। जैसे-ग्रीक महाकवि होमर का 'इलियड' और 'ओडिसी' नामक युगल महाकाव्य। कलापूर्ण महाकाव्य वह है जिसे कवि अपनी काव्यकला में गढ़कर तैयार करता है। इसमें प्रथम श्रेणी के काव्यों में समग्र गुण विद्यमान रहते है। जैसे - लेटिन भाषा में वर्जिल कवि द्वारा रचित 'इनीड' महाकाव्य। इस दृष्टि से यदि संस्कृत महाकाव्यों का वर्गीकरण किया जाय तो वाल्मीकीय रामायण प्रथम श्रेणी में रखा जाएगा एवं 'रघुवंश' और 'शिशुपालवध' द्वितीय श्रेणी में।

महाकाव्य का आधुनिक मत

''जिस प्रकार वैरवरी (शब्द) के मूल मे मध्यमा अर्थ काम करती है, उसी प्रकार आधुनिक भारतीय भाषाओं के मूल में संस्कृत निवास करती है। संस्कृत से जुड़कर ही हम अपनी अस्मिता को पहचान कर उसकी रक्षा कर सकते है। उसमें अन्तर्हित ज्ञान को तर्क सम्मत और बोधगम्य भाषा के स्तर पर उतारकर, यदि जिज्ञासुओं के जेहन में उतर सकें, स्वयं ज्ञान और आचरण के स्तर पर भीगे और लोगो को भिगा सके तभी यह भाषा अपनी अभूतपूर्व महिमा के कारण लोकप्रिय हो सकती है।''

(आचार्य राममूर्ति त्रिपाठी- दृक् - 13 पृ. 35)

आधुनिक संस्कृत साहित्य में महाकाव्य लेखन के क्षेत्र में अभूतपूर्व परिवर्तन हुआ है। जिसके कारण महाकाव्य के लक्षणों में भी कुछ परिवर्तन दृष्टिगोचर हुआ है आधुनिक कवि राजेन्द्र मिश्र ने अपनी कृति **'अभिराजयशोभूषणम्'** में महाकाव्य का लक्षण इस प्रकार दिया है -

सर्गबन्धो महाकाव्यं लोकवन्द्यजनाश्रयम्।
ख्यापयद्विश्वबन्धुत्वं स्थापयद्विश्वमङ्गलम्॥ (66)

लोकवन्द्य नायक पर आश्रित, विश्वबन्धुत्व को प्रख्यापित करने वाला तथा विश्वमंगल की स्थापना करने वाला सर्गबन्ध महाकाव्य होता है।

नायकस्तत्र देवः स्यात्प्रज्ञाबन्धुरयो नृपः।
चारूचर्योऽथवा कोऽपि सज्जनश्चरितोज्जलः॥ (67)

उस महाकाव्य में नायक कोई देवता हो, प्रजावत्सव नरपति हो अथवा समुज्जवल चरित्र वाला तथा सौम्य आचरण वाला कोई सत्पुरूष।

प्रातस्सन्ध्यानिशीथेन्दुभास्करोदयतारकाः।
वनोद्याननदी सिन्धुप्रपातादिबलाहकाः॥ 68

प्रातः, सन्ध्या, अर्धरात्रि, चन्द्रोदय, सूर्योदय, नक्षत्रोदय, वन, उद्यान, नदी, सागर, प्रपात, पर्वत, मेघ।

गामाश्रमपुराऽरामदुर्ग सैन्यरणोद्यमाः।
पुत्रजन्मादिवृत्तान्ताः पामरावाससङ्कथा॥ 69

गाँव-गिरावँ, आश्रम, नगर, आराम, दुर्ग, सैन्य रणप्रयाण तथा पुत्रजन्मादि के वृतान्त एवं झुग्गी-झोपड़ी की आपबीती।

इतिवृत्तानुरोधातु वर्णनीया न चाऽन्यथा।
प्रसह्य वर्णने तेषां न च तृप्तिर्न वा यशः॥ 70

(महाकाव्य के) इतिवृत के अनुरोध को दृष्टि में रखकर ही वर्णित करना चाहिए, किसी अन्यरूप (पूर्वाग्रहवश) मे नही। उनका जबर्दस्ती (अस्वाभाविक) वर्णन करने से न तो (पाठको को) तृप्ति होगी और नहीं (रचनाकार कवि को) यश प्राप्त होगा।

(अभिराजयशोभूषणम् पृ. - 218-219)

राधावल्लभ त्रिपाठी जी ने महाकाव्य का लक्षण इस प्रकार दिया है -

पद्यात्मकं समग्रजीवननिरूपणं परं महाकाव्यम्।
गीतैह्यपुराण लोककथा भेदास्य नानात्वम् इति॥

(अभिनव. 3/1/3)

रहस बिहारी द्विवेदी के अनुसार महाकाव्य का लक्षण –

सर्गैर्वृतैश्च बद्धं सहृदयहृदयाह्लादिशब्दार्थरम्यं,
संवादैश्च्योच्चशिल्पैः सततरसमयं ग्रन्थियुक्तंसमृद्धम्।
पात्रं स्याद् यस्य मुख्यं परमगुणयुतं लोकविख्यातवृतं,
भव्यं लोकस्वभावं महदपि महतां तन्महाकाव्यमास्ते॥

सर्गो एवं वृतों में निबद्ध, सहृदय-हृदयाह्लादी शब्दार्थ समष्टि से रमणीय, संवादो एवं उत्कृष्ट शिल्पों से निरन्तर रसमय, ग्रन्थियुक्त, समृद्ध, लोकविख्यात कथानक वाला, चरित्रचित्रण की प्रधानता से युक्त, परमगुणयुक्त, भव्य लोकस्वभाव का प्रदर्शक, श्रेणी में भी श्रेष्ठ जो हो, उसे महाकाव्य कहते है।

(संस्कृतमहाकाव्यो का समालोचनात्मक अध्ययन, पृ. 43)

'विन्ध्यवासिनीविजयम्' का महाकाव्यत्व

संस्कृत के साहित्याचार्यो द्वारा निरूपित महाकाव्य के लक्षणों के आधार पर प्रस्तुत महाकाव्य का परीक्षण करने पर इसका महाकाव्यत्व सिद्ध होता है। इस महाकाव्य का प्रारम्भ वस्तुनिर्देशात्मक मंगलाचरण से होता है –

निवासभूमिर्वनदेवतानां तपस्विनामाश्रमसन्निवेशः।
सोपानपङ्क्तस्त्रिदशालयस्य विन्ध्याभिधो राजति शैलराजः॥

(1/1)

अर्थात् विन्ध्य नाम का यह पर्वतराज वनदेवताओं की निवासभूमि है यहां पर तपस्वियों के आश्रम है और यह स्वर्ग की सीढ़ी के समान सुशोभित है।

महाकवि कालिदास ने अपने **'कुमारसम्भव'** काव्य का आरम्भ भी इसी प्रकार किया है –

'अस्ति उत्तरस्यां दिशि देवात्मा हिमालयो नाम नगाधिराजः।'

(कुमारसम्भव-1/1)

'सर्गबन्धो महाकाव्यम्' के अनुसार महाकाव्य सर्गबद्ध होना चाहिए, सर्गो की संख्या 8 से अधिक होनी चाहिए इस आधार पर **'विन्ध्यवासिनीविजयम्'** महाकाव्य सर्गबद्ध है तथा इसमें 16 सर्ग हैं।

महाकाव्य के सर्गो में विविध छन्दों का प्रयोग होता है इस काव्य में भी

कई छन्दों का प्रयोग हुआ है और सर्गान्त में छन्द परिवर्तन किया गया है- यथा प्रथम सर्ग के प्रथम श्लोक में एकादशाक्षरवृत्तिं उपजाति है तथा सर्गान्त में छन्द परिवर्तन कर वसन्ततिलका का प्रयोग किया है। द्वितीय सर्ग के प्रथम श्लोक में रथोद्धता छन्द सर्गान्त में मन्दाक्रान्ता, तृतीय सर्ग प्रथम श्लोक वियोगिनी अन्तिम छन्द वृतमञ्जरी है। सोलवे सर्ग में प्रथम श्लोक में वियोगिनी छन्द तथा अन्तिम 113वें श्लोक में शार्दूलविक्रीडित छन्द है। इस प्रकार इस महाकाव्य में महाकाव्यलक्षणानुरूप छन्दों का प्रयोग हुआ है।

प्राचीन परम्परानुसार महाकाव्य का नायक धीरोदात्त प्रकृति का होना चाहिए किन्तु कवि ने धीरोदात्त गुणो से मण्डित **'विन्ध्यवासिनी'** को नायकत्व प्रदान किया है। नायिका को नायकत्व (प्रधान पात्र) प्रदान करने वाले इस महाकाव्य की कथावस्तु मार्कण्डेय पुराण के **'दुर्गासप्तशती'** अंश से ली गई है किन्तु स्थान-स्थान पर नवीन उद्भावनाएँ भी गई है। इसमें पराम्बा माँ शक्ति का वर्णन है जो विन्ध्य द्वारा प्रार्थित महर्षि अगस्त्य की प्रार्थना पर विन्ध्याचल को अपना निवास स्थान बनाती है और **'विन्ध्यवासिनी'** के नाम से प्रसिद्ध होती है। इस महाकाव्य का नामकरण भी विन्ध्यवासिनी के नाम पर **'विन्ध्यवासिनीविजयम्'** रखा गया है। इस प्रकार यह महाकाव्य नारी प्रधान महाकाव्यों के अन्तर्गत आता है।

इस महाकाव्य में धीरोदात्त प्रकृति से युक्त विन्ध्यवासिनी की चारित्रिक विशेषताओं को भली-भाँति उभारा गया है। यथा -

गौरी जगत्सृजसि सत्वगुण प्रधाना दुर्गा रजोगुणमयी भुवनावनाय।
काली तमोगुणवती प्रलयस्थिता चेत्येकैव भाति भवति त्रिगुणस्वरूपा॥

(9/51)

स्वर्गाद् देवाः किन्नरसिद्धा हिमशैलात्पातालस्थाः सर्पगणाः सम्भृतदर्पाः।
यक्षा रक्षाकर्मनियुक्ताश्च निधीनां दुर्गा देवीं पूजयितुं तत्र समीयुः॥

(9/67)

आगत्य तत्र स्थितिमाश्रयन्ती विन्ध्याचले मत्तमयूररम्ये।
महेश्वरी जह्नुसुतोपण्ठे जगत्त्रयं शास्ति निरस्ततन्द्रा॥

(9/73)

जद्यान दुर्धषुभुजावलेपं महासुरं संयति दुर्गभारव्यम्।
ततः सतां दुर्गतिनाशदक्षा दुर्गेति नाम्ना प्रथिता बभूव॥

(9/68)

इस महाकाव्य मे **'भक्तिरस'** की प्रधानता है। यह भक्तिरसाप्लावित कृति है। इस काव्य मे यथास्थान करूण, भयानक, हास्य इत्यादि रसों का भी वर्णन किया गया है। प्रस्तुत है भक्ति रस का बड़ा ही सुन्दर एवं हृदयहारी उदाहरण जिसमें अगस्त्य मुनि माँ जगदम्बा की स्तुति बड़े ही मार्मिक ढंग से कर रहे हैं-

लक्ष्मीगृहेषु समरेषु सतां जयश्रीः सिद्धिस्त्वमुद्यमवतां कृतिनां समृद्धि।
विद्याऽसि देवी सुधियां कुधियामविया लज्जा त्वमम्ब कुलजेषु तनूषु मज्जा॥
हृद्या विभासि विलसत्रवमुख्यपद्या विद्यावदा पणिकसंवलितानिषधा।
दत्वा यदत्र परमेश्वरि भक्तिमूल्यं क्रीणाति संश्रितर्जनस्त्व मुक्तिपुण्यम्॥

(9/50)

इसमें नगरवर्णन, ऋतुवर्णन, सूर्योदय वर्णन, सन्ध्या वर्णन, पर्वत, मेघ, आश्रम वर्णन, पुत्र जन्मादि का वर्णन भी उपयुक्त स्थान पर किया गया है।

नगर वर्णन की रमणीय छटा दर्शनीय है –

वर्वर्ति सा कापि नितान्तरम्या वाराणासी मुक्तिपुरीपुरारेः।
यस्यामसाधारणगौरवायां न भाग्यहीनो लभते प्रवेशम्॥

(6/10)

बोभूयते सा नगरी शिवस्य सर्वत्र लोके न गरीयसी किम्।
विनीपं यत्न यदधिष्टतानां स्वर्गीऽपवर्गश्च करस्थ एव॥

(6/12)

विन्ध्यक्षमाधरहिमाचलमध्यवर्ती चर्मण्यवतीरविसुतापरिरवान्तरपिः
गोवर्धनेन गिरिणा गुरूणा प्रपत्रो विभ्राजते जनपदोभुवी शूरसेनः॥

(10/1)

त्रयोदश सर्ग मे वर्षा ऋतु का तथा षोडश सर्ग में शरद् ऋतु का विस्तृत वर्णन है जिसमें कवि ने अभिनव कल्पनाओं का मनोरम सन्निवेश प्रस्तुत किया है।

वर्षा ऋतु का वर्णन द्रष्टव्य है –

अवलोक्य वारिधरमम्बरस्थितंकमलाकरं विजहृती स ससम्भ्रमम्
व्रजति स्म लब्धबिसन्तुशम्बला कलहंस पङ्क्तिरपि मानसं सरः॥

(13/39)

तिथिमष्टमी बहुलपक्षवर्तिनी प्रचुरं ववर्ष जलदो धरातले।

भुवनत्रयीमिव विलोप्तुमागतं प्रलयाम्बुवाहमनुकर्तुमुद्यतः॥

(13/53)

शरद् ऋतु –

अवतीय वसुन्धरातले मधुरश्रीर्ऋतुनायिका शरत्।

यदुवंशमणेरजीजनद्धृदि विन्ध्याचल दर्शन स्पृहाम्॥

(16/36)

प्रातःकालीन चित्रण दृष्टव्य है –

प्रातःकाले वादयित्वा स्वशृङ्गं गोविन्दोऽयं गोपबाणन प्रबोध्य।

वृन्दारण्यं तैः समं धेनुवृन्दं निन्ये धृत्वा कम्बलं शम्बलं च॥

(15/57)

सप्तम सर्ग में अगस्त्य आश्रम का सविस्तार चित्रण किया है जो महाकाव्य लक्षणानुरूप है। यथा –

उटजे कुशासनगता बटवः पटवः स्ववेदपठनं व्यदधुः।

स्वरितानुदात्तभृदुदात्तयुतः प्रससार वर्णमधुरः स खः॥

(7/10)

विनिमज्ज्य देवतटिनीसलिले विहिताहिनकान् स्वगृहमाश्रजतः।

स कमण्डलून् जल भृतान्दधतः शतमन्युरैक्षत तपस्विजनाम्॥

(7/12)

प्रकृत महाकाव्य में लौकिक विषय का वर्णन न करके जगन्माता के गुणगण वर्णन के द्वारा कवि ने वैशिष्ट्य एवं पावित्र्य का निदर्शन प्रस्तुत किया है। ऋतु वर्णन, यज्ञ वर्णन, आश्रम वर्णन आदि के साथ सम्पूर्ण काव्य मे भक्ति तत्व का भी प्रतिपादन किया गया है। इस महाकाव्य में आधुनिक जीवन की समस्याओं का निदर्शन, दुर्जनता पर सज्जनता की विजय, विन्ध्यदेवी के अवतार या जन्म के मूल में जनपीड़ा का विनाश आदि का वर्णन किया गया है। महाकाव्य का उद्देश्य नारी की महिमा का चित्रण करना है।

स्वात्माराम प्रकृति के उपासक कविवर शेवडे की काव्य साधना भी इनकी उपासना की कोटि में परिगणनीय है। इन्होने इस महाकाव्य में वर्णनों को अधिक प्रश्रय दिया है घटनाओं को कम। अलंकारों को अनुस्यूत करने और अपनी बात के प्रस्तुतीकरण की शैली परम्परागत है, **'विन्ध्यवासिनीविजयम्'** में कवि ने उपमा, अनुप्रास, काव्यलिङ्ग इत्यादि अलंकारो से अपने काव्य को अलंकृत किया है।

कवि के पाण्डित्य के साथ भारतीय सांस्कृतिक चेतना का गहरा रंग भी उद्भासित है। एक ओर कवि विन्ध्य वर्णन के प्रसंग में समाज के सबसे छोटे वर्ग किरातों, पुलिन्दों, शालिगोपियों पर दृष्टिपात करता है तो दूसरी ओर वाराणसी

वर्णन में वैदिक विद्वानों के वेदपाठ की चर्चा करता है।

इस प्रकार निश्चित रूप से यह महाकाव्य संस्कृत साहित्य में एक विशेष स्थान प्राप्त करने का अधिकारी है।

प्रथम अध्याय

'विन्ध्यवासिनीविजयम्' कथावस्तु की समीक्षा

'विन्ध्यवासिनीविजयम्' महाकाव्य की प्रमुख विशेषता यह है कि इसमें लोकैषणा का स्पर्श नहीं हुआ है। यह पूर्णतः भक्तिरसाप्लावित कृति है। शृंगारी कवि को सम्पूर्ण विश्व शृंगार पूर्ण लगता है तो भक्तिरसामृत से परिपूरित हृदय वाले व्यक्ति को भक्ति परक विषयों के अतिरिक्त और कुछ दृष्टिगोचर ही नहीं होता है जैसे- गोपियों के लिए प्रसिद्ध उक्ति है -

''जितदेखो तित श्याममई है'' लौकिक विषयों से सर्वथा निरपेक्ष कवि का भक्तिपूर्ण हृदय जगन्माता के गुणगान वर्णन मे ही पूर्णतः प्राप्त है। जगदम्बा के चरित पर आधारित अपने दोनों महाकाव्यों विन्ध्यवासिनीविजयम् और शुम्भवध महाकाव्य में कवि ने इसी जगदम्बागुणगण वर्णनैक परायणता के वैशिष्ट्य को ही उजागर किया है जिससे कविता वनिता के पावित्र्य की स्पष्ट उद्घोषणा हुई है।

भगवती की भक्ति में निमग्न कवि का मानस किसी लौकिक विषय को वर्ण्य विषय के रूप में स्वीकार ही नहीं कर पाया इस कारण ही विन्ध्यवासिनीविजय महाकाव्य के सृजन का शुभारम्भ हुआ। इस महाकाव्य के प्रणयन के लिए जगन्माता ने ही शेवड़े जी को प्रेरित किया किन्तु महाकाव्य की रचना के लिए कथानक सुसंगत रूप से उपलब्ध नहीं था। इस समस्या ने कवि को हतोत्साहित

भी किया। किन्तु भगवती द्वारा पुनः पुनः प्रेरित किये जाने पर शेवड़े जी इस महाकाव्य के प्रणयन में प्रवृत हुए और अल्पकाल में ही परिपूर्ण कर लिया। इससे उनका प्रतिभा वैशद्य प्रकट होता है किन्तु सहज उपासक प्रवृत्ति वाले महाकवि ने इस सृजन को पार्वती परमेश्वर की आज्ञा और उनके प्रसाद से प्रसूत एवं प्रादुर्भूत माना है। अनेक पुरस्कारों से सम्मानित महाकवि को **'अभिनव कालिदास'** का सम्मान प्राप्त है।

महाकवि शेवड़े ने भारतीय दर्शन की पृष्ठभूमि में उच्चस्तरीय साहित्य की सर्जना की है। शाक्त दर्शन की विविध मान्यताओं का इनकी कृतियों में समावेश है। इनकी काव्यशैली सरल प्राञ्जल तथा प्रभावी है। इनकी काव्यकृतियों पर वाल्मीकि, व्यास, कालिदास तथा भवभूति का प्रभाव परिलक्षित होता है।

महाकवि शेवड़े भारतीय तथा पाश्चात्य शिक्षा पद्धति में शिक्षित एवं अनेक शास्त्रों के पारंगत विद्वान् हैं। फलस्वरूप इनका चिन्तन प्रौढ़ एवं लेखन परिमार्जित है। उनके कृतित्व का समाकलन उन्हें भारतीय संस्कृत साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान का अधिकारी बनाता है।

'विन्ध्यवासिनीविजयम्' महाकाव्य की कथावस्तु मूलतः दुर्गा सप्तशती एवं भागवत पुराण पर आधारित है। दुर्गासप्तशती शाक्त दर्शन का प्रतिष्ठित ग्रन्थ है एवं श्रीमद्भगवत महापुराण 18 महापुराणों में सर्वश्रेष्ठ तथा कृष्ण भक्ति सम्प्रदाय का सर्वमान्य एवं मूलग्रन्थ है।

इस महाकाव्य में कवि ने अपनी कल्पना का भी यथा स्थान समावेश किया है जिससे नवीन उद्भावनाएँ सम्भव हो सकी है।

प्रथम 9 सर्गों में विन्ध्याचल, अगस्त्य ऋषि एवं जगन्माता को आधार बनाकर वर्णन किया गया है, शेष 7 सर्गों में भगवान श्री कृष्ण की कथा है। जिसमें भगवती विन्ध्यवासिनी की महिमा का ही चित्रण है। भगवती के समुत्कर्ष का निरूपण करते हुए कवि ने यह प्रतिपादित किया है कि जगन्माता की कृपा कटाक्ष के प्रसाद से ही श्री कृष्ण लोकोत्तर कार्यो के सम्पादन में समर्थ हुए।

प्रथम सर्ग में विन्ध्यपर्वत पर नारदागमन का वर्णन किया गया है। विन्ध्याचल के प्राकृतिक वैभव का चित्रण किया गया है –

अत्युच्छ्रितत्वादतिदुर्गमत्वाद् वसुन्धराभारभरक्षमत्वात्।
असंशयं यः कुलपर्वतानामग्रेसरत्वं सततं बिभर्ति॥

(1/2)

द्वितीय सर्ग में विन्ध्याचल और नारद के मध्य संवाद का चित्रण है। नारदागमन से विन्ध्य प्रसन्नता का अनुभव करते है। नारद विन्ध्य को त्रिभुवन पर्यटन करते हुए विष्णुलोक जाने, लक्ष्मीनारायण के दर्शन करने तथा अमरावती गमन का वर्णन किया।

अपने स्वभाव के अनुरूप नारद ने विन्ध्यपर्वत से इन्द्र के कुछ ऐसे कृत्यों का वर्णन किया जिससे विन्ध्य के मन में इन्द्र के प्रति कलह की सृष्टि होती है –

नास्ति मेरुसदृशः क्षमाधरो नो पुरं यदमवरातीसमम्।
नास्ति नन्दनवनोपमं वनं कल्पवृक्ष सदृशो न पादपः॥

(2/39)

नारद के वचनों को सुनकर विन्ध्यगिरी के मन में प्रचण्ड क्रोधाग्नि प्रज्वलित हो गई। क्रोध के कारण विन्ध्यगिरि का विशाल विग्रह कांपने लगा–

क्रोधकम्पितविशालविग्रहः खादिरज्वलनरक्तलोचनः।
न्यश्चसीदतिततरां महीधरः कालसर्प इवपादताडितः॥

(2/49)

क्रोधित नारद से संक्षिप्त वार्तालाप करके विन्ध्यगिरि मौन हो गये क्योकि मनीषी जन ज्यादा नहीं बोलते और विन्ध्याचल तो स्वभाव से ही गम्भीर है।

मन्त्र विमर्श नामक **तृतीय सर्ग** में विन्ध्याचल का अन्य पर्वतों के साथ विचार–विमर्श का वर्णन है। पर्वतों के साथ इन्द्र का वैर प्रसिद्ध है विन्ध्याचल सभी पर्वतों को आमन्त्रित करता है और इन्द्र से बदला लेने के लिए सबकी सहमति प्राप्त करता है।

चतुरङ्गबलो महीपतिर्नयहीनो न जयाय कल्पते।
अगदश्चिरयत्नसाधितो भिषजः पथ्यविवर्जितो यथा॥

(3/34)

इस सर्ग में राजनीति का सुष्टु निरूपण हुआ है।

विजितोऽपि बलेन केवलं पुनरुत्थानमरिः प्रपद्यते।
वशमेति नयेन दासवत् स चिरं मन्त्रबलदिवोरगः॥

न नयेन बिना बलं फलेद् बलहीनस्तु नयो भवेद् वृथा।
उभयं तदपेक्षते नृपः सुदृढं चक्रयुगं यथा रथः॥

(3.35-36)

चतुर्थ सर्ग में विन्ध्याचल के उन्नमन का निरूपण हुआ है। जगन्माता भगवती दुर्गा और अपने गुरु अगस्त्य का स्मरण करके विन्ध्यपर्वत बढ़ने का उपक्रम करता है। विन्ध्यपर्वत के बढ़ने की उपमा बलियज्ञ में वामन बने विष्णु के बढ़ने की क्रिया के साथ की गई है। यहाँ पर रूप साम्य, धर्म साम्य एवं प्रभाव साम्य का सुन्दर निदर्शन प्रस्तुत किया गया है -

बलियज्ञगतखिविक्रमः श्रणशो वृद्धिमवाप्नुवत्रिव।
ददृशे स तदा सविस्मयं नगराडुत्रतकन्धरैजनैः॥

कुतुकं तदिदं दिदृक्षवः स्थविरा जर्जरभुग्न विग्रहाः।
अवलम्ब्य करेण यष्टिकां स्खलदेकैकपदाः समाययुः॥

(4.6-9)

विन्ध्यगिरि के बढ़ने और बढ़ने के बाद उत्पन्न स्थिति का चित्रण महाकवि ने विस्तार से किया है। बालक और युवा ही नहीं जर्जर शरीर वृद्ध भी विन्ध्य के उन्नमन को देखने के लिए दौड़ पड़े। मानव ही नहीं पशु-पक्षी भी प्रभावित होते हैं। हिरण, हाथी, मृग, शेर आदि पारस्परिक विरोध को भूल कर एक कुटुम्ब के सदस्यों की भाँति आचरण करने लगते है।

विन्ध्य के अप्रत्याक्षित उन्नमन से इन्द्र चिन्तित हो उठते है तभी इन्द्र के पास नारद आते है नारद ने हँसते हुए इन्द्र से चिन्तित होने का कारण पूछा और सहानुभूति प्रदर्शित की। नारद मुनि ने इन्द्र से कहा कि इसका उपाय आप सब भगवान विष्णु से ही पूछें। ऐसा निर्देश देकर नारद अंतर्धान हो जाते है–

भगवन्तमधोक्षजं विभुं सकला यूयमुपेत्य सादरम्।
परिपृच्छत वारणोचितं विवदोऽस्याः सुरराज साधनम्॥

मुनिरित्यनुशिष्य नारदः शतमन्युं सहसा तिरोदधे।
पथिकस्य निदर्श्य सत्पथं जलदान्तर्निशि चन्द्रमा इव॥

(4/52–53)

इसके पश्चात् इन्द्रादि देवगण नारद के कथनानुसार बैकुण्ठ की यात्रा करते हैं। वैकुण्ठ पहुँच कर त्रिभुवन नाथ विष्णु की स्तुति करते है –

शैवास्त्वां शिव इति वैष्णवाश्च विष्णुं गणेशा गणपतिमर्यमेति सौराः।
वैचित्र्यादभिमतसम्प्रदायभेदादेकं सहुविधमेव कल्पयन्ति॥
यत्साङ्ख्यप्रभृतिषु दर्शनेषु भूयान् सिद्धान्ते भवति परस्परं विरोध।
व्यामोहाद्वदुपपादने स तेषा मन्धानामिव गजवर्णनोद्यतानाम्॥

(5–17–18)

भगवान विष्णु इन्द्र से अपने आगमन का प्रयोजन पूछते है। इन्द्र उत्तर देते हैं कि भगवान विष्णु सर्वज्ञ है विन्ध्यगिरि के निरन्तर उन्नयन से जगत पीड़ित हो रहा है निरन्तर विस्तार के संकट से निवृत्ति के लिए प्रार्थना करने पर भगवान

विष्णु इन्द्र से कहते हैं कि यह सब तुम्हारे कृत्य का परिणाम है और महर्षि अगस्त्य के पास जाने की सलाह देते हैं।

मधुरवचनपूर्वं पूर्णपात्रस्य लाभाद्विकसितवदनश्रीः सूचनात्कार्यसिद्धेः।
मधुरिपुपदपद्मं भक्तियुक्तः प्रणम्य त्रिदशपतिरगरत्यस्याश्रमाय प्रतस्थे॥

(5-42)

सप्तम सर्ग 'अगस्त्य दर्शन' है। इस सर्ग में इन्द्र वाराणसी में महर्षि अगस्त्य से मिलते है। गलित गर्व इन्द्र महर्षि अगस्त्य से विन्ध्यगिरि के बढ़ने से उत्पन्न संकट के निवारण के लिए प्रार्थना करते हैं। महर्षि अगस्त्य पहले तो इन्द्र के गुणों का वर्णन करते हैं फिर दोषों की ओर इंगित करते हैं -

इति तस्य सानुनयमभ्युदितं वचनं निशम्य विबुधाधिपतेः।
स्मितचन्द्रिकाञ्चितमुखाम्बुरुहः कलशीसुतो मुनिरवोचततम्॥

गुणाशालिनि त्वयि महेन्द्र महानबलेपदोष उपयाति पदम्।
स्थलपद्मकण्टकितयोः सदृशी गुणदोषयोरयुतसिद्धयुतिः॥

(7-29, 32)

अगस्त्य मुनि विन्ध्यगिरि की प्रशंसा करते हैं - उसे अपना प्रिय तथा शिव भक्त बताते हैं। विन्ध्यगिरि के निरन्तर उन्नयन का कारण इन्द्र द्वारा उसका अपमान ही बताते हैं। जिससे वह कुपित हो गया है। सारे संकटों का कारण इन्द्र का अविवेक बताते हैं। व्यथित होने पर इन्द्र महर्षि अगस्त्य को अनुनय विनय द्वारा मनाने में लगे रहते हैं। अन्ततः मुनि द्रवित हो जाते हैं और इन्द्र का

अभिलषित करने का वचन देकर आश्रम से विदा करते हैं।

अष्टम सर्ग का नाम **'अगस्त्य विन्ध्याचलसंस्तम्भनम्'** है। इस सर्ग में इन्द्र की प्रार्थना स्वीकार करके महर्षि अगस्त्य विन्ध्यगिरि के पास जाते हैं, उसे समझाते हैं और पूर्वस्थिति में आ जाने के लिए कहते हैं, क्योंकि उसके उन्नयन से त्रिभुवन संकट में पड़ गया है। विन्ध्याचल गुरु अगस्त्य की आज्ञा को स्वीकार करते हुए कहते हैं कि – हे मुनिवर मैं आपका अनुशासन माला की भाँति शिरोधार्य करता हूँ किन्तु शिशु की भाँति कुछ याचना भी करता हूँ –

तवमहामहिमत्रनुशासनं शिरसि माल्यमिव प्राणिदध्महे।
श्रुतिवचः सदृशं वचनं गुरोर्बरिभरीत्यनतिक्रमणीयताम्॥

यदपि पालयितुं कृतनिश्चयस्तव निदेशमशेषमसंशयम्।
वरददुर्ललितस्तु यथा शिशुस्तदपि किञ्चन याचितुमुत्सहे॥

(8.48–49)

विन्ध्यगिरि याचना करते हैं कि जगदीश्वरी अम्बिका उसके सानुतट को अपना निवास स्थान बना लें। महर्षि अगस्त्य विन्ध्यगिरि की प्रार्थना का अनुमोदन करते हैं और भुवनेश्वरी से प्रार्थना करने हिमालय जाते हैं।

नवम सर्ग 'श्री जगन्मातुः विन्ध्याचल निवास' है। इस सर्ग में कैलाश यात्रा का बड़ा ही सुन्दर एवं हृदयस्पर्शी चित्रण किया गया है एक उदाहरण दृष्टव्य है –

आमूलचूलमवरुद्धतटां हिमानी कर्पूरपुञ्जधवलामयमादधानः।

यातो दिवाकरकरैरतिचाकचिक्यं राराज्यते च रजताचल एव साक्षात्॥

(9-32)

इसके पश्चात् महर्षि जगज्जननी के दर्शन के लिए जाते हैं। महर्षि अगस्त्य ने देवी पार्वती की महिमा का वर्णन करते हुए कहा है -

सांख्यां वदन्ति भवतीं प्रकृत्तिं पुराणीं,

वेदान्तिनः सः श्रुतिमतां कथयन्ति मायाम्।

शक्तिं परा पशुपते निर्गदन्ति शैवा,

अस्मत्कृते तनुमती करुणा त्वमेव॥

प्राणावरोध परिजृम्भित कुम्भकश्रीर्निवातदीप इव काचन निश्चलाङ्ग।

मातर्भवानि विसतन्तुतनीयसीं त्वां साक्षात्करोति हृदि कुण्डलिनी स्वरूपाम्॥

(9.43-44)

महर्षि अगस्त्य माँ की स्तुति करने के पश्चात् याचना करते है कि कैलाश दुर्गम है हिमाच्छादित है अतः कृपा करके जगन्माता विन्ध्यगिरि पर निवास करें जिससे भक्त सुगमता से पहुँच सके माँ प्रार्थना स्वीकार कर लेती है। जगज्जननी विन्ध्याचल पर स्थित हो जाती है। तथा दुर्ग नाम के असुर का संहार करने के कारण माँ 'दुर्गा' के नाम से प्रसिद्ध होती है।

जघान दुर्घषु भुजावलेपं महासुरं संयति दुर्गमाख्यम्।

ततः सतां दुर्गतिनाशदक्षा दुर्गेति नाम्ना प्रार्थना बभूव॥

(9/68)

दशम सर्ग से **षोडशसर्ग** तक उत्तरार्ध है जिसमें भगवान कृष्ण की कथा का निरूपण हुआ है। इसमें भी भगवती विन्ध्यवासिनी का समुत्कर्ष निरूपण हुआ है। वसुदेव भगवान श्रीकृष्ण को पुत्र रूप में प्राप्त करते है और भगवान श्रीकृष्ण भगवती के कृपाकटाक्ष से ही लोकोत्तर कार्य के सम्पादन में समर्थ होते हैं।

कवि ने महाराज उग्रसेन की दानशीलता का वर्णन विस्तार पूर्वक किया है –

उग्रसेन इति विश्रुतः श्रितौ वृष्णिवंशतिलको नराधिपः।
शासति स्म मथुरां कुलक्रमाद् वासुकिः फलवतां पुरीं यथा॥
तत्र राजनि नयेन मेदिनीं राजनीति निपुणे प्रशासति।
नाऽजनि प्रकृति मध्यगः क्वचित् कोऽपि जन्तुरपमृत्युभाजनमः॥
तेन विद्वदनुवनुरागिणा धनं यच्छता सदसि मुक्तपाणिना।
पण्डितेषु ददतो दरिद्रतां दुर्यशः स्थिरमपाकृतं विधेः॥

(11-1, 2, 12)

उग्रसेन के चण्डधीः कंस नाम का पुत्र था युवा होने पर कंस को युवराज बना दिया जाता है। सत्ता में आने पर कंस वसुदेव और देवकी को घर में बन्दी बना देता है। यदुवंश के कुलगुरु गर्ग महामुनि हैं। वसुदेव उन्हें बुलाते हैं और अनुरोध करते हैं कि गर्गाचार्य विन्ध्याचल जाकर वसुदेव के लिए जगदम्बा की उपासना करे। उनके अनुरोध को स्वीकार कर गर्ग मुनि विन्ध्याचल जाकर सहस्त्र चण्डी यज्ञ करते हैं।

महायाग के पूर्ण होने पर माँ प्रकट होती है और करुणार्द्रा माँ कहती हैं –

प्राप्ते पूर्ति तत्र महायागविधाने नीते विप्रैर्भुम्नशिरस्कैर्धनभारे।
गर्गाचार्य मण्डपगर्भे स्थितवन्तं साक्षाद् भूत्वा प्राह भवानी करणार्द्रा॥

मया प्रेरितो देवकी गर्भ मध्ये भवेदष्टमः स्पष्टमेवाऽम्बुजाक्षः।
हरेद् दुष्टनाशात् स कष्ट जनानां यथा ग्रीष्मजं प्रावृषेण्याम्बुवाहः॥

वसुदेवमुपस्थितखेदभरं परिसान्त्वय मद्वचनात् त्वरितम्।
मथुरां व्रज सम्प्रति गर्गमुने सफलं तव कार्यमभूत्सकलम्॥

(12-44, 46, 48)

कवि ने वर्षा ऋतु का भी बड़ा सुन्दर चित्रण किया है -

शमयन् दवानलमुपप्लुतं वने मदयस्तृषाकुलितचातकव्रजम्।
मधुरस्वरेण शिखिभिः समाजितो जलदागमनोवतरतिस्मभूतले॥

(13/35)

जब देवकी ने अष्टम गर्भ धारण किया तभी यशोदा भी गर्भवती हुई और दोनों स्थानों पर प्रसन्नता का वातावरण बनता है।

इसके पश्चात् वसुदेव कृष्ण को नन्दगेह पहुँचाते हैं। वसुदेव यमुना को पार करने का कोई साधन न पाकर **'जय विन्ध्यवासिनी'** इस मंत्र का जाप करते हुए यमुना में प्रविष्ट हुए -

अनवाप्य महापयोधिकल्पां तरितुं कञ्चिदुपायमन्ततस्ताम्।
स जपन् प्रविवेश भानुकन्यां जय विन्ध्याचलवासिनीति मन्त्रम्॥

(14/16)

महाकवि ने विन्ध्यवासिनी जगदम्बा की माया से गोकुलवासियों के निन्द्रा मग्न होने का वर्णन स्वभावोक्ति और विरोधाभास अलंकारों के माध्यम से सहज और रम्य ढंग से किया है।

विनिवेश्य मुखेकरारविन्दं गृहदोलासु च बालकाः निदद्रुः।
विपिने हरिणा गृहे कपोतास्तुरगाः संविविशुश्च मन्दुरायाम॥

अवलम्ब्य शुक्राश्च मौनमुद्रां सुषुपुः पञ्चरवर्तिनो मयूराः।
वृषभा अथधेनवश्च गोष्ठे भषकाश्चापि चतुष्पथे प्रसुप्ताः॥

बहुना किमिहातिजल्पितेन प्रतिपद्य स्तनपायिबालरूपम्।
भुवनावननित्य जागरूका स्वयमेषागिरिजाऽपि संविवेश॥

(14.25–27)

'कंसवध' नामक **पंचदशसर्ग** में कृष्ण द्वारा कंस के मारे जाने का वर्णन है। आरम्भ में कृष्ण के बालचरित्र का चित्रण है। कृष्ण को पुत्र रूप में प्राप्त कर नन्द यशोदा आनन्द मग्न हो जाते हैं, उत्सव मनाया जाता है। नन्द की प्रार्थना पर गर्गाचार्य द्वारा नामकरण किया जाता है।

पूतना प्रकरण कवि ने विस्तार से वर्णित किया है –

दुग्धं तस्याः कालकूटं करालं पीत्वा कृष्णचण्डिकायाः प्रसादात्।
बाधां नाऽधात् साधको लेशमात्रं क्षीराब्धिस्थं चन्द्रमौर्लिर्यथैव॥

(15/34)

कृष्ण की अनेक बाललीलाओं का वर्णन कवि ने बड़े ही सुन्दर ढंग से किया है यथा – कृष्ण के मुख में यशोदा द्वारा विश्व दर्शन, ऊखल–बन्धन लीला, तृणावर्त आदि राक्षसों के वध का वर्णन इत्यादि– कालिया नाग के विष से कृष्ण ने यमुना को मुक्त किया –

ज्ञात्वा भीतिं गोदुहां गोवृषाणां नद्याः पानादम्भसांदूषितावान्।
कृष्णस्तेषां शुद्धिमाधातुकामः संसिद्धोऽभूच्छासने कालियस्य॥

(15–74)

गोवर्धन पर्वत को कृष्ण ने अंगुली पर उठाकर सभी गोपालों की रक्षा की –

पूजाहानात्स्वामिना निर्जराणामम्भोवृष्टया पीडयमानात् प्रकोपात्।
अङ्गुल्य ग्रोदस्त गोवर्धनागो गोगोपालान् पद्मनाभोररक्ष॥

(15–88)

मल्लयुद्ध में कृष्ण चाणूर को और बलराम मुष्टिक को मार गिराते हैं। इसके बाद सिंह की भाँति उछल कर कंस के पास जाकर केश पकड़ कर उसका वध कर देते हैं, कंस के मरण से सभी लोग प्रसन्न हो जाते हैं।

हत्वा कृष्णः कंसमल्लं बलिष्ठं चाणूराख्यं, तोशलं चाऽऽजघान।
रामोयुद्धे मुष्टिकं मोटयित्वा कूटं सिद्धं कूटयुद्धे जिहिंस॥

उत्प्लुत्याऽसौ सिहवद् राजमञ्चे हाहाशब्दं कुर्वतां रङ्गभाजाम्।
केशग्राहं मर्दयामास कंसं शौरिः सौरिर्दुष्पथप्रस्थितानाम्॥

अष्टौ तस्य भ्रातरः कङ्कमुख्याः क्रुद्धा योद्धुं येऽभियाताः खलस्य।
उदगूर्वस्तान् मुद्गरं रौहिणेयः साधिक्षेपं पूर्वपेषं पिवेष॥

कंस प्रमीतमवलोक्य ययुः प्रमोदं तत्र स्थिताः सदसि पौरजनाः समस्ताः।
दूरीकृते दिनकरेण धनान्धकारे सञ्जायते जगति किन्त्र दिशां प्रसादः॥

(15/124-126)

अन्तिम सर्ग में विन्ध्याचल में वसुदेव द्वारा जगदम्बा के पूजन का वर्णन है। इस सर्ग में शरद् ऋतु का सुन्दर चित्रण हुआ है -

अवतीर्य वसुन्धरातले मधुरश्रीऋतुनायिका शरत्।
यदुवंशमणेरजीजनद्ह्यदि विन्ध्याचलदर्शनस्पृहाम्॥

(16-36)

कंस का वध कर कृष्ण बंदी वसुदेव और देवकी को मुक्त करते हैं। कंस के पिता को कृष्ण सिंहासन पर बिठाते है। वसुदेव गर्गाचार्य से माता विन्ध्यवासिनी के दर्शन की स्पृहा व्यक्त करते हैं।

गर्गाचार्य शारदीय नवरात्र में विन्ध्याचल यात्रा को श्रेष्ठ बताते हैं। वसुदेव सभी यादव बांधवों को लेकर विन्ध्याचल के लिए चल पड़ते हैं। सभी लोगों ने विन्ध्यागिरि के मनोरम दृश्य का अवलोकन किया -

सुरसिन्धुविगाहनिर्मलः कलयन् पुष्कलपुष्पसौरभम्।
असभाजयदेत्य मथुरान् पुरतो विन्ध्यगिरेः समीरणः॥

(16-73)

इसके पश्चात् वसुदेव जगदम्बा की पूजा-अर्चना करते हैं -

जगदीश्वरी विन्ध्यवासिनी प्रियभक्ते करुणातरङ्गिणी।
तवपादसरोरुहद्वये मम नित्यं भ्रमरायते मनः॥
गिरिजा गिरिकाननान्तरे विपदांसन्धिषु विन्ध्यवासिनी।
परिरक्ष भयेषु भैरवी नवदुर्गातनुरम्ब दुर्गतौ॥

(16.85-88)

पाँचवे दिन ललिता अम्बा की पूजा की जाती है। दुर्गाष्टमी मनायी जाती है। हिमसुता माता को प्रसन्न किया जाता है सभी बान्धवों के साथ वसुदेव नवरात्र का पारण करते हैं।

नवरात्र उत्सव को सम्पन्न करके थके हुए वसुदेव सो जाते हैं, तब स्वप्न में माँ चण्डिका आती है और वर देती है कि वसुदेव के पुत्र दुर्मदों का वध करेंगें। कोई विपत्ति नहीं आयेगी और वीर पुत्र के चरित्र का गायन कैलाश शिखर पर किन्नर करेंगें। वर प्रदान करके दुर्गा अन्तर्हित हो जाती हैं। वसुदेव का मन किन्नर किन्नर करेंगे। वर प्रदान करके दुर्गा अन्तर्हित हो जाती है। वसदेव का मन प्रसन्नता से परिपूरित हो जाता है।

स्वप्ने समेत्य पथिनेत्रयोः स्थिता स्मेरनना प्रणि जगाद चण्डिका॥
प्रीता तवाऽस्मि वसुदेव सेवया दास्ये वरं किमपि ते परन्तपः।
भूयात् सुतस्तव निहत्य दुर्मदान् सर्वत्र भूपतिषु जैत्रविक्रमः॥
नाऽतः परं तवभवेद्विपत्ततिस्त्वं पुत्रपौत्रसहितौ निवत्स्यसि।
गास्यन्ति वीरचरितं सतस्य ते कैलाशशैलशिखरेषु किन्नराः॥

(16/109-111)

द्वितीय अध्याय

'विन्ध्यवासिनीविजयम्' महाकाव्य का भावपक्ष

समीक्षात्मक अध्ययन

कथानक - आकलन

'विन्ध्यवासिनीविजयम्' विश्व की अतिप्राचीन, दैवीय भाषा संस्कृत के सुदूर अतीत से प्रवाहमान काव्यधारा के अत्यन्त विशिष्ट महाकाव्यों की परम्परा में विशेष स्थान का अधिकारी है जो कवि के वैदुष्य तथा सर्जनात्मकता का परिचय प्रस्तुत करता है। प्रस्तुत महाकाव्य में नारी के परम उदात्त, विविध दैवी गुणों से समन्वित चरमोत्कर्ष **'जगन्मातृत्व'** का निरूपण हुआ है। षोडश सर्गात्मक प्रकृत महाकाव्य के प्रथम सर्ग में 40 श्लोक, द्वितीय सर्ग में 55 श्लोक, तृतीय सर्ग में 51 श्लोक, चतुर्थ सर्ग में 55 श्लोक, पञ्चम सर्ग में 42 श्लोक, षष्ठ सर्ग में 77 श्लोक, सप्त सर्ग में 54 श्लोक, अष्टम सर्ग में 57 श्लोक, नवम सर्ग में 74 श्लोक, दशम सर्ग में 50 श्लोक, एकादश सर्ग में 68 श्लोक, द्वादश सर्ग में 53 श्लोक, त्रयोदश सर्ग में 70 श्लोक, चतुर्दश सर्ग में 54 श्लोक, पञ्चदश सर्ग में 126 श्लोक तथा षोडश सर्ग में 113 श्लोक हैं। कुल श्लोकों की संख्या 1039 है। इस महाकाव्य की नायिका जगन्माता विन्ध्यवासिनी है। जिनका निरूपण आदि शक्ति के रूप में किया गया है। जो कि त्रिदेवों ब्रह्मा, विष्णु और महेश की प्रेरिका है। इस काव्य का भावपक्ष एवं कला पक्ष दोनों ही प्रभावपूर्ण है। कवि की साहित्यिक गरिमा, प्रकरणवक्रता, उत्कृष्ट शिल्प विधान ने इस महाकाव्य को अत्यन्त विशिष्ट बना दिया है।

'विन्ध्यवासिनीविजय' महाकाव्य का मूल कथानक मार्कण्डेय पुराण के दुर्गा सप्तशती अंश से लिया गया है किन्तु कवि ने अपनी प्रतिभा एवं मौलिक उद्भावनाओं से इस नारी चरित्र प्रधान महाकाव्य को संस्कृत वाङ्मय की एक महान उपलब्धि का रूप प्रदान किया है।

कथानक का प्रारम्भ विन्ध्याचल के निकट नारदागमन से होता है। नारद इन्द्र के विरुद्ध कलह के लिए प्रेरित करके चले जाते हैं। पर्वतों के साथ इन्द्र का वैर प्रसिद्ध है। विन्ध्याचल भगवती दुर्गा का नाम स्मरण कर बढ़ने का उपक्रम करता है। उधर इन्द्र भयभीत हो जाता है तथा भगवान विष्णु की शरण में जाता है। विष्णु उसे अगस्त्य के पास जाने की सलाह देते हैं। देवताओं के साथ इन्द्र काशी जाते हैं। इन्द्र की प्रार्थना अगस्त्य स्वीकार कर लेते हैं और विन्ध्याचल के पास जाकर उसे पूर्ववत् स्थिर होने का आदेश देते हैं, विन्ध्याचल अपने गुरु अगस्त्य की बात मानने के लिए तैयार हो जाता है किन्तु गुरु से प्रार्थना करता है कि विन्ध्याचल पर माँ भगवती दुर्गा को निवास करने के लिए प्रेरित करें। अगस्त्य कैलास जाकर भगवती को राजी करते हैं। विन्ध्याचल **'शक्तिपीठ'** बन जाता है।

उत्तरार्द्ध (शेष सात सर्ग) में, विन्ध्यवासिनी की कृपा से वसुदेव को कृष्ण पुत्ररूप में प्राप्त होते हैं। कंस द्वारा वसुदेव एवं देवकी को कारागृह में रखा जाता है वसुदेव के अनुरोध पर गर्गाचार्य विन्ध्याचल जाकर सहस्रचण्डी यज्ञ करते हैं। प्रसन्न होकर दुर्गा नन्द के यहाँ जन्म लेना स्वीकार करती है तथा विष्णु को वसुदेव के पुत्र के रूप में अवतीर्ण करने के लिए प्रेरित करती हैं। कारावास में

कृष्ण जन्म, वर्षा में वसुदेव द्वारा उन्हें गोकुल पहुंचाया जाना, यशोदा के पास कृष्ण को छोड़कर भगवती दुर्गा को मथुरा लाना, कंस द्वारा योगमाया को मारने का उपक्रम किन्तु वह आकाश में विलुप्त हो जाती है। कृष्ण द्वारा कुवलयापीड हाथी, चाणूर आदि मल्लों के पश्चात् कंस का संहार आदि वर्णित है। शारदीय नवरात्र में वसुदेव आदि की विन्ध्याचल, यात्रा तथा नवरात्र महोत्सव आदि का वर्णन है।

इस प्रकार कवि ने इस कथानक को अपने कलात्मक वैभव एवं सृजनात्मकता के अद्भुत समन्वय से अत्यन्त हृदयस्पर्शी एवं पाठक तथा श्रोता को पुलकित करने में समर्थ बनाया है। निश्चय ही इस महाकाव्य का कथानक आधुनिक संस्कृत वाङ्मय में उच्च स्थान का अधिकारी है।

चरित्र-चित्रण

चरित्र-चित्रणः - **'विन्ध्यवासिनीविजयम्'** महाकाव्य के पात्रों के चरित्रांकन में कवि को पर्याप्त सफलता मिली है। प्रख्यात कथानक होने से किसी कल्पित पात्र की योजना नहीं की गई है। प्राचीन पात्रों को ही **'काव्यशास्त्राचार्यसमर्थित'** कविकल्पना का साधिकार उपयोग करते हुए प्रस्तुत किया गया है। पात्रों के चरित्र विकास में भारतीय संस्कृति का स्वरूप अभिव्यंजित हुआ है। **'भगवती विन्ध्यवासिनी'** पर ही काव्य का सारा घटनाचक्र आधारित है अतः इसे काव्य का केन्द्र बिन्दु या प्रमुख पात्र कहा जा सकता है।

विन्ध्यगिरि -

यह इस महाकव्य का प्रधान पात्र है। भारतीय संस्कृति में सर्वत्र देव दर्शन की परम्परा है। जगदीश ही जगत् बन गये हैं - **'हरिरेव जगत् जगदेव हरिः'** - हरि ही जगत् है, जगत् ही हरि है। भागवत् महापुराण में भी वर्णित है-

खं वायुमग्निं सलिलं महींश्च ज्योतिं जिसत्वानि दिशोद्रुमादीन् सरित् समुद्रान्श्च हरेः शरीरं यत् किंच भूतं प्रणमेत् अनन्यः।

इस प्रकार सम्पूर्ण सृष्टि को हरि का स्वरूप माना गया है। कालिदास ने भी हिमालय पर्वत को देवतात्मा कहा है-

'अस्ति उत्तरस्यां दिशि देवतात्मा हिमालयो नाम नगाधिराजः।'

प्रकृत महाकाव्य में भी महाकवि शेवडे ने विन्ध्यगिरि को एक प्रतापी देवात्मा के रूप में चित्रित किया है और उसके विरद का विशद वर्णन किया है। विन्ध्यगिरि पर विविध पशु-पक्षी निवास करते हैं, ऋषि मुनि तपस्या करते है, देवाधि देव शंकर का मन्दिर है, सरिता शंकर का जलाभिषेक करती है।

एक समय नारद मुनि का आगमन होता है विन्ध्याचल उनका स्वागत करते हैं। नारद देवाधिदेव इन्द्र की सभा का वर्णन करते हुए कहते हैं कि इन्द्र ने मेरु पर्वत को सर्वश्रेष्ठ कहकर विन्ध्यगिरि का अपमान किया है यह सुनकर विन्ध्यगिरि क्षुब्ध हो जाता है और अपना उन्नयन आरम्भ कर देता है। सभी जीव-जन्तु त्रस्त हो जाते हैं ऋषि-मुनि दु:खी हो जाते हैं। देवराज इन्द्र विन्ध्यगिरि के निरन्तर उन्नयन से भयभीत हो जाते हैं उसी समय इन्द्र की सभा में नारद आते हैं और कुशल समाचार पूछते है दु:खी इन्द्र कहते हैं कि इस संकट के जनक नारद ही है और वे ही इसके निवारण का उपाय बतायें। नारद ने इन्द्र को भगवान नारायण के पास जाने के लिए कहा। इन्द्र देवताओं के साथ वैकुण्ठ जाते हैं और कष्ट के निवारण का उपाय पूछते हैं। भगवान नारायण इन्द्र को विन्ध्यगिरि के गुरु अगस्त्य के पास जाने के लिए कहते हैं।

इन्द्र जब महर्षि अगस्त्य के पास पहुँचे तब महर्षि ने स्वागत किया। इन्द्र के विन्ध्यगिरि के उन्नयन को रोकने की प्रार्थना करने पर पहले तो महर्षि ने इन्द्र के अभिमान आदि दुर्गुणों का संकेत किया फिर यह स्वीकार कर लिया कि विन्ध्यगिरि को समझाएंगें।

उन्होंने विन्ध्य को अपना श्रेष्ठ शिष्य बताया है और उसे गुरु का अनुग्रह प्राप्त शिष्य और पराम्बा भगवती का भक्त बताया–

मदनुग्रहात् समयमार्गगतो जगदीश्वरीं भजति विन्ध्यनगः।
प्रभवेद्य मोऽपि शिवभक्तिमतो नहि लोममात्रसपि वक्रयितुम्॥

(7/36)

महर्षि अगस्त्य विन्ध्याचल के पास जाते हैं। विन्ध्याचल अपने गुरु का श्रद्धाभक्ति के साथ सविधि स्वागत करता हैं। पूजा अर्चना से स्वागत सम्पन्न हो जाने पर महर्षि अगस्त्य विन्ध्य को समझाते हैं कि ऐसा कार्य अनुचित होता है जिससे दूसरों को कष्ट पहुँचे अतः तुम उन्नयन को रोक कर पहले की भाँति हो जाओ। विन्ध्यगिरि ने अपने गुरु की आज्ञा को स्वीकार करते हुए प्रार्थना की कि यदि जगन्माता विन्ध्यगिरि को अपना निवास स्थान बना ले तो बड़ी कृपा होगी। गुरु ने आज्ञापालक शिष्य से प्रसन्न होकर आश्वासन दिया कि माता से अवश्य प्रार्थना करेंगे। कृपालु गुरु कैलाश जाते हैं। माँ के पास जाकर महर्षि अगस्त्य माँ की स्तुति करते हैं और प्रसन्न हो जाने पर प्रार्थना करते हैं कि सभी भक्तों के लिए कैलाश पहुँचना कठिन है अतः माता विन्ध्यगिरि को अपना निवास बनायें। करुणामयी जगदम्बा ने प्रार्थना स्वीकार कर ली। माँ के निवास करने से विन्ध्याचल प्रसिद्ध शक्तिपीठ बन गया।

महाकवि शेवड़े ने विन्ध्याचल का चरित्रांकन बड़ी कुशलता से किया है। उसके स्वाभिमान, गुरुभक्ति, मातृभक्ति आदि सद्गुणों का प्रभावपूर्ण चित्रण किया है। महाकाव्य के नामकरण में भी विन्ध्याचल का प्रयोग इसकी महत्ता की ओर संकेत किया है।

विन्ध्यवासिनी माँ

जगन्माता कवि की आराध्या देवी है उनकी कृपा से ही समस्त कवित्व शक्ति और समस्त सृजन संभव हुआ है। माँ के नाम से इस महाकाव्य का नामकरण हुआ है जिस प्रकार माँ सीता की कृपा से ही राम की कृपा और राधा की कृपा से कृष्ण की कृपा संभव है उसी प्रकार सदाशिव की कृपा भी माँ की कृपा से संभव हो पाती है। मानव मात्र का सहज स्नेह माँ के प्रति होता है क्योंकि वहीं जन्मदात्री है। इसीलिए उपनिषद् में कहा गया है – **मातृदेवो भव**। कविवर शेवडे ने जगन्माता की स्तुति की है और परम श्रद्धा एवं भक्ति से काव्यात्मक चित्राङ्कन किया है। गोस्वामी तुलसीदास ने जगन्माता पार्वती को श्रद्धा का रूप माना है –

''भवानीशङ्करौ वन्दे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ।
याभ्यां विना न पश्यन्ति सिद्धाः स्वान्तस्थमीश्वरम्॥''

कवि पर माँ की विशेष अनुकम्पा है। माँ की स्तुति करते समय शब्दार्थों के परिधान के माध्यम से अङ्कन करते समय कवि की भाव प्रवणता विह्वलता परम प्रशंसनीय हो जाती है, चारुत्तर और श्रेष्ठतर बनने की होड़ शब्दों एवं अर्थों में लग जाती है।

इन्द्र के प्रार्थना करने पर महर्षि अगस्त्य स्वीकार कर लेते हैं कि वे विन्ध्याचल को समझाएँगें। परम गुरु भक्त होने के कारण विन्ध्याचल गुरु की आज्ञा स्वीकार कर लेता है कि वह पहले की तरह हो जाएगा किन्तु प्रार्थना करता है कि यदि मेरे कूट तट पर जगदीश्वरी अम्बा मेरे गुरु के प्रयत्न से निवास बना

लें तो अवनति को स्वीकार कर लेने पर भी मैं महोन्नति को प्राप्त हो जाऊंगा।

कैलाश पहुँचकर अगस्त्य समस्त जगत् के अधिपति शिव से आज्ञा प्राप्त करके जगत् जननी के दर्शन के लिए जाते हैं अगस्त्य के मुख से की गई माँ की स्तुति अद्‌भुत है –

साख्यां वदन्ति भवतीं प्रकृतिं पुराणीं वेदान्तिनः श्रुतिमतां कथयन्ति मायाम्।
शक्तिं परां पशुपते र्निगदन्ति शैवा अस्मत्कृते तनुमती करुणा त्वमेव॥

(9/43)

मुनिवर कहते है कि हे गिरिसुते! तुमसे युक्त होकर ही भगवान महेश्वर विश्व का सृजन पालन संहरण करते हैं। सांख्य विद् तुम्हें प्रकृति कहते हैं, वेदान्ती माया कहते हैं, शैव तुम्हें पशुपति की पराशक्ति कहते हैं, परन्तु हमारे लिए तुम साक्षात् तनुमती करुणा ही हो। कोई प्राणायाम में दक्ष योगी कुण्डलिनी स्वरूपा तुम्हें हृदय में साक्षात् कार करता है। प्रसुप्तभुजगाकृति तुम्हें मणिपुर में कोई योगी ललिता स्वरूपा में पूजता है। हे माँ! तुम गृहों में लक्ष्मी, समर में जय श्री, सुकृतियों में समृद्धि, सुधियों में विद्या, कुधियों में अविद्या, कुलीन ललनाओं में लज्जा हो। सत्वगुण प्रधान गौरी रूप में जगत् का सृजन करती हो, रजोगुण मयी दुर्गा रूप में भुवनों की रक्षा करती हो तथा तमोगुण मयी काली रूप में प्रलय करती हो इस प्रकार तुम्ही एक त्रिगुण स्वरूपा हो। इस प्रकार मुनि की स्तुति से प्रसन्न होकर माँ विन्ध्यगिरिवास स्वीकार कर लेती हैं और चौसठ शक्तिपीठों में से एक शक्तिपीठ विन्ध्याचल हो जाता है।

स्पष्टतः महाकवि ने विन्ध्याचलवासिनी माँ को आदिशक्ति के रूप में निरूपित किया है। जो सृजन, पालन एवं संहरण करती है। महाकवि गोस्वामी तुलसीदास ने भी सीता का इसी प्रकार चित्रण किया है –

श्रुति सेतु पालक राम तुम जगदीश माया जानकी।
तथा उद्भवस्थिति संहारकारीणं क्लेशहारिणीं
सर्व श्रेयस्करी सीतां न तोऽहं रामवल्लभाम्।

(रामचरितमानस)

जगन्माता क्लेश हारिणी हैं अतः दुःखार्त सांसारिक जन सर्वाधिक माँ को ही स्मरण करते हैं और क्लेश से मुक्त होकर प्रसन्नता का अनुभव करते हैं वसुदेव भी कारागृह में अपने दुःखों के नाश हेतु माँ विन्ध्यवासिनी का ही ध्यान करते हैं तब माँ स्वयं प्रकट होकर उनका कल्याण करती है –

मया प्रेरितो देवकीगर्भमध्ये भवेदष्टमः स्पष्टमेवाऽम्बुजाक्षः।
हरेद् दुष्टनाशात् स कष्टं जनानां यथा ग्रीष्मजं प्रावृषेण्याम्बुवाहः॥

(12/46)

कंस वध के पश्चात् वसुदेव विन्ध्याचल जाकर विधिपूर्वक नवरात्र महोत्सव मनातें है तथा माँ की आराधना बडे ही भक्ति–भाव पूर्वक करते हैं –

जगदीश्वरी विन्ध्यवासिनी प्रियभक्ते करुणातरङ्गिणी।
तव पादसरोरुहद्वये मम नित्यं भ्रमरायते मनः॥

(16/85)

गिरिजा गिरिकाननान्तरे विपदां सन्धिषु विन्ध्यवासिनी।
परिरक्ष भयेषु भैरवी नवदुर्गातनुरम्ब दुर्गतौ॥

(16/89)

इस प्रकार महाकवि ने विन्ध्यवासिनी देवी को सम्पूर्ण सृष्टि की संचालिका के रूप में चित्रित किया है।

इन्द्र

इन्द्र देवराज है किन्तु कवियों ने उनके प्रति श्रद्धा प्रदर्शित नहीं की है। गोस्वामी तुलसीदास उनके विषय में अच्छे विचार नहीं प्रकट करते हैं –

''ऊच निवास, नीच करतूती देखिन सकइ पराइ विभूती।''

महाकवि शेवड़े ने भी इन्द्र का चरित्रांकन भीरू, ईर्ष्यालु, मदान्ध के रूप में किया है। एक बार नारद इन्द्र की सभा में जाते हैं तो वहाँ इन्द्र कहते हैं कि मेरु के समान कोई पर्वत नहीं है। विन्ध्य, सह्य, हिमालय आदि कोई भी मेरु से स्पर्धा नहीं कर सकता है। महाकवि शेवड़े के अनुसार नारद कलह प्रिय है और वे इस गर्हणा को विन्ध्याचल को कह देते है फलस्वरूप विन्ध्यगिरि क्रुद्ध हो जाता है। वह कुशासन पर बैठकर शंकर का ध्यान करता है प्राणायाम करता है, कुण्डलिनी को जाग्रत करता है, मणिपुर में ललिता माता के दर्शन करता है। अनाहत स्थित त्रिपुरा माँ की आराधना करके अपने गुरु अगस्त्य का स्मरण करता है और बढने लगता है। चतुर्दिक त्राहि-त्राहि मच जाती है। इन्द्र भयभीत हो जाता है और भगवान विष्णु की शरण मे जाता है। भगवान रमेश इन्द्र को अगस्त्य ऋषि

की शरण में जाने को कहते हैं। इन्द्र अगस्त्य के पास चले जाते है इन्द्र अपने प्रयोजन की सिद्धि के लिए महर्षि अगस्त्य की स्तुति करते हैं। विन्ध्यगिरि के कुपित होकर बढ़ने की बात कहते हैं और उससे उत्पन्न संकट का विस्तार पूर्वक वर्णन करते हैं, अपथ में प्रवृत्त अपने शिष्य के निवारण की प्रार्थना करते हैं।

इन्द्र के अनुनयपूर्ण वचनों को सुनकर महर्षि बोले - हे सुरराज! तुम्हारा यश चारों दिशाओं में फैल रहा है जैसे रात में शशिमण्डल प्रकाशित होता है। तुम्हारे अन्दर बहुत से गुण हैं किन्तु तुममें महानवलेप दोष आ गया है।

त्रिपुरेश्वरी की माला बने कमल के फूलों की माला जिसे मुनिवर नारद ने तुम्हें दिया उसका तुमने अपमान किया। तुमने अपने हाथी के मस्तक पर डाला, उसने अपने पैरों से रौंद दिया। उसी के कारण तुम्हें गतवैभव होने का शाप मिला। त्रिपुरा की उपासना से ही तुम्हे पुनः वैभव और पद प्राप्त हुआ-

गतवैभवो हृतमुखेन्दुरूचिर्गिरिगह्वरेषु च वनेषु वसन्।
त्रिपुरामुपास्य दृढभक्तिवशः पदमैन्द्रमाप्स्यसि पुनः स्मरसि॥

(7/35)

इन्द्र का चित्रण करते हुए महर्षि अगस्त्य कहते है कि हे इन्द्र - तुम्हारे अन्दर चिर यौवन, सुलभ दिव्य सुख, धन-सम्पत्ति, प्रभुता और अविवेकिता सभी है। इनमें से एक-एक भी अनर्थ के लिए पर्याप्त है। महर्षि अगस्त्य के वचन विष बुझे विशिख की भाँति इन्द्र के हृदय को व्यथित करने लगे फिर भी वह धैर्य धारण कर महर्षि को मनाने लगा।

अभिमानी व्यक्ति भी अपना प्रयोजन सिद्ध करने के लिए छोटा बन जाता है। इन्द्र बोला– हे भगवन् इस विवश को परुषाक्षरों से ताड़ित करना उचित नहीं है प्यासे चातक पर जलद के ओले बरसाना ठीक नहीं है। हे करुणाघन! भगवन्! मुझ मन्दगति के अपराधों को क्षमा करें। आप विन्ध्य को समझा कर हमारा कष्ट दूर करें। इन्द्र अपनी वाग्चातुरी से महर्षि को मना लेता है व्यवहार रीति निपुण अपने चाटु वचनों से सबको वश में कर लेते हैं। महर्षि अगस्त्य इन्द्र को आशीर्वाद देकर विदा करते हैं। मुनि के चरणों में प्रणाम करके आनन्दित होकर इन्द्र अपने लोक लौट गये।

महाकवि ने इन्द्र का चरित्राङ्कन यथार्थपूर्ण किया है जिससे पाठक के मन में इन्द्र के प्रति आदर का भाव उत्पन्न नहीं होता है।

महर्षि अगस्त्य

महाकवि शेवड़े ने महर्षि अगस्त्य का चरित्रांकन बड़े ही मनोयोग एवं श्रद्धा से किया है। महर्षि अगस्त्य की यशोगाथा अनेक कवियों द्वारा अनेक ग्रन्थों में वर्णित है। **'हरि अनन्त हरि कथा अनन्ता'** की भाँति महर्षि अगस्त्य की यशगाथा भी अनन्त है। इस महाकाव्य में पंचम सर्ग में भगवान नारायण एवं स्वयं महर्षि अगस्त्य का परिचय इन्द्र को देते हैं और कष्ट निवारण के लिए उनकी शरण में भेजते हे। जिसकी विरुदावली का वर्णन स्वयं भगवान नारायण अपने श्री मुख से करे उसके विषय में तो कहना ही क्या है? भगवान नारायण ने इन्द्र से कहा –

श्रीविद्यागमपरिनिष्ठितान्तरङ्गो दुर्वासः प्रभृतिषु मन्त्र वित्सुमान्यः।
दिक्कान्ताविरचितकीर्तिकर्णपूरो योगीन्द्रो भुवि वरिवर्ति कुम्भजन्मा॥

(5/35)

महर्षि अगस्त्य श्री विद्याआगम में परिनिष्ठित हैं, दुर्वासा आदिक मन्त्र विदों में मान्य हैं। कुम्भ से जन्म लेकर भी उन्होंने सागर को चुल्लू में लेकर पी लिया था। निरन्तर उन्नत होते हुए भी विन्ध्यगिरि को मनाना उन्हीं के वश की बात थी क्योंकि वह अपने गुरु अगस्त्य का परम भक्त था।

भगवान नारायण ने भी इन्द्र की सहायता नहीं की और उसे महर्षि अगस्त्य की ही शरण में जाने को कहा था अतः स्वार्थ सिद्धि के एकमात्र सहायक महर्षि की इन्द्र ने पूरी ताकत लगाकर अत्यन्त श्रद्धावनत होकर विस्तार से प्रार्थना की है महाकवि ने भी पूरे मनोयोग से महर्षि का चरित्रांकन किया है-

कृतभस्मपुण्डकललाटतटं धृतवल्कलं दहनदीप्तरुचिम्।
धवलोपवीतलसंदसतलं हिमशैलशृङ्गनिभतुङ्ग तनुम्॥
चुलुकैकमात्रचतुरब्धिजलं निगमागमखिलरहस्यविदम्।
चरणाब्जसन्तिहितशिष्यजनं सुरराडवैक्षत से कुम्भभवम्॥

(7/16-17)

इस वर्णन में इतनी प्रभावपूर्ण चित्रात्मकता है कि महर्षि का स्वरूप नेत्रों के समक्ष साकार हो जाता है। इन्द्र ने महर्षि के चरणों में प्रणिपात किया और स्तुति करते हुए अपनी व्यथा कथा कही -

भगवन् विपत्तिरजनी जनिते प्रसृते तमिस्त्रपटले परितः।
हरते हृदम्बुजकदम्बरुजं तव दर्शनं दिनकरस्य यथा॥

(7/20)

कुपितः समुत्रमति विन्ध्यगिरिः परिवर्धयँस्तनुमतां विपदम्।
दयसे न चेदनुपदं जगतामुपतिष्ठते ध्रुवमकाण्डलयः॥

(7/22)

इन्द्र अपनी धृष्टता के लिए भी क्षमा माँगता है। महर्षि के यशगान के साथ साथ इन्द्र की असहाय स्थिति और वैचारिणी का भी वर्णन प्राप्त होता है। इन्द्र स्वयं को प्यासा चातक तथा महर्षि को अम्बुद बताता है। –

परुषाक्षरैर्जनमिमं विवशं भगवँस्त्वमर्हसि न ताडयितुम्।
नहि चातके विकचञ्चपटे करकानिपात उचितोऽम्बुमुचः॥ (7/44)

दीनता और प्रणयपूर्ण इन्द्र की प्रार्थना से महर्षि अगस्त्य का हृदय द्रवित हो जाता है और वे इन्द्र की प्रार्थना स्वीकार कर विन्ध्यगिरि को समझाना स्वीकार करते हैं।

इस प्रकार महर्षि अगस्त्य का चरित्र चित्रण इस महाकाव्य में नीतिवान, महान उपदेशक, कृपालु एवं ज्ञानी के रूप में हुआ है।

वसुदेव

वसुदेव मथुरा के प्रतिष्ठित यादव हैं कंस ने अपने पितृव्य की कन्या देवकी का विवाह वसुदेव के साथ किया।

देवकी निजपितृव्यकन्यकां यादवेन वसुदेव संज्ञिना।
मङ्गलेऽङ्गि परिणाययन् दधौ पौरजानपदहर्षदं महः॥

(11/30)

कंस वसुदेव और देवकी को घर में बन्दी बना देता है स्वगृह में ही विनियन्त्रित वसुदेव अपने गुरु गर्गाचार्य को बुलाते हैं और कष्ट निवृत्ति का उपाय पूछते हैं। पहले तो गुरु उपदेश देते हैं कि अदृष्ट के कारण ही सुख दुःख मिलते हैं जिससे अल्पमति पुरुष ही सुखी दुःखी होते हैं, पण्डितजन प्रभावित नहीं होते। कोई भी व्यक्ति ऐसा नहीं जिसे सुख ही सुख मिले और कोई ऐसा भी नहीं जिसे दुःख ही दुःख मिले तुम्हारे कष्ट समाप्त होंगें और सुखोदय होगा।

वसुदेव की गुरु के प्रति अगाध श्रद्धा भक्ति एवं निष्ठा कवि ने प्रदर्शित की है जो भारतीय संस्कृति की विशेषता है।

बुरे अदृष्ट के शमन के लिए गर्गाचार्य वसुदेव को भगवती विन्ध्यवासिनी की भक्ति करने का आदेश देते हैं। वसुदेव गुरु से निवेदन करते हैं कि वह स्वयं तो विन्ध्याचल जाकर जगन्माता की उपासना करने में असमर्थ हैं अतः गुरु से ही सविधि यज्ञ करने की प्रार्थना करते हैं, जिसे गुरु गर्गाचार्य स्वीकार कर लेते हैं। वसुदेव विन्ध्यवासिनी महेश्वरी के मंत्र का जप आरम्भ करते हैं तथा प्रतिदिन दस हजार मंत्र का जप सविधि करते है। एक दिन स्वप्न में चण्डिका आई और वसुदेव से बोली - कंस से मत डरो वह तुम्हारा कुछ नहीं बिगाड़ सकता है। मेरे शरणागत का यमराज भी कुछ नहीं बिगाड़ सकता है।

महाकवि शेवड़े ने वसुदेव का अत्यन्त श्रद्धा सम्मान पूर्वक प्रभावपूर्ण चरित्रांकन किया है, महाकवि ने कंस द्वारा बन्दी वसुदेव के लिए हिरण्य पिञ्जर में विनियन्त्रित सिंह का उपमान प्रयोग किया है –

अथ चिरं स हिरण्यमयपञ्जरे हरिरिव स्वगृहे विनियन्त्रितः।
कमपि निर्गमयत्नमनाप्नुवन् यदुवरो हृदि खेदभरं दधौ॥

(12/1)

वसुदेव की विन्ध्यवासिनी के प्रति परम श्रद्धा है। वह अपने पुत्रों कृष्ण तथा बलराम, अपने गुरु गर्गाचार्य और सभी स्वजनों के साथ विन्ध्याचल जाकर नवरात्र महोत्सव मनाते हैं। वह ब्राह्मणों को स्वर्ण मुद्राएं, गायें, इत्याादि दान करते हैं इससे उनकी दानशील प्रवृत्ति का पता चलता है।

इस प्रकार वसुदेव का चरित्रांकन बड़े ही सौम्य, सुशील, दयालु, पराम्बा भक्त, विनीत के रूप में किया गया है।

श्री कृष्ण

भगवान विष्णु के चौबीस अवतार माने जाते हैं। उनमें प्रमुख दस अवतारों में भी राम और कृष्ण का अवतार अधिक प्रसिद्ध है। राम को 7 कलाओं का और कृष्ण को सोलह कलाओं का अवतार माना गया है। सभी अवतारों को अंश माना गया है किन्तु कृष्ण को स्वयं भगवान माना गया है–

'कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्।'

महाकवि ने कृष्ण का चित्रण करते हुए लिखा है कि जगदम्बा विन्ध्यवासिनी की प्रेरणा से विष्णु कृष्ण बनते हैं और देवकी के गर्भ में आठवें पुत्र के रूप में जन्म लेते हैं। गर्गमुनि द्वारा विन्ध्याचल में सहस्त्र चण्डी विधान यज्ञ करने पर भवानी साक्षात् प्रकट होकर कहती है - मुझसे प्रेरित विष्णु देवकी के गर्भ में अष्टम पुत्र होंगें जो दुष्टों का नाश करके लोगों के कष्ट दूर करेंगें -

मया प्रेरितो देवकीगर्भमध्ये भवेदष्टमः स्पष्टमेवाऽम्बुजाक्षः।
हरेद् दुष्टनाशात् स कष्टं जनानां यथा गीष्मजं प्रावृषेव्याम्बुवाहः॥

(10/46)

भागवत महापुराण के अनुसार भगवान् विष्णु देवताओं और पृथ्वी की प्रार्थना पर अवतार लेते हैं गोस्वामी तुलसीदास के रामचरितमानस के अनुसार भी भगवान विष्णु **'निज इच्छा निर्मित तनु'** धारण करते हैं -

जनि डरपहु सुति सिद्ध सुरेशा।
तुमहि लगि धरिहहुँ नरवेसा॥

(रामचरितमानस)

किन्तु कविवर शेवड़े ने भगवान का अवतरण भगवती की प्रेरणा से चित्रित किया है। गरुडध्वज भगवान विष्णु भगवती की प्रेरणा से अपनी महिमा का त्याग कर लघु बनते हैं। त्रिजगन्निवास निलय होकर भी देवकी गर्भ में निवास करते हैं -

गरुडध्वजो भगवतीप्रवर्तितो लघिमानमेत्य महिमानमृत्सृजन।
त्रिजगनिवासनिलयोऽपि देवकी जठराधिवाससुखलेशमन्वभूत्॥

(13/27)

कवि ने पुनः चित्रण करते हुए कहा है कि जगत् के कल्याण के लिए, वसुधा का भार दूर करने के लिए शिवा से प्रवर्तित माधव अवतार ग्रहण करते हैं और देवकी के गर्भ में प्रविष्ट होते हैं। भगवत् पुराणादि के आधार पर भगवान के जन्म लेने पर कारागृह के पहरेदार सो जाते है और वसुदेव हथकड़ी बेड़ी आदि से मुक्त हो जाते हैं, किन्तु शेवड़े जी ने चित्रण किया है कि विन्ध्यवासिनी जगदीश्वरी की कृपा के कवच से सुरक्षित निर्भीक वसुदेव दण्डधर से भी नहीं डरते और नवजात कृष्ण को अपने मित्र नन्द के घर गोकुल लेकर जाते हैं।

महाकवि माँ के अनन्य उपासक हैं शाक्तशास्त्रियों के अनुसार शक्ति ही आदि शक्ति है जो सब नियंत्रित करती है। त्रिदेव – विष्णु, ब्रह्मा और शंकर को भी शक्ति प्रदान करती हैं। वे ही विष्णु की लक्ष्मी, ब्रह्मा की ब्रह्माणी और शिव की शिवा बन जाती है। एक प्रसिद्ध उक्ति है – 'शक्तिं विना महेशानि सद्शव रूपकः।' 'शिव' में से शक्तिसूचक 'इ'कार निकल जाने पर 'शव' बन जाता है। इसी कारण कृष्ण के चरित्र को भी महाकवि ने वैष्णव शास्त्रों से कुछ हटकर चित्रित किया है।

माँ की अनुकम्पा से ही कृष्ण सभी आततायियों कंस, जरासंध, कालयवन आदि का नाश करते हैं। माँ की कृपा से अनुगृहीत वसुदेव गर्ग मुनि, समस्त स्वजनों और अपने पुत्रों कृष्ण और बलराम के साथ विन्ध्याचल जाकर सविधि नवरात्र महोत्सव का विधान करते हैं।

इस प्रकार श्री कृष्ण को महाकवि शेवड़े ने भगवान् विष्णु के रूप में ही चित्रित किया है किन्तु भगवती विन्ध्यवासिनी को सर्वोच्च शक्ति के रूप में निरूपित किया है जो भगवान विष्णु के अवतार कृष्ण की भी प्रेरिका महाशक्ति है।

रस-निरूपण

भारतीय साहित्यशास्त्र में रस-सम्प्रदाय अत्यन्त प्राचीन है। सर्वप्रथम आचार्य भरत ने नाट्यशास्त्र में रस की परिभाषा देते हुए कहा है-

''विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः।''

(नाट्यशास्त्र, अध्याय 6, पृ. 82)

अर्थात् विभाव, अनुभाव तथा व्यभिचारी भाव के संयोग से रसनिष्पत्ति होती है। आचार्य मम्मट ने रस का लक्षण इस प्रकार प्रतिपादित किया है -

कारणान्यथ कार्याणि सहकारीणि यानि च।
रत्यादेः स्थायिनो लोके तानि चेन्नाट्यकाव्ययोः॥
विभावा अनुभावास्तत् कथ्यन्ते व्यभिचारिणः।
व्यक्तः स तैर्विभावाद्यैः स्थायीभावो रसः स्मृतः॥

(काव्यप्रकाश, 4/27-28)

अर्थात् लोक में स्थायी रति आदि चित्त वृत्ति विशेष के जो कारण तथा कार्य रत्यादि जन्य कायिक, वाचिक तथा मानसिक भेद से अनेक प्रकार के कटाक्ष, भुजाक्षेप और भाव है, उनका यदि नाट्य तथा काव्य में वर्णन किया जाता है तो वे क्रमशः विभाव, अनुभाव तथा व्यभिचारी भाव कहे जाते हैं। उन विभावादि के द्वारा अथवा उनके सहित व्यञ्जना द्वारा व्यक्त किया हुआ वह स्थायी भाव रस कहा गया है।

साहित्यदर्पण के अनुसार –

विभावेनानुभावेन व्यक्तः संचारिणा तथा।
रसतामेति रत्यादिः स्थायीभावः सचेतसाम्॥

(साहित्यदर्पण, तृतीय परि.–प्रथम)

अर्थात् विभाव, अनुभाव तथा सञ्चारिभावों द्वारा अभिव्यक्त हुए रति आदि स्थायी भाव सहृदय सामाजिकों के हृदय में रसता को प्राप्त करते हैं।

आचार्य राजशेखर रस को काव्य की आत्मा मानते हैं –

'शब्दार्थौ ते शरीरं रस आत्मा'।

(काव्यमीमांसा, पृ. 15)

अग्निपुराण में रस को ही काव्य में जीवनाधायक तत्त्व स्वीकार किया गया है –

''वाग्वैदग्ध्यप्रधानेऽपि रस एवात्र जीवितम्।''

(अग्निपुराण, पृ. 80)

आचार्य मम्मट भी काव्य में रस की प्रधानता मानते हैं। आचार्य विश्वनाथ ने रसात्मक वाक्य को ही काव्य कहा है–

'वाक्यं रसात्मकं काव्यम्।'

(साहित्यदर्पण, प्रथम परि., पृ. 17)

आचार्य भरत ने 8 रसों को स्वीकार किया है – शृंगार, वीर, करुण, हास्य, रौद्र, भयानक, बीभत्स और अद्‌भुत।

''शृंगार हास्य करुण रौद्र वीर भयानकाः।
बीभत्साद्भुतसंज्ञौ चेप्यष्टौ नाट्ये रसाः स्मृताः॥''

(नाट्यशास्त्र, 6/5)

अभिनव गुप्त ने अभिनव भारती नामक व्याख्या ग्रन्थ द्वारा भरतमुनि के नाट्यशास्त्र में नवम रस के रूप में शान्त रस का भी प्रतिपादन किया है।

''शान्तोऽपि नवमो रसः।''

(काव्यप्रकाश, 4/35)

आचार्य मम्मट ने भी शान्तरस को रस के रूप में माना है। आचार्य विश्वनाथ ने 'वात्सल्य' नामक दसवें रस की स्थापना की है।

(साहित्य दर्पण, प्रथम परि. पृ. 17)

इस प्रकार विभिन्न आचार्यों ने काव्य में रस का प्राधान्य माना है। प्राचीन काव्यशास्त्रीय मानदण्डों के अनुसार तो शृंगार, वीर और शान्त में से कोई एक रस अंगी रस होना चाहिए –

''शृंगार वीर शान्तानाम् एकोऽङ्गी रस इष्यते॥''

(साहित्यदर्पण, 6/317)

अत एव महाकाव्य लक्षणानुसार नैषधीयचरितम् महाकाव्य में शृंगार रस प्रधान है। कुमारसम्भव-किरातार्जुनीयम्-शिशुपालवध महाकाव्यों में वीर रस प्रमुख है। महाभारत, रघुवंश महाकाव्य में शान्त रस की प्रधानता है किन्तु प्रकृत महाकाव्य में **'भक्ति रस'** की प्रमुखता है।

पूज्य आलम्बन के प्रति प्रेम, श्रद्धा आदि भावों की आनन्दात्मक आध्यात्मिक अनुभूति **'भक्ति रस'** कही जाती है–

''पूज्येषु अनुरागो भक्तिः।''

(संस्कृत साहित्य में भक्ति रस – डॉ. दीपा अग्रवाल, पृ. 9)

भक्ति रस में अनुराग की प्रधानता होती है। महर्षि शाण्डिल्य भी भक्ति की परिभाषा 'परानुरक्तिरीश्वरे' देते हैं उनके अनुसार पराभक्ति ईश्वर में अनुरक्ति या अनुराग है।

(शाण्डिल्यभक्ति सूत्र–1)

नारदभक्ति सूत्र के अनुसार –

''नारदस्तु तदर्पितारिवलाचारता तद्विस्मरणे परमव्याकुला चेति।''

(नारदभक्तिसूत्र 16)

विष्णु पुराण में भक्ति की परिभाषा करते हुए अविवेकी पुरुषों की विषयों में आस्था के समान प्रभु के प्रति अविचल प्रीति को ही भक्ति कहा गया है।

या प्रीतिरविवेकानां विषयेष्वनुपायिनी।
त्वामनुस्मरतः सा में हृदयान्मापसर्पतु॥

विष्णुपुराण (1–20–16)

आचार्य रूपगोस्वामी ने भक्ति को ही एकमात्र रस माना है।

मधुसूदन सरस्वती ने भक्ति रस में ही नवरसों का अन्तर्भाव दिखाकर उसके रसराजत्व को प्रमाणित किया है।

उनके मतानुसार - भक्ति भी अन्य रसों के समान विभाव, अनुभाव एवं संचारीभावों के संयोग से चित्ररूपवद् रसों को प्राप्त करती है।

विभावैरनुभावैश्च व्यभिचारिभिरप्युत।
स्थायिभावस्मुखत्वेन व्यज्यमानो रसस्मृतः॥

(भक्तिरसामृत - 3/2)

श्रीमद्रूपगोस्वामिकृत - **'भक्ति-रसामृत-सिन्धु'** में भक्ति को रस के रूप में स्वीकार किया गया है। श्रीमद्रूपगोस्वामी का उत्तमा भक्ति के विषय में यह मत है -

अन्याभिलाषिताशून्यं ज्ञानकर्माधनावृत्तम्।
अनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरूत्तमा॥

(पूर्वविभाग-1/1)

अर्थात् अन्य कामनाओं से रहित ज्ञानकर्मादि से अनावृत तथा अनुकूलभाव से श्रीकृष्ण का जो अनुशीलन है वही उत्तमा भक्ति है।

मोक्ष के विषय में रूपगोस्वामी का यह मानना है कि -

किन्तु प्रेमैकमाधुर्यभुज एकान्तिनो हरौ।
नैवाङ्गीकुर्वते जातु मुक्तिं पञ्चविधामपि॥

(पू.वि.-57)

अर्थात् किन्तु जो श्री भगवान् के एकान्त भक्त है, केवल श्री भगवान् का सेवा सुख सम्पादन करने वाले हैं, वे केवल माधुर्य भक्ति का ही आस्वादन करते हैं, वे पञ्चविधा (सालोक्य, सृष्टि, सामीप्य, सारूप्य, सायुज्य, मुक्ति को भी स्वीकार नहीं करते।

रूपगोस्वामिकृत 'भक्तिरसामृतसिन्धु' के हिन्दी के प्रधान सम्पादक डॉ. नगेन्द्र ने भक्ति रस पर प्रकाश डाला है। उनके अनुसार प्राक्तनरससिद्धान्त की भक्ति रस के प्रति उपजीव्यता –

स्वाद्यत्वं हृदि भक्तानामानीता श्रवणादिभिः।
एषा कृष्णरतिः स्थायीभावो भक्तिरसो भवेत्॥

इसमें नवीनता है – सात्विकों के द्वारा रसपरिपोष का पृथक् उपादान और केवल रतिस्थायी की रसरूपता स्वीकार की गई है।

डॉ. नगेन्द्र के अनुसार भक्ति सम्प्रदाय की रस प्रक्रिया इस प्रकार है–

आनन्दसाधन ही रसतत्व का चरम लक्ष्य तथा लक्षण है। भरतानुयायियों का भी यही मत है और भक्ति सम्प्रदाय के आचार्य भी इस मान्यता के विरोधी नहीं हैं तो भी दोनों आचार्यों में एक मौलिक अन्तर है – भक्ति शास्त्र के आचार्यों ने जीवगत अंश मात्र के आनन्द को ही साध्य नहीं बनाया। अपितु उनका लक्ष्य था – आनन्द–राशि भगवद्गत आनन्द का आस्वादन करना। पुष्कलरसापत्ति तो तभी होती है जब परमानन्द स्वरूप भगवान् स्वयं ही मनोगत हो जाते हैं।

(हिन्दी भक्तिरसामृतसिन्धु–डॉ. नगेन्द्र, पृ. सं. 36–38)

श्री मधुसूदन सरस्वती ने कहा है –

भगवान् परमानन्दस्वरूपः स्वयमेव हि।

मनोगतस्तदाकारो रसतायेति पुष्कलम्॥

चित्त जब द्रवित होकर विभु, नित्य, पूर्ण बोधसुखात्मक भगवान् को ग्रहण कर लेता है तब शेष ही क्या रह जाता है–

''भगवन्तं विभु नित्यं पूर्णबोधसुखात्मकम्।

यद् गृह्याति द्रुतं चित्तं किमन्यदवशिष्यते॥''

भक्ति रस को दशम रस के रूप में स्थिर करते हुए आगे मम्मट के कथन को भी उद्धृत करते हैं –

उच्यते – भक्तिदैवादि विषयरतित्वेन भावान्तर्गततया, रसत्वानुपपत्ते।

रतिदैवादिविषया व्यभिचारी तथाञ्जितः।

भावः प्रोक्तस्तदाभासा ह्यनौचित्यप्रवर्तिता॥

(काव्यप्रकाश, 4–35)

इति हि प्राचां सिद्धान्तात्।

आचार्य मम्मट की उक्त कारिका की व्याख्या में काव्यप्रकाश में भी कहा है –

रतिरिति सकलस्थायिभावोपलक्षणम्। देवादि विषमत्यपि, अप्राप्तरसावस्योपलक्षणम्, तथा शब्दश्चार्थे। हास्यादयश्च,

अप्राप्तरसावस्थाः, विभावादिभिः, प्राधान्येनाञ्जितो व्यञ्जिती व्यभिचारी च भावः प्रोक्तः भावपदाभिधेयः कथित इति सूत्रार्थः। यदुक्तम् ''रत्यादिश्चेन्निरङ्गः स्याद्देवादि विषयोऽथ वा अन्याङ्ग भावभाग्वा स्यान्न तदा स्थायिशब्दभाक्॥''

'भक्ति रस' के उक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि **'विन्ध्यवासिनी विजयम्'** महाकाव्य में भी 'भक्ति रस' का ही प्राधान्य है। अन्य रसों का भी कवि ने सम्यक् निरूपण किया है।

भक्ति रस

लक्षण –

विभावैरनुभावैश्च व्यभिचारिभिरप्युत।
स्थायीभाव स्मुखत्वेन व्यज्यमानो रसस्मृतः॥

(भक्तिरसामृत, 3/2)

उदाहरण –

सांख्या वदन्ति भवतीं प्रकृति पुराणी
वेदान्तितः श्रुतिमतां कथयन्ति मायाम्।
शक्तिं परा पशुपति र्निगदन्ति शैवा
अस्मत्कृते तनुमती करूणात्वमेव॥

(9/43)

यहाँ स्थायी भाव गौरी विषयक रति है। गौरी सर्वव्यापक और विभिन्न दर्शनों की दृष्टि में अत्यन्त महत्वपूर्ण है। वे पराम्बा और जगज्जननी हैं। आलम्बन शिवप्रिया गौरी है। उद्दीप्पन है हिमालय का रम्य वातावरण तथा कैलाश तीर्थ में उपस्थिति आदि, अनुभाव है – गौरी की महत्ता तथा सर्वव्यापकता का वर्णन। 'तनुमती करूणा' कहकर गदगद हो जाने का आश्रय अगस्त्य हैं।

उदाहरण –

गिरिजा गिरिकाननान्तरे विपदां सन्धिषु विन्ध्यवासिनी।
परिरक्ष भयेषु भैरवी नवदुर्गातनुरम्ब दुर्गतौ॥

(16/89)

प्रस्तुत श्लोक में स्थायी भाव माँ भवानी विषयक रति है। यहाँ पर गिरिजा, विन्ध्यवासिनी, दुर्गा आदि नामों से अभिहित किया गया है आलम्बन माँ दुर्गा है। उद्दीप्पन गिरि, कानन तथा विन्ध्याचल क्षेत्र है अनुभाव गौरी के विविध रूप है अतः यहाँ 'भक्ति रस' की प्रधानता है।

भक्ति रस के अन्य उदाहरण इस प्रकार है –

उदाहरण –

हेरम्बषण्मुरवपरिष्कृत पार्श्व भागां संवीजितामुभयतः सुरसुन्दरीभिः॥
रम्भादिनृत्यरचनामनुमोदयन्तीं गौरीं ननाम स पणायितुमाससज्जा॥

(9/41)

केचिद् वदन्ति जगदम्ब सरस्वती त्वां प्राहुः परे सहचरीमधुकैटभारेः।
अन्ये गिरीशगृहिणीं निगमागमज्ञास्तुर्यामसीममहिमानमुदाहरन्ति॥

(9/53)

विदधे गणराजपूजनं स च पुण्याहमवाचयद् द्विजैः।
कुलदेवतया समन्विताः प्रयतः पूजयति स्म मातृकाः॥

(12/37)

स्वर्गाद् देवाः किन्नर सिद्धा हिमशैलात्पातालस्थाः सर्पगणाः सम्भृतदर्पाः।
यक्षा रक्षाकर्मवियुक्ताश्च निधीनां दुर्गा देवीं पूर्जायतुं तत्र समीयुः॥

(9/73)

वीररस

लक्षण –

उत्तम प्रकृतिर्वीर उत्साहस्थायिभावकः।
महेन्द्रदैवतो हेमवर्णोऽयं समुदाहृतः॥

(सा.द. 3/232)

उदाहरण –

मुक्तो हस्तात् तस्य गोपावतंसो नासारन्ध्रं वज्रमुष्टयाऽभिहत्य।
उत्पाट्यैकं पाणिना दन्तमस्य प्राहाषीत्तं तेन कुम्भान्तराले॥

(15/116)

प्रस्तुत श्लोक में उत्साह स्थायी भाव है। यहाँ पर हस्ती आलम्बन, रणकौशल एवं दर्शकजन उद्दीपन। दन्तोत्पाट अनुभाव, आवेग, धृति तथा उग्रता व्यभिचारी भाव है अतः यहाँ वीर रस का चित्रण हुआ है।

उदाहरण –

उत्प्लुत्याऽसौ सिंहवद् राजमञ्चे हाहाशब्दं कुर्वतां रङ्गभाजाम्।
केशगाहं मर्दयामास कंसं शौरिः सौरिर्दुष्पथ प्रस्थितानाम्॥

(15/124)

यहाँ पर उत्साह स्थायी भाव है, दुष्ट कंस आलम्बन, हाहाकार उद्दीपन, मर्दनादि अनुभाव, आवेग धृति हर्षादि व्यभिचारी भाव है अतः इस पद्य में वीर रस का चित्रण बड़ा ही ओजस्वी है।

हास्य रस

लक्षण –

विकृताकारवाग्वेषचेष्टादेः कुहकाद्भवेत्।
हास्यो हासस्थायिभावः श्वेतः प्रमथदैवतः॥

(सा.द. 3/214)

उदाहरण –

अपूयवीभ्यामिह सञ्चरन्तो मिष्टान्नराशीन् परितो निरीक्ष्य।
न केवलं माणवका युवानो वृद्धा जनाश्चार्द्रेमुखा भवन्ति॥

(6/25)

यहाँ पर हास स्थायी भाव है। प्रियजन आलम्बन है, वर्षा ऋतु उद्दीपन है, मिष्टान्न अनुभाव है अतः यहाँ हास्य रस है।

उदाहरण –

अतिलिङ्ग तुमग्रगामिनं तुरग केनचिदुष्ट्र ईरितः।
कुटिलीकृतगात्रको जवात् प्लवमानोऽयमहासयज्जनान्॥

(16/45)

यहाँ पर हास स्थायी भाव है, उष्ट्र आलम्बन, अतिलिङ्गतुम गमन आदि उद्दीपन, ईरण–प्रेरण कुटिलीकृतगात्र गमन आदि अनुभाव, चपलता तथा हर्षव्यभिचारी भाव है अतः यहाँ हास्य रस का चित्रण हुआ है।

करुण रस

लक्षण –

इष्टनाशादनिष्टाप्तेः करुणाख्यो रसो भवेत्।
धीरैः कपोतवर्णोऽयं कथितो यमदैवतः।।

उदाहरण –

प्रणयस्पृशा सुरपतेर्वचसा हृदयं परिप्लुतमगस्त्यमुनेः।
द्रवतिस्म चन्द्रकिरणोपसृतं तुहिनांशुकान्तमणि खण्डमिव।।

प्रस्तुत श्लोक करुण रस का बड़ा ही सुन्दर निदर्शन है। यहाँ पर सुरपति आलम्बन, विन्ध्यकृत विदुति उद्दीपन, सदैन्य शून्य पुण्य पूर्ववाणी अनुभाव, दैन्य, चिन्ता, मोह, जड़ता व्यभिचारी भाव, शोक स्थायी भाव है।

उदाहरण –

भजति नूनमदृष्ट समुद्भवं जगति दुःख सुखं सकलोजनः।
भवति हर्ष विषादवदो नियतमल्पमतिर्न तु पण्डित।।

प्रस्तुत श्लोक करुण रस का उदाहरण है।

शृंगार रस

लक्षण –

शृङ्ग हि मन्मथोद्भेददस्तदागमनहेतुकः।
उत्तम प्रकृति प्रायो रसः शृङ्गार इष्यते।।

(सा.द. 3/183)

उदाहरण –

श्यामा कमुष्टया कवलैस्तृणानां प्रवर्धितां पुत्रवदेव यत्र।
तपस्विनां वर्ष्मणि कृष्णसाराः शृङ्गेण कण्डूयनमाचरन्ति॥

(1/33)

प्रस्तुत श्लोक में रति स्थायी भाव की व्यंग्यता है। इस श्लोक में कृष्णसारों का तपस्विजनों के प्रति रति भाव जागृत हुआ है अतः शृंगार रस का उदाहरण है।

उदाहरण –

अधिरुह्य वासगृहचन्द्रशालिकां नयनोर्ध्वदेशधृतपाणि पल्लवाः।
मुख मुन्त्रमय्य मुहुशलुलोकिरे जगरस्य राजपथमध्वगाङ्गनाः॥

(13/50)

यहाँ पर विप्रलम्भ शृंगार है परदेस गये परिजन आलम्बन, वर्षा ऋतु उद्दीपन, मुख उन्नयन, राजपथ आदि अनुभाव चिन्ता, मोह, हर्ष, उत्सुकता व्यभिचारी रति स्थायी भाव है।

अद्भुत रस

लक्षण –

अद्भुतों विस्मयस्थायिभावो गन्धर्वदैवतः।
पीतवर्णो वस्तु लोकातिगमालम्बनं मतम्॥

(सा.द. 3/242)

उदाहरण –

वनसीमनि विन्ध्यभूतः सुरभीश्चारयितुं समागताः।
सह वत्सतरैरदुहुवंश्च पलैस्तत्र च गोपालकाः॥

(4/16)

यहाँ पर अद्भुत रस है। विन्ध्य आलम्बन है, उसकी वृद्धि अनुभाव, गोपबालकों की उत्सुकता व्यभिचारीभाव तथा इससे निष्पक्ष अद्भुत रस व्यंग्य। विस्मय स्थायी भाव है।

उदाहरण –

इत्युक्त्वा तां प्रत्ययोत्पादनार्थं व्यादायाऽऽस्यं दर्शयामास कृष्णः।
दृष्ट्वा तस्मिन्संस्थितं विश्वमन्तः सम्मुह्याऽऽसीद्विस्मिता नन्दजाया॥

(15/47)

प्रस्तुत पद्य अद्भुत रस का उदाहरण है। विस्मय स्थायी भाव है। कृष्ण आलम्बन तथा उनकी बालचपलता उद्दीपन मुख दर्शन अनुभाव तथा मति वितर्क व्यभिचारी भाव है।

भयानक रस

लक्षण –

भयानको भयस्थायिभावोकालधिदैवतः।
स्त्रीनीचप्रकृतिः कृष्णो मतस्तत्त्व विशारदैः॥

(सा.द. 3/235)

उदाहरण –

शिखरेषु तटेषु सानुषु द्रुमकुञ्जरेषु चिरंनिवासिनाम्।
सभयं दिशदिक्षु धावतामभवत् तत्र महानुपप्लवः॥

(4/22)

प्रस्तुत पद्य में विन्ध्याचल आलम्बन, परितोधावनापि अनुभाव, कोलाहल उद्दीपन, भय तथा शङ्का संचारी भाव तथा इनकी अभिव्यक्ति भयानक रस, भय स्थायी भाव है अतः यहाँ भयानक रस है।

तृतीय अध्याय

'विन्ध्यवासिनीविजयम्' महाकाव्य का कलापक्ष

अलंकार-योजना

काव्य में अलंकारों की मान्यता का सबसे पहला संकेत भरतमुनि के नाट्यशास्त्र में मिलता हैं। नाट्यशास्त्र भारतीय अलंकार शास्त्र का आदि स्त्रोत है। आरम्भ में भरतमुनि 4 अलंकारों का संकेत करते हैं -

उपमा, रूपक, दीपक तथा यमक। भरत ने उपमा के 5 भेद तथा यमक के 10 भेदों का उल्लेख किया है।

भामह, दण्डी, उद्भट अलंकार सम्प्रदाय के प्रमुख आचार्य है। इन लोगों ने काव्य में अलंकारों की महत्ता बताते हुए कहा कि अलंकार काव्य की वास्तविक शोभा करने वाले हैं, जिस प्रकार रमणी का मुख सुन्दर होने पर भी आभूषणहीन रहने पर सुशोभित नहीं होता, ठीक उसी प्रकार काव्य भी रूपकादि अलंकारों के न होने पर सुशोभित नहीं होता -

'न कान्तमपि निर्भूषं विभाति वनितामुखम्।'

(काव्यालंकार, 1/13)

आचार्य दण्डी, रुद्रट, कुन्तक आदि आचार्य भी अलंकारों को ही प्रधानता देते हैं।

आचार्य विश्वनाथ ने साहित्यदर्पण में लिखते हैं – शब्द और अर्थ के शोभातिशयी अर्थात् सौन्दर्य को विभूति के बढ़ाने वाले धर्म अलंकार है–

शब्दार्थयोस्थिरा ये धर्माः शोभाति शयिनः।
रसादीनुपकुर्वन्तोलंकारास्तेऽङ्गदादिवत्॥

(साहित्यदर्पण, 10–1)

कालान्तर में जब रस, ध्वनि आदि का महत्त्व बढ़ गया तब भी अलंकारों का महत्त्व कम नहीं हुआ बल्कि उन्हें रस और ध्वनि सिद्धान्त में उपकारक के रूप में स्वीकार किया गया और उनका स्वरूप निम्न प्रकार निर्धारित हुआ –

उपकुर्वन्ति तं सन्तं योऽङ्गहारेण जतुचित्त।
हारादिवदलङ्कारास्तेऽनुप्रासोपमादयः॥

(मम्मट काव्यप्रकाश 8–67)

अलंकार कवि के कथन को सुन्दर और मोहक बनाता है अलंकार का काव्य के साथ अविना भाव संबंध है। काव्य को अलंकार के साथ ही ग्रहण करना चाहिए।

'काव्यं ग्राह्यमलङ्कारात्।'

(वामन काव्यालंकार सूत्रवृत्ति, 1–11–11)

राजशेखर की काव्यमीमांसा में कहा गया है कि –

''उपकारकत्वादलङ्कार, सप्तममङ्गमिति यायावरीयः।
ऋते च तत्स्वरूपपरिज्ञानद्वैदार्थानवगति॥''

अर्थात् यायावरीय का मत है कि वेदों के उपकारक होने से 'अलङ्कार शास्त्र' सातवाँ वेदाङ्ग है।

भामह काव्य को अकाव्य (वार्ता) से अलग करने के लिए यह आवश्यक मानते है कि उसमें सालंकारता हो। अलंकाररहित कथन को वे काव्य नहीं मानते। केवल तथ्य कथन को काव्य मानने का खण्डन करते हैं-

गर्तोऽस्तमर्को भातोन्दुर्यान्ति वासाय पक्षिणः।
इत्येवमादि किं काव्य वार्तामेनां प्रचक्षते॥

(काव्यालंकार, 2-87)

भामह और दण्डी वक्रोक्ति और अतिशयोक्ति को ही समस्त अलंकारों का अनुप्राणक मानते हैं। भामह के लिए वक्रोक्ति ही सर्वस्वभूत तत्त्व है और इसके अभाव में कोई अलंकार सम्भव नहीं है।

''सैषा सर्वैव वक्रोक्तिरनयाऽर्थो विभाव्यते।
यन्त्रेऽस्यां कविना कार्यः कोऽलंकारोऽनयाविना॥''

(काव्यालंकार, 2/85)

आनन्दवर्धन के अनुसार -

अलंकारान्तराणि हि निरूप्यमान दुर्घटान्यमपि रस समाहित-चेतसः।
प्रतिभावानतः कवेः अहं पूर्विकया परा पतन्ति॥

(ध्वन्यालोक-आनन्दवर्धन)

इस प्रकार स्पष्ट है कि महाकवि के काव्य में अलंकार प्रचुरेण पाये जाते है।

अभिनवकाव्यालंकार सूत्रकार राधावल्लभ त्रिपाठी आचार्य रेवाप्रसादद्विवेदी के मत का समर्थन करते हुए अलंकार को ही काव्य एवं काव्यात्मा मानते है। उन्हीं के शब्दों में –

''इस प्रकार अलंकार ही समस्त कलाओं में तथा सर्वविध साहित्य में सार्वकालिक, सार्वदेशिक तथा सर्वङ्कष है। यह अलंकार न केवल काव्य जगत् का मानदण्ड है (प्रत्युत) काव्यमार्ग की समस्त पद्धतियों का नियामक भी है।''

(अभिनव पृष्ठ 39)

काव्य में पूर्णता अलंकार से ही आती है। उसी में काव्य की समस्त कोटियाँ अन्तर्भूत हो जाती है।

रसाश्चापि गुणाश्चापि रीतयो वृत्तयस्था।
सर्वेध्वनि प्रभेदाश्च ये प्राचीनैरुदाहृता॥
सन्धिसन्ध्यङ्गवृत्यङ्ग लक्षणानि तथैव च।
अलंकारस्य परिधौ सर्वे चान्तर्भवन्ति च॥

(अभिनव, पृ. 46)

रस, गुण, रीतियां, वृत्तियाँ तथा समस्त ध्वनि भेद जो प्राचीनों द्वारा उदाहृत है, साथ ही साथ सन्धि, सन्ध्यङ्ग, वृत्यङ्ग तथा लक्षण सबसे सब अलंकार की

ही परिधि में आते हैं।

अलंकार दो प्रकार के होते है –

(1) शब्दालंकार

(2) अर्थालंकार

शब्दालंकार

जहाँ काव्य का चमत्कार शब्द पर आश्रित हो तथा अर्थ सहायक हो उसे शब्दालंकार कहते हैं जैसे अनुप्रास, यमक आदि।

अर्थालंकार

जहाँ काव्य का चमत्कार अर्थ पर आश्रित हो तथा शब्द सहायक हो उसे अर्थालंकार कहते है। जैसे – उपमा, उत्प्रेक्षा आदि।

काव्य के शोभाधायक तत्वों में अलंकारों का स्थान नितान्त स्पृहणीय है। महाकवि शेवड़े का अलङ्कार विधान चमत्कारपूर्ण है। इस काव्य में शब्दालंकार एवं अर्थालंकार दोनों का ही प्रयोग हुआ है। तथापि वर्णना को देखते हुए प्रतीत होता है कि इसमें उपमा, अर्थान्तरन्यास, दृष्टान्त, उत्प्रेक्षा, रूपक, स्वभावोक्ति, अतिशयोक्ति, यमक आदि अलंकारों का चित्रण हुआ है। काव्य में कलात्मक सौन्दर्य की दृष्टि से अलंकारों का सहज चित्रण कवि के कौशल का दर्पण है।

उपमा अलंकार

लक्षण

साम्यं वाच्यमवैधर्म्यं वाक्यैक्यं उपमा द्वयोः।

(सा.द. 10/14)

उदाहरण

अन्वेषय त्वमुचितं मम वासहेतोः स्थानं हि विन्ध्यवसुधाधरगह्वरेषु।

यत्र स्थिता सुलभदर्शनलाभयोगा चन्द्रप्रभेव जनतापमपाकखिये॥

(9/65)

इस श्लोक में 'चन्द्रप्रभा' उपमान तथा स्वयं 'भगवती विन्ध्येश्वरी' उपमेय है। सन्ताप निवारण साधारण धर्म है, तथा इव आदि उपमा वाचक शब्द है। अतः यहाँ उपमा अलंकार है।

उदाहरण

प्राणावरोधपरिजृम्भितकुम्भकश्रीर्निवतिदीप इव कश्चन निश्चलाङ्गः।
मातर्भवानि विसतन्तुतनीयसीं त्वां साक्षात्करोतिहृदि कुण्डलिनीस्वरूपाम्॥

(9/44)

यहाँ पर 'निर्वातदीप' उपमान तथा 'कश्चन इति अज्ञात' उपमेय है इव आदि उपमा वाचक शब्द है अतः यहाँ उपमा अलंकार है।

मालोपमा

लक्षण

मालोपमा यदेकस्योपमानं बहुदृश्यते।

(सा.द. 10/26)

उदाहरण

सृत्वरो मरुदिव स्वभावतः शीतरश्मिरिव तापनाशनः।
पर्यटन जगदनुग्रहेच्छाया नारदो मधुपुरीमुपाययौ॥

(11/52)

प्रस्तुत श्लोक में नारद के दो उपमान **'मरुत'** और शीत रश्मि (चन्द्रमा) प्रयुक्त हुए है अतः यह मालोपमा अलंकार है।

उदाहरण

राजहंस इव कंस पक्षिषु श्वापदेषु न यथा मृगाधिपः।
ऋक्षमध्यग इव क्षपाकरो राजसे त्वमिह राजमण्डले॥

(11/55)

इस श्लोक में कंस के लिए तीन उपमान प्रयुक्त हुए हैं –

राजहंस, **मृगाधिपः** (सिंह) और **क्षपाकर** (चन्द्रमा) अतः यहाँ मालोपमा अलंकार है।

अर्थान्तरन्यास

लक्षण

सामान्यं वा विशेषो वा तदन्येन समर्थ्यते।
यत्तु सोऽर्थान्तरन्यासः साधर्म्येण तरेण वा॥

(काव्यप्रकाश - 10/165)

उदाहरण

ते बृहद्रथसुतात्मजे उभे देवकीमविरतं निनिन्दतुः।
यत्रनान्हजनबन्धुजाययोर्वैरमत्र जगति प्रसिद्धयति॥

(11/33)

यहाँ पर द्वितीय वाक्यार्थ का सविशेष अर्थ प्रचलित है अतः यहाँ अर्थान्तरन्यास अलंकार है।

उदाहरण

शङ्कमान इव सर्वतो न्यधादेव गूढपरूषान् समन्ततः।
कम्पितेऽपि मरुता तृणाङ्कुरे जायते विकृतचेतसां भयम्॥

(11/66)

इस श्लोक में उत्तर वाक्य सामान्य तथा पूर्व वाक्य विशेष है।

दृष्टान्त

लक्षण

''दृष्टान्तस्तु सधर्मस्य वस्तुनः प्रतिबिम्बनम्॥''

(सा.द. 10/41)

उदाहरण

स्वयमेव विधातुमक्षमो निजकार्यं तु परेण साधयेत्।
रयेच्चतुरो यथा जनः फणिनः प्राघुणकेन मारणम्॥

(3/40)

इस श्लोक में उपमान-उपमेय आदि में बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव है अतः यहाँ दृष्टान्त अलंकार है।

उदाहरण

परिवृढा महयन्त्यनुजीविनो महति कर्मणि साधुनियोजनात्।
शर्मायतुं प्रसृतां तिमिरच्छटामरुणमत्र पुरस्कुरुते रविः॥

(8/50)

यहाँ पर पूर्वापर वाक्य में साधारण धर्म आदि तथा बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव है अतः दृष्टान्त है।

उत्प्रेक्षा -

लक्षण

सम्भावनमथोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य समेन यत्॥

(का.प्र. 10/137)

उदाहरण

तिथिमष्टमीं बहुलपक्षवर्तिनीं प्रचुरं ववर्षजलदोधरातले।
भुवनत्रयीमिव विलोप्तुमागतं प्रलयाम्बुवाहमनुकर्तृमुधतः॥

(13/53)

प्रस्तुत श्लोक में भुवनत्रय को विलुप्त करने के लिए प्रलय काल के मेघों का अनुकरण करने की सम्भावना प्रकट की गई है अतः यहाँ उत्प्रेक्षा अलंकार है।

उदाहरण

गच्छत्रसौ विपिनवर्त्मनि देवदारुनालिङ्गितानिव दृढं वनमल्लिकाभिः।
बालानिवाहिसुतया परिपाल्यमानान् शालानलोकयत भव्यतमांस्तमालान्॥

यहाँ पर देवदारूओं का वनमल्लिकाओं से दृढ आलिङ्गन संभावित है यहाँ पर उत्प्रेक्षा अलंकार है।

रूपक -

लक्षण

तद्रूपकमभेदो य उपमानोपमेययोः।

(का.प्र. 10/139)

उदाहरण

भक्त्या प्रणम्य मणिकुहिमचुम्बिशीर्षः पादारविन्दमुभयं प्रमयाधिपरस्य।
बद्धञ्जलिः सविनयं मधुरस्वरेण तुष्टावनष्टतिमिरो मुनिरष्टमूर्तिम्॥

(9/37)

यहाँ पर **'पादारविन्द'** पद में रूपकालंकार है। दोनो मे उपमान उपमेय रूप सम्बन्ध है।

उदाहरण

विनिवेश्ये मुखे करारविन्दं गृहदोलासु च बालकाः निद्रदुः।
विपिने हरिणा गृहे कपोतास्तुरगाः संविविशुश्व मन्दुरायाम्॥

(14/25)

प्रस्तुत उदाहरण में **'करारविन्दं'** पद उपमेय कर उपमान अरविन्द आरोप है अतः रूपक अलंकार है।

स्वभावोक्ति –

लक्षण

स्वभावोक्ति र्दुरूहार्य स्वक्रिया रूपवर्णनम्॥

(सा. द. 10/93)

उदाहरण

आरावं तं भैरव वृक्ष पातादाकर्ण्याऽऽगात् तत्र नन्दः सगोपः।
दृष्टवा पुत्रं चाऽक्षतं दृष्टचेता आलिङ्गँस्तं भर्त्सयामासपत्नीम्॥

(15/50)

इस श्लोक में नन्द के अपने पुत्र को विप्लव में देखकर भयभीत हो जाने का स्वाभाविक वर्णन है अतः यह स्वभावोक्ति का सुन्दर निदर्शन है।

उदाहरण

ग्रीष्मे भीष्मे कानने हिण्डमाना वर्षत्यग्निं चाण्डभानौ कदाचित्।
शुष्यत्कण्ठा गोपबाला ह्रदस्य प्राशुस्तोयं कालियाधिष्ठितस्य॥

(15/70)

यहाँ पर वृन्दावन में गायें चराते हुए गोप बालों का स्वाभाविक चित्रण प्रस्तुत किया गया है।

अनुप्रासः -

लक्षण

अनुप्रासः शब्द साम्यं वैषम्येऽपि स्वरस्य यत्॥

(साहित्यदर्पण-10/3)

उदाहरण

विपणिः क्रयविक्रयादिभिः सरणिस्तत्र गमागमैर्नृणाम्।
रजनिर्मणिदीपपङ्क्तिभिर्धरणिः सिक्त जलैर्व्यराजत॥

(16/81)

यहाँ पर **'दकार' 'मकार' 'भकारादि'** वर्णो का प्रयोग हुआ है अतः अनुप्रास अलंकार है।

उदाहरण

दासी काचिद्वक्रगात्रा व्रजन्ती माल्यं गन्धं बिभ्रती राजवासम्।
देवादेशाद् गन्धमाल्यप्रदानाद् रम्भादम्भस्त्रम्भनं रूपमाप॥

(15/109)

प्रस्तुत श्लोक में **'ककार' 'रकार'** तथा **भकारादि** वर्णो की आवृति है अतः अनुप्रास का प्रयोग है।

यमक -

लक्षण

सत्यर्थे पृथगर्थायाः स्वरव्यञ्जन संहतेः।
क्रमेण तेनैवावृत्तिर्यमकं विनिगद्यते॥

(साहित्यदर्पण-10/8)

उदाहरण

परिरभ्य पुनः सुतं सहर्ष पुरतो गोपुरतो निरीय सर्पन्।
यमुनातटघट्टमश्सबद्धं वसुदेवो जनशून्यमाजगाम॥

(14/10)

इस श्लोक में **'पुरतो'** की आवृत्ति हुई है। यहाँ पर एक पुरतो का अर्थ सामूहिक रूप से एकत्र तथा द्वितीय का अर्थ गोपुरस्थान वाचक है अतः यमक अलंकार है।

उदाहरण

यात्वा कृष्णः कार्मुकस्योपकण्ठं धृत्वा हस्ते लीलया तत्प्रचण्डम्।
शुण्डादण्डे पुष्करीवेक्षुखण्डं कर्षन् किञ्चित् खण्डशः संबिभेद॥

(15/10)

प्रस्तुत श्लोक में **'खण्ड'** शब्द की आवृत्ति हो रही है। प्रथम **'खण्ड'** का अर्थ **'समूहार्थक'** तथा द्वितीय **'खण्डशः'** का अर्थ टुकड़े करने से है अतः यहाँ यमक अलंकार है।

अतिशयोक्ति -

लक्षण

सिद्धत्वस्याऽध्यवसायः स्यादतिशयोक्ति निगद्यते।

(साहित्यदर्पण-10/46)

उदाहरण

दरमुत्रतचञ्चुकोटयस्तरूशाखासु कुलायसंस्थिताः।
अपिबन् किरणामृतं विधोमुहुयरतृप्ति चकोरशावकाः॥

(4/26)

यहाँ पर चन्द्रमा की किरणों को अमृत कहा गया हैं किरण का अमृत के रूप में अध्यवसाय हुआ है अतः यहाँ पर भेद में अभेद का उदाहरण होने से अतिशयोक्ति अलंकार है।

उदाहरण

अभ्रलिहेष्वत्र शिरोगृहेषु मध्याह्नकाले गरूडाग्रजन्मां
रभ्यात्रभसङ्क्रमजातरवेदान् विश्राम्य किञ्चित्पुरतः प्रयाति॥

(6/16)

यहाँ पर वाराणासी के भवनों की उन्नति वर्णित है। जो सर्वथा अवास्तविक असम्भव वर्णन है। अतः यहाँ अतिशयोक्ति अलंकार है।

व्यतिरेक -

लक्षण

उपमानाद्यादन्यस्य व्यतिरेकः स एव सः।

(काव्यप्रकाश-10/5)

उदाहरण

जयत्यसन्देहमियं सहेलं पुराण्यशेषाणि जगत्त्रयस्य।
अतोवणिक्क्षेणिषु पण्यवीथ्यां प्रथां समारोहति जित्वरीति॥

(4/14)

यहाँ पर पूर्ववाक्य में व्यतिरेक अलंकार है। उपमानभूत जगत्प्रयस्य उपमेय भूत नगरी वाराणसी का उत्कर्ष वर्णित है।

यहाँ पर उपमेय को उपमान से बढ़कर बताया गया है अतः व्यतिरेक अलंकार है

उदाहरण

जगति सन्तु तपस्विमहर्षयस्त्वखिलेषु च तेषु विशिष्यसे।
उडुषु चन्द्र इव द्रषु चन्दनो विषधरेषु सहस्त्र मुखोयथा॥

(8/19)

यहाँ पर सभी तपस्वीजनों में अगस्त्य को विशिष्ट बताया है अतः यहाँ व्यतिरेक अलंकार है।

छन्दयोजना

छन्द शब्द के मूल में **छद् धातु** है जिसका अर्थ है आह्लादित करना अथवा प्रसन्न करना।

'यः छन्दयति आह्लादयति च सः छन्दः।'

कोषकारो ने छन्द को पद्य का पर्यायवाची शब्द कहा है।

साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ के शब्दों में छन्दोबद्ध पद ही पद्य है। जो लघु-गुरु स्वर अथवा मात्रा की निश्चित वर्णयोजना के कारण छन्द का रूप धारण करता है। पद्यरचना को लययुक्त, गतिशील और प्रवाहपूर्ण बनाने के लिये उसे छन्द के सांचे में ढालना पड़ता है। छन्दोमयी रचनाएँ निश्चय ही भावमयी और रसीली होती हैं। जिनका हमारे हृदय की तन्त्रियों से गहरा सम्बन्ध है। आचार्य विश्वनाथ की अमरकृति साहित्यदर्पण के अनुसार -

'छन्दोबद्ध पदं तेन युक्तेन मुक्तकम्।'

विश्व का प्राचीनतम साहित्य वेद है जिसे **'छन्दस'** भी कहा गया है। जिसमें मूलतः सात छन्दों का प्रयोग हुआ है- गायत्री, उष्णिक, अनुष्टुप, बृहति, पंक्ति, त्रिष्टुप और जगती।

छन्दशास्त्र के प्राचीनतम आचार्य पिङ्गल माने जाते है अतः उनके नाम पर इसे **'पिङ्गल शास्त्र'** भी कहा जाता है।

लौकिक संस्कृत में छन्दरचना का श्रेय आदिकवि वाल्मीकि को दिया जाता है, जिनका शोक क्रौञ्च वध की घटना से द्रवित होकर **'मा निषाद'** के श्लोक के रूप में अनुष्टुप छन्द की पदावली में फूट पड़ा। मेदिनीकोष के अनुसार –

'छन्दः पद्ये च वेदे च स्वैराचभिलाषयोः।'

कात्यायन ने अक्षर परिमाण को छन्द का गुण बताते हुए सर्वानुक्रमणी में लिखा है –

'यदक्षर परिमाणे छन्दः।'

अमरकोष में छन्द को पद्य का पर्याय बताया गया है –

'छन्दः पद्येऽभिलाषे च।'

(अमरकोष नाना वर्ग)

'छन्दयतिवृणाति रोचते इति छन्दः।'

अर्थात् रूचिकर और श्रुतिप्रिय लययुक्त वाणी छन्दोमयी वाणी कहलाती है।

काव्यादर्श के अनुसार –

'पद्यं चतुष्पदी।'

(काव्यादर्श 1/1)

किसी भी छन्द में निबद्ध चतुष्पदों को पद्य कहते है। सभी पद्यात्मक रचनाओं के लिए छन्द का ज्ञान अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

छन्द का लक्षण

एक ऐसी रचना जिसमें मात्राओं और वर्णो की विशेष व्यवस्था ओर गणना की जाती है तथा जो संगीत की भांति लय ओर गति से बँधी हुई चलती है। वह एक प्रकार का ऐसा आच्छादन है जिसमें काव्य के प्राण सुरक्षित रहते है तथा जिसके कारण काव्य में सौन्दर्य का संचार होता है।

छन्द मुख्यतः दो प्रकार के होते है -

(1) **वर्णिक छन्द**

(2) **मात्रिक छन्द**

वर्णिक छन्द

वर्णिक छन्दों में वर्णो की गणना होती है यथा - इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा आदि।

मात्रिक छन्द

मात्रिक छन्दों में मात्राओं की गणना होती है। यथा- आर्या छन्द।

वर्णिक छन्दों के समवृत्त, अर्द्धसमवृत और विषमवृत्त ये तीन भेद होते हैं।

समवृत्त

समवृत्त में चारो चरण एक समान होते है। यथा- इन्द्रवज्रा, वसन्ततिलका आदि।

अर्द्धसमवृत्त

इसमें प्रथमः तृतीय और द्वितीय चतुर्थ चरणों में समानता होती है। यथा- वियोगिनी, पुष्पिताग्रा आदि।

विषमवृत्त - इसमें प्रत्येक पाद में वर्णो की संख्या विषम होती है। जैसे- उद्गाता और गाथा छन्द।

'विन्ध्यवासिनीविजयम्' नामक 1039 श्लोकों के इस महाकाव्य में छन्दः परम्परा का सम्यक् चित्रण हुआ है। प्राधान्येन इस काव्य में उपजाति, वसन्ततिलका, शालिनी, मालिनी, वियोगिनी इत्यादि छन्दों का प्रयोग हुआ है। किन्तु इसके अतिरिक्त भी अनेक छन्द काव्य में प्रयुक्त हुए है।

छन्दचित्रण की दृष्टि से कवि की यह विशेषता रही है कि उन्होने षोडशसर्गात्मक इस महाकाव्य में कही भी अनुष्टुप छन्द का प्रयोग नहीं किया है -

'अत्र च महाकाव्ये कुत्राप्यनुष्टुप छन्दसः प्रयोगो नास्ति अयमप्यस्य विशेषः।'

उपजाति छन्द -

लक्षण

अनन्तरोदीरितलक्ष्मभाजौ, पादौ यदीयावुपजातयस्ताः।
इत्थं किलान्यास्वपि मिश्रतासु, स्मरन्तिजातिविष्वदमेव॥

उदाहरण

निवासभूमिर्वनदेवतानां,
तपस्विनामाश्रमसन्निवेश।
सोपानपङ्क्तिस्त्रिदशाल्यस्य,
विन्ध्याभिधो राजति शैलराजः॥

(1/1)

छायासु विश्रम्य महीरूहाणां
फलानि चाऽऽस्वाद्य पचेलिमानि।
पुनः स्वमार्गक्रमेण यथेच्छं,
प्रवर्तते यत्र जनोऽध्वनीनः॥

(1/12)

वसन्ततिलका -

लक्षण

'उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः।'

उदाहरण

मन्दारदामपरिणद्धजटाकलापो,
मञ्जुस्वनां करतले महतीं दधानः।
लोकत्रयं निरवरोधमटन् कदाचित्,
विन्ध्याचलं दिविषदां मुनिराजगाम॥

(1/40)

आक्रम्य दीर्घपथमम्बुनिधेरूपेतं
गोर्वधनस्य शिखरे स्थितम्बुवाहम्।
मञ्जुस्वनैः समभिनन्द्य दिशन्ति तस्मै
नृत्योपहारमिव यत्र मुदा मयूराः॥

(10/47)

रथोद्धता -

लक्षण

'रान्नराविह रथोद्धता लगौ।'

उदाहरण

आगतं तमवलोक्य नारदं
पूर्णचन्द्रमिव चारूशारदम्।
तोयराशिरिव विन्ध्यभूधरो,
हर्षवृद्धिमतिवेलमादधे॥

(2/1)

अधिजाह्नवीतटमगस्त्यमुनेः
प्रविशस्तदाश्रमपदं प्रयतम्।
स निमज्जनादिव सुधाम्बुनिधौ
मघवानविन्दत परं प्रमदम्॥

(7/1)

द्रुतविलम्बित –

लक्षणः

'द्रुतविलम्बितमाह नभौ भरौ।'

उदाहरण

गतवति त्रिदिवं सह निर्जरै,
र्गल दमन्दमदे बलशासने।
प्रतिजगाम स विन्ध्यमहीधरं,
कतिपयैः स्वजनै कलशात्मजः॥

(8/1)

मृगमदेन विधाय विशेषकं,
वपुषि चन्दनलेपमयोजयत्।
अधिगलं च गुरोर्निदधे नगः
कनकचम्पकपुष्पमयीं स्त्रजम्॥

(8/10)

मन्दाक्रान्ता –

लक्षण

'मन्दाक्रान्ताम्बुधिरसनर्गेमोभनौ तौ गयुग्माम्।।'

उदाहरण

क्षिप्तवा बीजं कलहृजनकं नारदे सम्प्रयाते,
क्रोधोत्कर्षे शममुपगते लब्धमूले विवेके।
कार्याकार्यं परिगणयितुं राजनीतिप्रवीणान्,
सद्यो विन्ध्यः सदसि सुहृदो बान्धवाश्चा जुहाव॥

(2/44)

शालिनी –

लक्षण

मातौगौच्छेचशलिनी वेदलौकः

उदाहरण

तस्या मूर्ती रक्तपावत्प्रसक्तं
प्रोच्चि क्षेप स्कीतकम्पा यशोदा।
कृष्णं मोहाद् वत्सवत्सेत्युदित्वा
यस्तूद्धर्ता भक्तवृन्द भवाब्धेः।

(15/38)

कंसो दुष्टः षट् तनूजान् भगिन्या,
हन्ताऽऽहन्ता प्रागहन्ताव लिप्तः॥
पश्चाद्गर्भः स्रंसिता सप्तमोऽस्या
प्रादुर्भूयाद् रोहिणीकुक्षिमध्ये॥

(12/47)

मालिनी -

लक्षण

'ननमयययुतेयं मालिनीभौगिलौकेः॥'

उदाहरण

मधुरवचनपूर्वं पूर्णपात्रस्यलाभा,
द्विकसितवदनश्रीः सूचनात्कार्यसिद्धेः।
मधुरिपुपदपयं भक्ति युक्तः प्रणम्य,
त्रिदशपतिरगस्त्यस्याश्रमाय प्रतस्थे॥

(5/42)

वियोगिनी -

लक्षणः

विषमे ससजागुरुस्तथा, सभा लश्च गुरु समे यदा।
मकरध्वजेवैजयन्तिके, कविभिः सा कथिता वियोगिनी॥

उदाहरण

सदनं समुपेत्य सादरं
निपुणैर्दूत जनैर्निमन्त्रिताः।
सचिवाः सुहृदश्च बान्धवा
मिमिलुः संसदि विन्ध्यभूभृतः॥

(3/1)

उपविश्य कुशासने ततः,
प्रयतो मीलितनेत्र पङ्कजः।
हृदि विन्ध्यगिरिण्र्यचिन्तयत्,
करूणाब्धिं तरूणेन्दुशेखरम्॥

(4/1)

वर्णन-वैचित्र्य

न स शब्दो न तद वाच्यं न सन्यायो न सा कला।
जायते यन्न काव्यांग महोभारो महान् कवेः।

(भामह-काव्यालंकार 5/4)

वह शब्द नहीं, वह अर्थ नहीं, वह न्याय नहीं, वह कला नही, जो काव्य का अंग न बनती हो, कवि का दायित्व कितना बड़ा है।

भट्टतौत के अनुसार कवि में दर्शन और वर्णना दोनो की अद्भुत क्षमता होती है -

'दर्शनाद् वर्णनाच्चाथ लोके रूढ़ा कविश्रुतिः।'

कवि अपनी प्रतिभा से चर और अचर दोनो के अन्तः का साक्षात्कार कर लेता है। उसका यह वैशिष्ट्य ही दूसरों के अन्तःकरण के भावों को समझ लेने की क्षमता ही अनुभूति है। कवि पुरूष होकर भी स्त्री की पीड़ाओं का अनुभव करता है उसकी यह अनुभूति जब कल्पना के आधार पर वर्णना बनती है तब कविता का जन्म होता है। इसलिए माना जाता है कि कविता का जन्म वर्णना से ही होता है -

'नोदिता कविता लोके यावत् जाता न वर्णना।'

रविन्द्रनाथ ठाकुर ने कहा है कि **''यदि संसार का सर्वाधिक आनन्द**

प्राप्त करना है तो कवि की आँखो से देखो, समझो और अपनाओ।'' इससे स्पष्ट होता है कि कवि की आँख असाधारण प्रतिभा से सम्पन्न होती है। साधारण मानव संसार के भौतिक पक्ष को ग्रहण करता है, दार्शनिक तात्विक पक्ष को परखता है और कवि संसार के रसात्मक पक्ष को देखता है।

(संस्कृति के महाकवि और काव्य-पृष्ठ- 1-2)

महाकवि भर्तृहरि सत्काव्य के आनन्द के सामने राजकीय वैभव के विलास को फीका मानते है -

'सुकविता यद्यस्ति राज्येन किम्।'

प्रकृति के कण-कण में अनन्त असीम सौन्दर्य का प्रवाह विद्यमान है जो जन-जन को प्रभावित करता है। कवि सहृदय एवं भावुक होने के कारण अधिक प्रभावित होता है किन्तु कवि यदि उनको हृदय मे ही अनुभव करके रह जाय तो कविता की सृष्टि संभव नही है। वाल्मीकि का शोक जो क्रौच वध और क्रौंची के विलाप से उत्पन्न हुआ। जब श्लोकत्व को प्राप्त हुआ तब कविता उत्पन्न हुई और जगत् के लिए कल्याणकारी रामायण की सृष्टि हुई -

मा निषाद प्रतिष्ठाः त्वंगमः शाश्वती समाः।
यत क्रौञ्च मिथुनादेकमवधीः काममोहितम्॥

जिन शब्दों का प्रयोग जन-सामान्य करता है उन्हीं का प्रयोग कवि भी करता है किन्तु कविता की भाषा कवि की नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा के स्पर्श से साधारण भी विलक्षण हो जाती है। कवि की वर्णना अत्यन्त श्रेष्ठ हो जाती

है जो कवि और कविता को अमर बना देती है, इसलिए काव्य की भाषा कथ्य कथन करने वाली सामान्य भाषा से भिन्न होती है। भामह के अनुसार सूर्य अस्त हो गया, चन्द्रमा प्रकाशित हो रहा है, पक्षी घोसलों की ओर जा रहे है इस तरह की उक्ति क्या काव्य है? इसे वार्ता कहा जाता है –

गतोऽस्तमर्को भातीन्दुर्यास्ति वासाय पक्षिणः।
इत्येवमादि किं काव्य वार्तामेनां प्रचक्षते॥

(काव्यालंकार 2-87)

कोई प्राकृतिक सौन्दर्य, दृश्य किंवा घटना कवि के अन्तर को जितना अधिक प्रभावित करती है उतनी ही सशक्त अभिव्यक्ति होती है, उत्तम काव्य की सृष्टि होती है। सच्चा काव्य सहृदय को आधिभौतिकता के आकर्षण की परिधि से उठा देता है।

महाकवि वसन्त त्र्यम्बक शेवडे सकलशास्त्र पारावारपारीण है। इनके द्वारा रचित **'विन्ध्यवासिनीविजयम्'** नामक महाकाव्य भक्तिरसाप्लवित है। शेवडे जी माँ दुर्गा के परम भक्त है। माँ दुर्गा की प्रेरणा से ही कवि ने इस महाकाव्य का सृजन किया है जो कवि के प्रतिभावैशद्य को उजागर करता है। इस महाकाव्य में प्रसाद गुण सर्वत्र प्राप्त होता है और वैदर्भी रीति का सम्पूर्ण कृति पर साम्राज्य परिलक्षित होता है। जो श्रोता एवं पाठक को प्रमुदित करने में सम्पूर्णतः सक्षम है। कवि की कृति में लक्षणा, व्यञ्जना आदि शब्द शक्तियों का प्रचुर प्रयोग हुआ है और ध्वनि प्रतिपादक उत्तमकाव्य के उदाहरण प्रभूत मात्रा में प्राप्त होते हैं। गुरुध्वजभगवान विष्णु भगवती से प्रवर्तित होकर अपनी महिमा का त्याग करके

लंघिमा स्वीकार करते हैं और अनिलय एवं जगन्निवास होकर भी देवकी के जठरनिवास का सुख अनुभव करते हैं। इस वर्णना से चमत्कार की सृष्टि होती है –

गरुडध्वजो भगवती प्रवर्तितो लघिमानमेत्य महिमानमुत्सृजन्।
त्रिजगन्निवासनिलयोऽपि देवकी जठराधिवाससुखलेशमन्वभूत्॥

(13/27)

यशोदा के गर्भ में जगन्माता के आने का बड़ा सुन्दर वर्णन है –

अभिवक्तुमैष्ट वसुदेवभामिनी न भयेन कंसजनितेन दोहदम्।
प्रससार वृत्तमिदमाशु दिङ्मुखे किमु गोप्यते मृगमदस्य सौरभः॥

(13/29)

वसुदेव और नन्द के घर देवकी और यशोदा के गर्भधारण से आनन्द उत्पन्न हुआ। उधर वसुदेव के घर उत्पन्न प्रमोद कंस के भय से ध्वन्यर्थ की भाँति गूढ़ हो गया, जबकि नन्द के घर का आनन्द वाच्यार्थ की भाँति स्फुट हुआ। यह वर्णन वैचित्र्य का सुन्दर निदर्शन है –

उभयत्र नूनमजनिष्ट सम्मदो वसुदेवसद्यनि च नन्दवेश्मनि।
प्रथमे दधौ ध्वनिरिवातिगूढ़तामपरत्र वाच्य इव स स्फुटोऽभवतः॥

(13/30)

प्रथम सर्ग मे विन्ध्याचल पर नारद के आगमन का वर्णन है। यह सर्ग उत्कृष्ट कोटि की मनोरम अभिव्यञ्जनाओं से भरपूर है। कवि ने विन्ध्याचल का

बहुत सुन्दर चित्रण किया है।

निवासभूमिर्वनदेवतानां तपस्विनामाश्रमसन्तिवेशः।
सोपानपङ्क्तिस्त्रिदशालयस्य विन्ध्याभिधो राजति शैलराजः॥

(1/1)

अत्ययुच्छ्रितत्वादतिदुर्गमत्वाद वसुन्धराभारभरक्षमत्वात्।
असंशयय: कुलपर्वतानामग्रेसरत्वं सततं बिभर्ति॥

(1/2)

महाकवि ने मलयानिल का वर्णन करते हुए कहा है –

विषार्दितं सेणितुमिन्दुमौलि व्रजत्रुदीच्यां मल्यानिलोऽपि।
धुन्वन्मुहूर्त कदली वनानि यस्य स्वयं वीजन मातनोति॥

(1/30)

अर्थात् समुद्र मन्थन के समय हालाहाल विष के पान से पीड़ित भगवान शङ्कर की सेवा करने के लिए मलयानिल भी जिसके गौरव के लिए कुछ क्षण रूक कर व्यजनतुल्य कदली वनों को हिला कर पंखा करती है।

महाकवि शेवडे का अलङ्कार विधान चमत्कारपूर्ण है। पर्वतराज विन्ध्य ने देवर्षि नारद को देखा। विन्ध्य को नारद शरत्–कालीन चन्द्रमा के समान दिखायी पड़ रहा है। इस पूर्णोपमा में नारद के दैहिक सौन्दर्य की पवित्रता, निष्कलुषता तथा मनोहारिता को बड़े ही सहज एवं प्रभावी ढंग से प्रस्तुत किया है –

आगतं तमवलोक्य नारदं पूर्णचन्द्रमिव चारूशारदम्।
तोयराशिरिव विन्ध्यभूधरो हर्षवृद्धिमतिवेलामादधे॥

(2/1)

इसी श्लोक में एक और उपमा दर्शनीय है- विन्ध्य नारद को देखकर उसी प्रकार हर्षित हुआ जैसे समुद्र पूर्णचन्द्रमा को देखकर वृद्धि को प्राप्त होता है।

कवि के अगस्त्य जब जगज्जननी गौरी तक पहुँचते है तब उनकी वाणी और मुखर हो जाती है -

विद्यां पुरा त्रिपुरभैरवि तावकीनामाराध्य पञ्चदशवर्णमयीं मुकुन्दः।
दैत्यानुपप्लवकरानिव विप्रलब्धुं, त्रैलोक्यमोहनमद्यत रूपधेयम्॥

(8/31)

हे त्रिपुर भैरवी, पुराकाल मे तुम्हारी विद्या की आराधना करके मुकुन्द ने उत्पात मचाने वाले दैत्यों को मानो वञ्चित करने के लिए त्रैलोक्य को मोहित करने वाला रूप प्राप्त किया।

ऋषि अगस्त्य हिमालय पर गौरी का दर्शन करते हैं वे कहते है- ''हे देवि! आपको सांख्यमतानुयायी पुराणी-प्रकृति, वेदान्ती माया, शैव भगवान् पशुपति की पराशक्ति कहते हैं परन्तु मेरे लिए आप साक्षात् करूणा है''

सांख्या वदन्ति भवतीं प्रकृतिं पुराणीं,
वेदान्तिनः श्रुतिमतां कथयन्ति मायाम्।

शक्तिं परां पशुपतेर्निगदन्ति शैवा,

अस्मत्कृते तनुमती करूणा त्वमेव॥

(9-43)

इस महाकाव्य में राजनीति का बड़ा ही सुष्टु निरूपण हुआ है -

असमीक्ष्य बलाबलं निजं सहसा कर्मसु यः प्रवर्तते।

स विपत्तिवंशवदश्चिरादनुतापातिशयेन ताम्यति॥

कलहे बलवत्युपस्थिते बलभेदी बलवत्तरो हि नः।

कुलिशेन शितेन पक्षती सममस्माकमसौ यदच्छिनत्॥

(3/16-17)

संस्कृत काव्य परम्परा में प्रायः धीरोदात्त नायकों का ही वर्णन हुआ है किन्तु देवी-देवताओं को भी नायक-नायिका बनाने की परम्परा यदा-कदा दृष्टिगोचर होती है। कवि ने इसी परम्परा का अनुसरण किया है तथा 'विन्ध्यवासिनी' को नायिका (प्रधान पात्र) के रूप में प्रतिष्ठित किया है। महाकवि ने देवी भगवती का गुणगण वर्णन बड़ी ही श्रद्धा एवं भक्ति-भाव पूर्वक किया है।

केचिद् वदन्ति जगदम्ब सरस्वतीं त्वां प्राहुः परे सहचरीं मधुकैट्भारेः।

अन्ये गिरीशगृहिणीं निगमागमज्ञास्तुर्यामसीममहिमानमुदाहरन्ति॥

(9/53)

स्वर्गाद् देवाः किन्नरसिद्धा हिमशैलात्पातालस्थाः सर्पगणाः सम्भृतदर्पाः।

यक्षा रक्षाकर्मनियुक्ताश्च निधीनां दुर्गा देवी पूजयितुं तत्र समीयुः॥

(9/73)

नगर वर्णन में नगरीय विशेषताओं को अभिव्यक्ति दी गई है। षष्ठ सर्ग **'इन्द्रादीनां वाराणासी यात्रा'** में इन्द्र द्वारा शिव की नगरी वाराणासी का परम रम्य वर्णन किया गया है। वाराणासी की अनेक विशेषताओं का चित्रण करते हुए कहा गया है –

वर्वर्ति सा कापि नितान्त रम्या वाराणासी मुक्तिपुरी पुरारेः।
यस्याय साधारण गौरवायां न भाग्यहीनो लभते प्रवेशम्॥

(6-10)

यात्रानुगङ्ग परिणाहवत्यामत्यादशदेत्य च सत्यलोकात्।
कात्यायनी वल्लभचिन्तनेन महर्षयः कालकलां नयन्ति॥

(6-13)

महाकवि ने काशी का चित्रण करते हुए बताया है कि काशी में विश्वनाथ अन्नपूर्णा के साथ निवास करते है और यह काशी शिव को कैलाश से भी अधिक प्रिय है, यह शिव की नगरी लोक में अत्यन्त श्रेष्ठ मानी जाती है क्योकि यहाँ रहने वालों के लिए बिना किसी यत्न के स्वर्ग और मोक्ष करस्थ है। इस प्रकार कवि ने शिव भक्तिपरता का प्रतिपादन किया है।

कवि को अन्यत्र भी वर्णनीय स्थल विशेष के विलक्षण स्वरूप तथा गुण धर्म को अंकित करने में सफलता मिली है।

प्रकृति के वर्णन में कवित्व का उद्रेक दर्शनीय है –

सुरसिन्धु विगाह निर्मलः कलयन् पुष्कलपुष्प सौरभम्।
असभाजयदेत्य माथुरान् पुरतो विन्ध्यगिरेः समीरणः॥

(16/73)

शरद् ऋतु का भी विस्तार पूर्वक वर्णन किया गया है –

अवतीर्य वसुन्धरातले मधुरश्रीर्ऋतुनायिका शरत्।
यदुवंशमणेरजीजनद्धृदि विन्ध्याचल दर्शन स्पृहम्॥

(161-36)

कवि की भाषा ने इसे वर्णन वैचित्र्य से पूर्ण एवं मनोहारी अभिव्यञ्जनाओं से युक्त बनाया है। कवि शब्दावली पारम्परिक एवं आधुनिक का मिश्रण तथा मानवीय संवेदनाओं को प्रकट करने में पूर्णतया समर्थ है। भाषा की सरलता एवं मनोहरता इस श्लोक में द्रष्टव्य है –

शिखरेषु तटेषु सानुषु द्रुमकुञ्जरेषु चिरं निवासिनाम्।
सभयं दिशदिक्षु धावतामभवत् तत्र महानुपप्लवः॥

हरिणाः करिणो मृगादना गवयाः केसरिणः प्लवङ्गमाः।
अपहाय विरोधमात्मनो मिलिता एककुटुन्वितां दधुः॥

(4-22-23)

कवि के पाण्डित्य के साथ भारतीय सांस्कृतिक चेतना का गहरा प्रभाव परिलक्षित होता है। **'विन्ध्यवासिनीविजय'** महाकाव्य के प्रथम सर्ग के 10वें

श्लोक में इन्द्र के मद को चूर करने के लिए भगवती को विन्ध्य क्षेत्र में प्रतिष्ठित करके देवताओं के पर्वत सुमेरू की तुलना में विन्ध्य को अधिक महत्वपूर्ण सिद्ध करने में की गयी, किन्तु यह रचना अन्ततः कृष्ण द्वारा आततायी कंस के संहार के कारण लोक-कल्याण की भूमि पर प्रस्तुत हुई। इसमें कवि का कवित्व आधोपान्त वर्णित है। महाकवि ने समाज के सबसे छोटे वर्ग, किरातों, पुलिन्दों, शालिगोपियों के साथ दूसरी ओर वाराणसी वर्णन में वैदिक विज्ञानों के वेदपाठ की चर्चा प्रयुक्त की है। यह शेवड़े जी की वर्णना को ही चित्रित करता है।

महाकवि ने माँ दुर्गा के विविध रूपों का बड़ा ही मनोहारी वर्णन किया है, इस चित्रण में कवि की वर्णना शक्ति प्रशंसा के योग्य बन पड़ी है -

जगदीश्वरी विन्ध्यवासिनी प्रिय भक्ते करूणा तरङ्गिणि।
तवपाद सरोरुहद्वये मम नित्यं भ्रमरायते मनः॥

गिरिजागिरिकाननान्तरे विपदा सन्धिषु विन्ध्यवासिनी।
परिरक्ष भयेषु भैरवी नवदुर्गातनुरम्ब दुर्गतौ॥
यदहं विरमामि विस्तरान्त्र गुणानां तदियतया तव।
गगनाद्विहगो निवर्तते बलहानान्त्र तदन्तलङ्घनात्॥

स्तुत्वा भवानीं पुनरेषु नत्वा दत्वा धनं तीर्थपुरोहितेभ्यः।
लघुत्रिकोणं च बृहत्त्रिकोणं शौरिः परिक्रम्य ययौ निवेशम्॥

(16/85, 89,90,91)

राजशेखर ने कविचर्चा प्रकरण में कवित्व के आठ स्त्रोत बताए है– स्वास्थ्य, प्रतिभा, अभ्यास, भक्ति, विद्वत्वकथा, बहुश्रुतता, स्मृतिदृढता और राग।

स्वास्थ्यं प्रतिभाभ्यासो भक्तिविद्वत्कथा बहुश्रुतता।
स्मृतिदाद्य निर्वेदश्च मातरोष्टौकवित्वस्य॥

इनमें से नैसर्गिकी प्रतिभा ही प्रमुख कारण है जिसके द्वारा कवि काव्यानन्द की सृष्टि करता है जिसे **'ब्रह्मनन्द सहोदर'** कहा जाता है। कवि दूसरों की पीड़ा का अनुभव करके ऐसा चित्र प्रस्तुत कर देता है जो पाठक को रसानुभूत करने में समर्थ हो जाता है। महाकवि शेवड़े को माँ दुर्गा की प्रेरणा प्राप्त हुई उन्होंने **'विन्ध्यवासिनीविजय'** महाकाव्य का सृजन किया जिससे पाठक एवं श्रोता को आनन्द मिलना उनका कल्याण होना सुनिश्चित है।

गुण-विवेचन

'काव्यशोभायाः कर्त्तारो धर्माः गुणाः।'

(काव्यलंकार सूत्रवृत्ति 3-1-1)

काव्यशोभा के उत्पादक धर्म ही गुण कहलाते है। वामन के अनुसार गुण का तात्पर्यः-

'काव्य शोभा कारण धर्म है' शब्द और अर्थ में स्थित धर्म काव्य शोभा को उत्पन्न करते है वे ही गुण कहलाते है। वे ओज, माधुर्य, प्रसाद आदि है।

ध्वन्यालोककार आनन्दवर्धन के अनुसार -

तमर्थमवलम्बन्ते येऽङ्गिनं ते गुणाः स्मृता।
अङ्गाश्रितास्वलङ्कारा मन्तव्याः कटकादिवत्॥

(ध्वन्यालोक 2/6)

काव्य में गुण रस की अचल स्थिति वाले धर्म है। जिन्हे काव्य के अंगीभूत रस के आश्रय में रहने वाले कहा जा सकता है जबकि अलंकार काव्य के अंगभूत शब्दों अर्थो में निवास करते है।

दोनों के आश्रय भेद प्रतिपादन से दोनो का अन्तर स्पष्ट हो जाता है और अलंकार की अपेक्षा गुण का महत्त्व स्वतः स्पष्ट हो जाता है।

अभिनवगुप्त ने आनन्दवर्धन की गुण विषयक इस अवधारणा को स्पष्ट

किया हैं आचार्य मम्मट ने भी काव्य प्रकाश के अष्टम उल्लास में गुण और अंलकार को परिभाषित करके भेद को स्पष्ट किया है। उन्होंने गुणों को **'शौर्यादिवत्'** और अलंकारों को **'हारादिवत्'** कहा है –

ये रसास्याङ्गिनो धर्माः शौर्यादयः इवात्मनः।
उत्कर्षहेतवस्ते स्युश्चलस्थितयो गुणाः।

(काव्यप्रकाश 8/66)

इस प्रकार मम्मट के अनुसार गुण की तीन विशेषताएँ है –

(1) गुण काव्यात्मभूत रस के धर्म है।

(2) वे रस के उत्कर्षक है एवं

(3) वे रस के साथ अनिवार्य रूप से रहते है।

गुण अलंकारो के अभाव में भी काव्य की शोभा को उत्पन्न करते है–

'ये खलु शब्दादयो धर्माः काव्यशोभा कुर्वन्ति, ते च,
ओजः प्रसादादयः न यमकोपमादयः, कैवल्येन्।
तेषाम् काव्यशोभाकरत्वात्। ओजः प्रसादादीनान्त,
केवलं नामास्ति काव्य शोभाकरत्वमिति॥

(का.सू.वृ. 3-1-2)

गुणो के भेद

आचार्य भरतमुनि ने अपने नाट्यशास्त्र में गुणों की संख्या 10 बताई है – श्लेष, प्रसाद, समता, समाधि, माधुर्य, ओज, पदसौकुमार्य, अर्थव्यक्ति, उदारता और कान्ति।

भामह ने गुणों का विवेचन करते हुए माधुर्य और प्रसाद गुण की जितनी प्रशंसा की है उतनी ओजगुण की नही। वामन 10 शब्द के गुण और 10 अर्थ के गुण मानते है तथा साथ ही यह भी बताया है कि वैदर्भी रीति मे सभी 10 गुण होते है, गौडी के लिए ओज और कान्ति तथा पाञ्चाली के लिये माधुर्य और प्रसाद गुण आवश्यक है। **(समग्रगुणा वैदर्भी, ओजः कान्तिमयी गौडीया, माधुर्य सौकुमार्यीपन्ना पाञ्चाली)**

दण्डी ने भी 10 गुण माने है। काव्यप्रकाशकार आचार्य मम्मट गुणों की संख्या वृद्धि में अधिक विश्वास नहीं करते उन्होनं 10 के स्थान पर केवल तीन ही गुण माने है –

'माधुर्यौजः प्रसादाख्यास्त्रयस्ते न पुनर्दश।'

(का.प्र.सू-10)

आचार्य विश्वनाथ ने 3 गुण माने है –

'माधुर्यमोजोऽथप्रसाद इति ते त्रिधा'।

(सा.द.,8-1)

माधुर्य गुण

लक्षण

आह्लदकत्वं माधुर्य शृङ्गारे द्रुतिकारणम्॥

(का.प्र., 8/68)

अर्थ

हृदय में द्रुति उत्पन्न करने वाला गुण माधुर्य गुण कहलाता है। यह आह्लाद स्वरूप चित्त को द्रवित करने वाला है, माधुर्य गुण मुख्य रूप से करूणरस, शान्तरस और शृंगार रस में होता है। इसमें 'ट' वर्ग को छोड़कर अन्य वर्णो के अक्षर तथा संयुक्ताक्षरों का अभाव होता है।

उदाहरण

अस्माकं शरणमसि त्वमार्तबन्धो दुष्टानामवतरसि प्रमायणाय।
आम्नायान् प्रलयपयोधिमध्यतस्त्वं प्रोद्धर्तुं विदधिथहीन मीन रूपम्॥

(5-11)

प्रस्तुत उदाहरण में बड़ा ही सजीव एवं आह्लाद कारक वर्णन किया गया है। शान्त रस की प्रधानता है तथा पदावली माधुर्य गुण व्यजंक वर्णो से मंडित है। अतः यह छन्द माधुर्य गुण का उदाहरण है।

उदाहरण

सरसीषु यत्र कमलानि बभुः कमलेषु दिव्य मकरन्दरसः।
मकरन्दसंस्त्रतिषु भृङ्गकुलं कलगुञ्जितानि खलुभृङ्गकुले॥

(7-5)

उपर्युक्त पद्य में स, क, ल, ञ, ड इत्यादि स्पर्श वर्णो की प्रधानता है तथा संयुक्ताक्षरों का अभाव है अतः माधुर्य गुण है।

ओजगुण

लक्षण

'दीप्यात्मविस्तृते र्हेतुरोजो वीर रस स्थिति।'

(का. प्र., 8/66)

दीप्तिरूप चित्त (आत्मा) के विस्तार का हेतु ही ओज गुण है, उसकी स्थिति वीर रस में होती है।

'ओजोचित्तस्य विस्ताररूपं दीप्तत्वमुच्यते।'

(सा. द., 8/4)

अर्थात् जिस गुण से हृदय में दीप्ति उत्पन्न हो, उसे ओजगुण कहते है।

यह गुण वीर रस, बीभत्स रस और रौद्ररस में अधिक होता है। दीप्ति का अर्थ- जोश या आवेग। इसे माधुर्य गुण का विपरीत गुण कहा जा सकता है। इसमें 'ट' वर्ग के व्यंजनो का अधिक प्रयोग होता है, द्वित्व वर्णो तथा संयुक्त अक्षरों का आधिक्य होता है। समासों की बहुलता होती है। आचार्य दण्डी ने ओज के विषय में लिखा है -

'ओजः समास भूयत्वम्'

(काव्यादर्श, 1/80)

उदाहरणम्

अत्युच्छ्रितत्वादतिदुर्गमत्वाद् वसुन्धराभारभरक्षमत्वात्।
असंशयं यः कुलपर्वतानामग्रेसरत्वं सततं बिभर्ति॥

(1/2)

उपयुक्त छन्द में ओज गुण व्यंजक वर्णो का प्रयोग हुआ है जिसमें संयुक्ताक्षरों का भी बाहुल्य है। यहाँ द्वितीय तथा चतुर्थ वर्ग के वर्णो का संयोग है। वीर रस की प्रधानता है। अतः रसानुकूलता की दृष्टि से ओज गुण का उदाहरण है।

भूभृतामधिपत्तेः कृतास्पदः पूर्वमेव हृदिकोपसम्भ्रमः।
नारदस्य वचनैरूपज्वलत् फूत्कृतैरिव तृणे हुताशनः॥

(2/47)

यहाँ पर द्वितीय, चतुर्थ वर्ग के वर्णो का प्रयोग हुआ है। वीर रस की प्रमुखता है, दीर्घ समास का प्रयोग हुआ है इसलिए यह ओज गुण का उदाहरण है।

प्रसाद गुण

लक्षण

शुष्केन्धनाग्िवत् स्वच्छजलवत्सहसैव यः।
व्याप्नोत्यन्यत्प्रसादोऽसौ सर्वत्र विहित स्थितः॥

(काव्यप्रकाश 8/80)

जिस गुण से युक्त काव्य रचना सहज भाव से हृदय में व्याप्त हो जाती है उसे प्रसाद गुण कहते है।

स्वच्छता और स्पष्टता प्रसाद गुण की विशेषता है। उसका अर्थबोध करने मे कुछ विशेष प्रयास नहीं करना पड़ता है। यही कारण है कि प्रसाद गुण की उपमा ऐसे धुले हुए वस्त्र से दी गई है जिसमे जल सरलता से व्याप्त हो जाता है।

मम्मट के अनुसार वह एक ऐसी सूखी लकड़ी के समान है जो तत्काल ही आग ग्रहण कर लेती है –

साहित्यदर्पण के अनुसार –

'चित्तं व्याप्नोति यः क्षिप्रं शुष्केन्धनमिवानलः।'

(सा.द., 8/7)

इस गुण की व्याप्ति सभी रसों मे मानी जाती है अतः सभी प्रकार की स्वच्छ और स्पष्ट रचनाओं को प्रसाद गुण कहा जाता है।

उदाहरण

अपूयवीथ्यामिह सञ्चरन्तो मिष्टान्नराशीन् परितो निरीक्ष्य।
न केवलं माणवका युवानो वृद्धा जनाश्चार्द्रमुखा भवन्ति॥

(6/24)

यहाँ पर नगरवासी युवाओं, वृद्धों आदि का चित्रण किया गया है। यहाँ पर

अर्थबोध स्पष्ट है अतः प्रसाद गुण हैं।

निवासभूमिर्वनदेवतानां तपस्विनामाश्रमसन्निवेशः।

सोपानपङ्क्तिस्त्रिदशालयस्य विन्ध्याभिधो राजति शैलराजः॥

(1/1)

उपर्युक्त पंक्तियों में विन्ध्याचल का चित्रण जिस ढंग से किया गया है, उससे अधिक स्पष्ट और स्वच्छ वर्णन क्या हो सकता है? यही कारण है कि यह श्लोक इस काव्यांश के प्रसाद गुण का श्रेष्ठ उदाहरण कहा जा सकता है।

प्रथम अध्याय

वसन्तत्र्यम्बक शेवड़े कृत 'विन्ध्यवासिनीविजयम्' और अभिराजराजेन्द्र मिश्र कृत 'जानकीजीवनम्' का तुलनात्मक अध्ययन

अभिराज डॉ. राजेन्द्र मिश्र जीवनवृत्त

जीवन-परिचयः

अभिराज राजेन्द्र मिश्र का जन्म उत्तरप्रदेश राज्य के जौनपुर जनपद में सई नदी (स्यन्दिका) के तटवर्ती ग्राम द्रोणीपुर में 2 जनवरी 1943 को हुआ। इनके पिता स्वर्गीय पं. दुर्गाप्रसाद मिश्र तथा माता श्रीमती अभिराजी देवी मिश्रा है। तीन भाईयों में यह मध्यम क्रम के है। बड़े भाई डॉ. देवेन्द्र मिश्र तथा छोटा भाई सुरेन्द्र मिश्र है। ढाई वर्ष की अल्पायु में ही पितृचरण पं. दुर्गाप्रसाद मिश्र की असामयिक मृत्यु हो जाने पर, एकमात्र जननी के वात्सल्य-पाथेय से पोषित कवि का शैशव पितामह पं. रामानन्द मिश्र की सगंति में व्यतीत हुआ, फलतः हाईस्कूल मे विज्ञान के छात्र होते हुए भी कवि का संस्कारी मन देववाणी की रसमाधुरी मे लीन हो गया।

प्रारम्भिक शिक्षा गाँव के स्निग्ध वातावरण में पूर्ण कर कवि अपने विद्वान् पितृव्य डॉ. आद्याप्रसाद मिश्र के संरक्षण में उच्च शिक्षा प्राप्त करने लगे। इलाहाबाद विश्वविद्यालय से संस्कृत विषय लेकर कवि ने सन् 1964 में एम. ए. परीक्षा उत्तीर्ण की तथा कलासंकाय में प्रथम स्थान प्राप्त किया। पितृव्य के

ही निर्देशन में **'अन्योक्ति साहित्य के उद्‌भव एवं विकास'** विषय पर शोध कार्य सम्पन्न कर सन् 1966 ई. में डी. फिल् उपाधि प्राप्त की और उसी वर्ष विभागीय प्रवक्ता पद पर नियुक्ति प्राप्त की। इनका विवाह सो. राजेश कुमारी से हुआ तथा पुत्र क्षेमेन्द्र मिश्र है।

पितृहीनता की मार्मिक अनुभूति तथा जनकोचित संरक्षण के अभाव में कवि की प्रसुप्त काव्य-प्रतिभा को शैशव में ही जागृत कर दिया और 12 वर्ष की अवस्था से ही वह गीत लिखने और गुनगुनाने लगे।

संस्कृत में लिखने का सर्वप्रथम प्रयास कवि ने सन् 1960 के ग्रीष्मावकाश मे किया। सर्वप्रथम उन्होने **'गीतरामचरितम्'** नामक लघु काव्य लिखा। महाकवि राजेन्द्र मिश्र को **'त्रिवेणी कवि'** के नाम से भी जाना जाता है। प्रयागवासी होने के कारण कवि को **'त्रिवेणी कवि'** कहना उचित ही है। थोड़े ही समय में डॉ. मिश्र ने पुष्कल मौलिक रचनाओं का सृजन किया इस दृष्टि से कवि का अध्यवसाय तथा प्रतिभा प्रकर्ष सचमुच प्रशंसनीय है। संस्कृत में कवि के महाकाव्य- **जानकीजीवनम्** तथा **वामनावतरणम्** है। इसके अतिरिक्त अनेक खण्डकाव्यों, नवगीतसंग्रह, एकाङ्किसंग्रह, कथा संग्रह इत्यादि का प्रणयन महाकवि के द्वारा किया गया है। इस प्रकार महाकवि मिश्र बहुमुखी प्रतिभा के धनी है।

(अभिराज राजेन्द्र मिश्र व्यक्तित्व एवं कृतित्व, पृ.- 3-4)

इनके द्वारा रचित महाकाव्य **'जानकीजीवनम्'** तथा मेरी शोध कृति **'विन्ध्यवासिनीविजयम्'** का तुलनात्मक अध्ययन करने का मेरे द्वारा प्रयास

किया जा रहा है। क्योंकि दोनो ही कृतियों में अत्यधिक समानता भी है एव विषमता भी है।

'जानकीजीवनम्' तथा **'विन्ध्यवासिनीविजयम्'** का तुलनात्मक अध्ययन' प्रस्तुत करने से पहले सर्वप्रथम जानकीजीवनम् का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया जा रहा है।

अभिराज डॉ. राजेन्द्रमिश्र प्रणीत 'जानकीजीवनम्' महाकाव्य में 21 सर्ग है और लगभग दो हजार छन्द है। यह रामकथा परम्परा का नवीनतम सोपान है और अर्वाचीन संस्कृत वाङ्मय की एक महान् उपब्धि है। इसकी कथावस्तु का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है -

'अवतार' नामक प्रथम सर्ग में राजा जनक द्वारा कृषि कर्म करते समय अयोनिजा सीता की प्राप्ति की कथा का विस्तृत काव्यमय वर्णन किया है। कवि पृथ्वी से प्रकट होने वाली विदेहनन्दिनी को संसार के समस्त शोकों का विनाशक मानते हैं -

'देवदत्तां सुतमिमां भर्त्सितलोकशोकम्।'

(जानकीजीवनम्-1-45)

'वैदेहीशिशुकेलि' नामक द्वितीय सर्ग में सीता के शैशवकाल की क्रीड़ाओं का बहुत ही मनोहारी एवं स्वाभाविक वर्णन है। सीता एक साधारण, नन्हीं, भोली-भाली बच्ची के रूप में वर्णित की गई है जो अपनी नन्हीं सखियों के साथ विविध क्रीड़ाए करते हुए सभी के मन को हरती हैं। झूठ-मूठ की चक्की

पीसती हुई सीता को कवि ने कैसे सुन्दर ढंग से चित्रित किया है –

क्वचिद् विनिर्माय मृदाधरहकं समं वयस्यभिरभीष्ट रञ्जिनी।
मृषैव मृत्पेषणकमलीलया कुतूहलं सा विदधेऽवरोधिणाम्॥

(जानकीजीवनम् 2-14)

'स्मराङ्कुर' नामक तृतीय सर्ग भी कवि की मौलिक कल्पना है। कवि ने सीता के माध्यम से नवयौवनवस्था मे पदार्पण करने वाली भारतीय युवती के मनोभावों का स्वाभाविक वर्णन किया है।

'राघवानुराग' संज्ञक चतुर्थ सर्ग में जनकसुता सीता के प्रति राम के हृदय मे उत्पन्न प्रेम का विशद वर्णन किया है। सच्चे प्रेम के पारखी कवि प्रेममय उद्गारों को काव्यबद्ध करने में सिद्धहस्त हैं।

'रघुराजसङ्गम' नामक पञ्चम सर्ग कवि की नवीन उद्भावनाओं का संग्रह है जिसमें उन्होंने मिथिलापुरी पहुँचाने वाले मार्गों के दोनो ओर निर्वासित जनपद वासियों के क्रियाकलापों का सुन्दर वर्णन किया हैं भास्कर सदृश तेजस्वी शिष्यों के बाहुबल की स्तुति, महामुनि विश्वामित्र, जनक के समक्ष इस प्रकार करते है कि जनक, राक्षसी शक्तियों के संहारक दोनों युवको के गुणों से प्रभावित हुए बिना नही रहे –

दनुजौ मखविघ्नकारकौ जननी चापि तयोर्नु ताडका।
निखिलाः पिशिताशनान्वयाः सकृदाभ्या यमसेवकीकृताः॥

(जानकीजीवनम् – 5-37)

'पूर्वराग' नामक षष्ठ सर्ग में राम-सीता के विवाह से पूर्व उनके पारस्परिक प्रेम का मनोहारी चित्रण हुआ है। गिरिजा मन्दिर में सखियों के साथ सीता रघुनन्दन राम को आह्लादित और उत्कण्ठित कर देती है जिससे राम सीता के समक्ष आ जाते है।

'स्वयंवर' नामक सप्तम सर्ग में रामभक्त लोगो के भाव, शिव धनुष तोड़ने की कठिन प्रतिज्ञा, रामानुरागी जनक का भय, विश्वामित्र का अटल विश्वास, सीता के मनोभाव, शम्भुचापभङ्ग, सर्वत्र प्रसन्नता का संचार, राम-सीता के विवाह हेतु दशरथ को आमन्त्रण भेजने आदि का सम्यक् समाहार किया गया है।

इस सर्ग में उत्तरप्रदेश के विवाह-समय के रीतिरिवाजों का काव्यमय चित्रण किया गया है। राम की सास सुनयना राम और लक्ष्मण की प्रदक्षिणा करती है -

घटेन शूर्पेण पटाञ्चलेन प्रदक्षिणी कृत्य वरन्तु राज्ञी।
वात्सल्यनिस्यन्दि विलोचनाभ्यां निपीय वेश्माभिमुखी बभूव॥

(जानकीजीनम्- 7/71)

'श्वसुरालय' नामक अष्टम सर्ग में सीता-राम के विवाह का वर्णन नूतन ढंग से किया गया है। सात फेरों का जैसा वर्णन **'जानकीजीवनम्'** में किया गया है वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। विविध उपदेशों से सीता को सान्त्वना देने वाले वत्सल पिता जनक अपनी पुत्री विरहव्यथा को छुपा नहीं पाते हैं। उनकी अविरल अश्रुधारा प्रवाहित हो जाती है -

स सान्त्वयन् गाढशुचं वचोभिस्सुतां नरेशो न च वेद किञ्चित्।
निरर्गलाश्रुप्रसरैस्तथापि प्रपार्द्रतामायतुरस्य गण्गै॥

(जानकीजीनम्- 8/74)

'वध्वाचार' नामक नवम सर्ग में बारात के पुनः अयोध्या पहुँचने पर समाज और कुल परम्परा के अनुकूल वधूओं के लिए किए गये मंगलकारी वध्वाचार का काव्यमय वर्णन किया गया है।

दसवें सर्ग का नाम **'वनवास'** है। वन जाने के लिए उद्यत राम, लक्ष्मण और सीता को देखकर न केवल अयोध्या की प्रजा अपितु पिंजरों के पशु-पक्षी भी करूण क्रन्दन करने लगते है।

रावण द्वारा सीता के अपहरण का कवित्वपूर्ण वर्णन **'रावणापहरण'** नामक एकादश सर्ग में किया गया है। राम-सीता एवं लक्ष्मण तीनों वन में प्रेमपूर्वक निवास करते हुए प्रासाद के सुखों को, आपसी सहयोग और प्रेम से विस्मृत करने का प्रयास करते है।

'अशोक वनाश्रम' अभिधान से अभिहित द्वादश सर्ग में रावण द्वारा अपहृत करके अशोकवाटिका में अवरूद्ध की हुई सीता का हृदयस्पर्शी चित्रण किया गया है। रावण के विलासविहारकाननरूपी पिञ्जरे में बन्द, राम के विरह में व्याकुल सीता की तुलना वहाँ शुकी से की गई है -

स्वविलासविहारकानने मणिहाम्येऽक्षतभोग सङ्कले।
स विदेहसुतां न्यवेशयत् निभृतं पञ्जरगां शुकोमिव॥

(जानकीजीवनम्- 12/5)

विरहव्याकुल राम का हनुमान से मिलन **'हनुमत्प्राप्ति'** संज्ञक 13वें सर्ग में किया गया है। पवनपुत्र हनुमान राम-सीता की व्यथा को दूर करने के लिए राम का नाम लेकर सागर लांघ कर सीता के पास पहुँच जाते है उन्हें देखकर सीता के हृदय की पीड़ा अविरल अश्रुधारा के रूप में प्रवाहित होती है।

'लंकाविजय' नामक चतुर्दश सर्ग में हनुमान द्वारा सीता समाचार राम तक पहुँचाने का काव्यात्मक विवरण है। वानर सेना के साथ राम-लक्ष्मण, सागर-सेतु का निर्माण करके, विभीषण की सहायता से रावण के आतंक का अन्त करके, लंका-युद्ध जीत जाते है।

नवीन-नवीन उद्भावनाओं के समुच्चय स्वरूप पञ्चदश सर्ग का नाम **'अग्निपरीक्षा'** रखा गया है। राम द्वारा, रावण के कारागार में बन्दी सीता को पत्नीरूप में अस्वीकारने से उनके स्वाभिमान को गहरी चोट पहुँचती है और वह अपना शरीर अग्नि को समर्पित करने को तत्पर हो जाती है। कवि हृदय द्रवित होकर राम तक की प्रताड़ना कर देते है। अन्त में अग्निपरीक्षा के बिना ही राम सीता को स्वीकार लेते है।

'राज्याभिषेक' नामक षोडशः सर्ग में राम, सीता एवं लक्ष्मण सभी पुष्पक विमान से अयोध्या लौटते है।

'जनापवाद' नामक 17वें सर्ग में **'रामराज्य'** का चित्रण किया गया है। इस सर्ग में धोबी-धोबन के कलह से उठा विवाद कवि ने 17वें एवं 18वें सर्ग **'अपवाद निर्णय'** में कवित्व युक्त मनोहारी भाषा में किया है। एक तुच्छ व्यक्ति

द्वारा उठाये गये विवाद को पूरी प्रजा नकारती है।

'लवकुशोदय' नामक 19वें सर्ग में सीता के यमज पुत्रों की उत्पत्ति का विस्तृत वृतान्त वर्णित है। इस सर्ग में कवि कल्पना की नवप्रसूति उस समय होती है जब वात्सल्य वशीभूत सीता राम से आज्ञा लेकर पुत्रों के आश्रम चली जाती है और राम पत्नी तथा पुत्रों से विरहित होकर राजभवन मे शोक व्यथित होते है –

प्राणप्रियां प्रियतमां ननु जीववल्ली सीतां विना विरहिणो निखिलास्त्रियायाः।
वत्साननेन्दु परिवीक्षणसिन्धु कल्पश्रीराघवस्य प्रणयोर्मिहता अभूवन्॥

(जानकीजीवनम्- 19/68)

'अश्वमेधयज्ञ' नामक 20वें सर्ग में रामराज्य का आदर्श रूप प्रस्तुत करके कवि इस समाज के प्रशासकों एवं प्रजा को निःस्वार्थ बनाने के साथ आतंकवाद, साम्प्रदायिकता, जातिवाद, अधर्मादि सामाजिक बुराईयों से मुक्त करना चाहते है। इसलिए आदर्श राज्य का चित्रण किया गया है।

श्रोताओं को मन्त्रमुग्ध करने वाले कोकिलकण्ठ उच्च कोटि के गायक कवि अभिराज ने सबसे बृहत् **'रामायणगान'** नामक इक्कीसवें सर्ग में लवकुश द्वारा गीत्यात्मक छन्दों द्वारा रामकथा का गान करवाया है।

वसन्तत्र्यम्बक शेवड़े कृत 'विन्ध्यवासिनीविजयम्' और राजेन्द्रमिश्र कृत 'जानकीजीवनम्' का तुलनात्मक अध्ययन

महाकवि वसन्तत्र्यम्बक शेवड़े एवं अभिराजराजेन्द्रमिश्र अर्वाचीन संस्कृत साहित्य के दो महत्वपूर्ण कवि है। यह दोनो कवि संस्कृत कविता के दो ध्रुव प्रतीत होते है। दोनो दीर्घायुष्य रेखा के दो पृथक् छोर है ऋषिकल्प शेवड़े 5 जुलाई 1999 को यशश्शेष हो गये परन्तु लोकप्रियता काव्य प्रौढि एवं वाङ्मय वैविध्य के शिखर पर प्रतिष्ठित प्रो. अभिराज राजेन्द्र मिश्र अभी जीवन के आठवें दशक मे हैं। महाकवि शेवड़े की जन्मभूमि महाराष्ट्र का मुम्बई नगर एवं कर्मभूमि त्रिपुरहर नगरी काशी रही है। राजेन्द्र मिश्र तीर्थराज प्रयाग के गौरव है उन्हे **'त्रिवेणी कवि'** के नाम से सम्बोधित किया जाता है जबकि शेवड़े जी को **'अभिनव कालिदास'** के नाम से भी जाना जाता है।

परन्तु इतनी सारी विभिन्नताओं के होते हुए भी दोनो महाकवियों में काव्य विषयक अद्भुत समानताएं है दोनो कवियो ने नारी प्रधान संस्कृत महाकाव्य की सर्जना की है। पण्डित वसन्त त्र्यम्बक शेवड़े ने जहाँ **'विन्ध्यवासिनीविजयम्'** की सृष्टि की है वही कविवर मिश्र ने **'जानकीजीवनम्'** महाकाव्य का प्रणयन किया है। यद्यपि **'विन्ध्यवासिनीविजयम्'** तथा **'जानकीजीवनम्'** के नारी चरित्र अमर्त्य एवं मर्त्य कोटिक है तथापि नारी की महिमा-गरिमा की प्रतिष्ठापना की दृष्टि से दोनों में अद्भुत साम्य है। यहाँ पर **'विन्ध्यवासिनीविजयम्'** एवं

'जानकीजीवनम्' महाकाव्य में समानता और विषमता का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया जा रहा है। इस तुलनात्मक अध्ययन को सफल बनाने के लिए श्रीमती बीनासिंह द्वारा प्रस्तुत किए गए तुलनात्मक अध्ययन का आश्रय लिया है। डॉ. बीनासिंह द्वारा राजेन्द्र मिश्रः व्यक्तित्व एवं कृतित्व नामक पुस्तक में इस विषय पर अत्यन्त सारगर्भित जानकारी प्रदान की गई है उसी के पृष्ठ संख्या 275-280 के आधार पर यह तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया जा रहा है-

'विन्ध्यवासिनीविजयम्' महाकाव्य और 'जानकीजीवनम्' महाकाव्य -

आधुनिक संस्कृत वाङ्मय के गौरव शेवड़े प्रणीत षोडशसर्गात्मक विन्ध्यवासिनीविजयम् महाकाव्य का प्रकाशन, चौखम्बा सुरभारती वाराणसी से हुआ है तथा राजेन्द्र मिश्र प्रणीत जानकीजीवनम् का प्रथम प्रकाशन वैजयन्त प्रकाशन इलाहाबाद से हुआ है।

'विन्ध्यवासिनीविजयम्' तथा **'जानकीजीवनम्'** महाकाव्यों का आधुनिक युगीन संस्कृत महाकाव्यों में प्रमुख स्थान है। कविवर शेवड़े **'अभिनव कालिदास'** की उपाधि से सम्मानित है तो वहीं राजेन्द्रमिश्र **'त्रिवेणीकवि'** के नाम से प्रसिद्ध है। महाकवि शेवड़े को **'विन्ध्यवासिनीविजयम्'** महाकाव्य के लिए उत्तरप्रदेश संस्कृत अकादमी, मध्यप्रदेश संस्कृत अकादमी तथा साहित्य अकादमी के उच्च स्तरीय पुरस्कारो से सम्मानित किया गया है। वहीं **'जानकीजीवनम्'** के रचयिता राजेन्द्रमिश्र को वाचस्पति एव कालिदास सम्मान प्राप्त है।

विन्ध्यवासिनीविजयम् महाकाव्य के साथ जानकीजीवनम् की तुलना इसलिए अत्यधिक समीचीन है क्योंकि दोनो नारी-प्रधान महाकाव्य हैं तथा दोनों का प्रतिपाद्य ऐसी नारी है जो आदि शक्ति का ही रूप है। **'सीता'** लक्ष्मी का अवतार मानी जाती हैं। लक्ष्मी विष्णु प्रिया हैं। सीता के पति राम परब्रह्म के अवतार है। वही देवी विन्ध्यवासिनी-आदि शक्ति, पराम्बा, भवानी, दुर्गा आदि नामों से अभिहित की गई है। दोनो नारियों के अवतार या जन्म के मूल में जनपीड़ा का विनाश है। दोनों महाकाव्यों के प्रणेताओं की समकालीन काव्य साधना हैं।

इन दोनों महाकाव्यों में आधुनिक जीवन की समस्याओं का भी निदर्शन एवं समाधान है। दुर्जनता पर सज्जनता की विजय, अत्याचार प्रशमन, राजा-प्रजा के सम्बन्ध, कूटनीति आदि को इस प्रसंग में उल्लखित किया जा सकता है।

जो तथ्य दोनों महाकाव्यों में सर्वाधिक साम्य रखता है वह दोनो महाकवियों की देवी के प्रति अगाध श्रद्धा, निष्ठा एवं अविचल विश्वासमयी भक्ति है, दोनो महाकाव्यों का उपजीव्य क्रमशः मार्कण्डेय पुराण के दुर्गासप्तशती अंश तथा वाल्मीकि रामायण से लिया गया है।

महाकवि शेवड़े का महाकाव्य षोडशसर्गात्मक है जबकि राजेन्द्र मिश्र प्रणीत महाकाव्य एकविंश सर्गात्मक है। **'विन्ध्यवासिनीविजयम्'** में कुल श्लोक संख्या 1039 है एवं **'जानकीजीवनम्'** में 1724 श्लोक है। इन दोनो ही महाकाव्यो में सर्गो का नामकरण किया गया है जो इस प्रकार है -

विन्ध्यवासिनीविजयम् सर्ग (16)

विन्ध्याचलं प्रति नारदा गमन

विन्ध्याचल नारद संवाद

मन्त्रविमर्श

विन्ध्याचलोन्त्रमन

इन्द्रादीनां वैकुण्ठ प्रयाण

इन्द्रादीनां वाराणासी यात्रा

अगस्त्य दर्शन

अगस्त्यस्य विन्ध्याचल संस्तम्भनम्

श्री जगन्मातुः विन्ध्याचलनिवास

शूरसेन जनपद वर्णन

वसुदेव देवकी बन्धन

वसुदेवस्य गर्ग मुनिद्वारा विन्ध्याचले सहस्त्रचण्डी विधान - अशोकवनाश्रम

श्री कृष्ण जन्म

वसुदेवेन कृष्णस्य गोकुल प्रापण

कंसवध

वसुदेवस्य विन्ध्याचले नवरात्र महोत्सव विधान

जानकीजीवनम् सर्ग (21)

अवतार

शिशुकेलि

स्मराङ्कुर

राघवानुराग

रघुराजसङ्गम

पूर्वराग

स्वयंवर

श्वसुरालय

वध्वाचार

वनवास

रावणापहरण

हनुमत्प्राप्ति

लङ्काविजय

अग्निपरीक्षा

राज्याभिषेक

जनापवाद

अपवाद निर्णय

लवकुशोदय

अश्वमेघयज्ञ

रामायणगान

(क) विन्ध्यवासिनी तथा सीता परमेश्वरी है -

जिस प्रकार **'विन्ध्यवासिनीविजयम्'** महाकाव्य में अनेकशः विन्ध्यवासिनी को पराम्बा या परमेश्वरी कहा गया है उसी प्रकार **'जानकीजीवनम्'** में अनेकशः सीता को दिव्या तथा परमेश्वरी का रूप प्रतिपादित किया गया है। कवि पृथ्वी से प्रकट होने वाली विदेहनन्दिनी को संसार के समस्त शोकों का विनाशक मानते है -

'देवदत्तां सुतामिमां भर्त्सितलोक शोकाम्।''

(जानकीजीवनम् 1/45)

राजा जनक द्वारा हल खींचते समय प्रकट **'प्रकाशधारा'** से सीता की उत्पत्ति हुई थी तथा वह अमन्दवेगवती प्रकाशधारा प्रलयकालीन बादलों की बिजली सी प्रतीत होती थी -

निरूद्दशोर्यो द्विगुणीकृतौजास्ततः प्रचण्डो भयबाहुशक्त्या।
चकर्ष सीरं भुवि यावदेव प्रकाशधारा प्रकटीबभूव॥
द्वग्प्वलानि द्युतिभिर्नयन्ती मलीमसन्धत्वममममन्दवेगा।
सभाजयन्ती कुतुकं समेषां युगान्तमेघोदरदामिनीव॥

(जानकीजीवनम् - 1/40-42)

'विन्ध्यवासिनीविजयम्' मे विन्ध्यवासिनी को पराम्बा आदिशक्ति के रूप में व्याख्यायित किया गया है। नवम सर्ग में महर्षि अगस्त्य हिमालय पर गौरी का दर्शन करते है वे कहते है- 'हे देवी! आपको सांख्यमतानुयायी पुराणी-प्रकृति,

वेदान्ती माया, शैव भगवान् पशुपति की पराशक्ति कहते है परन्तु मेरे लिए आप साक्षात् करूणा हैं –

सांख्या वदन्ति भवतीं प्रकृति पुराणीं
वेदान्तितः श्रुतिमतां कथयन्ति मायाम्।
शक्तिं परां पशु पतेर्निगमदन्ति शैवा।
अस्मत्कृते तनुमती करूणा त्वमेव॥

(विन्ध्यवासिनी–9/43)

महर्षि अगस्त्य नवम सर्ग में पार्वती की स्तुति प्रसंग में प्रयुक्त विशेषण पार्वती (विन्ध्यवासिनी का ही रूप) की दिव्यता एवं अलौकिकता का आख्यान करते है।

केचितः वदन्ति जगदम्ब सरस्वती त्वां
प्राहुः परे सहचरीं मधुकैटभारेः।
अन्ये गिरीशगृहिणीं निगमागम
ज्ञास्तुर्यामसीम महिमा मानमुदाहरन्ति॥

(विन्ध्यवासिनी 9/53)

हे! जगदम्बे कुछ लोग तुम्हें सरस्वती कहते हैं और कुछ लोग मधु–कैटभ के शत्रु अर्थात् भगवान् विष्णु की सहचरी कहते है। भगवान् विष्णु की सहचरी लक्ष्मी हैं। कुछ तो तुम्हे गिरीश की गृहिणी अर्थात् पार्वती कहते है।

'जानकीजीवनम्' में सीता में दिव्या एवं परमेश्वरी नामों से अभिहित

किया गया है। राजा जनक द्वार हल खीचते समय आकाशवाणी सुनी थी कि हे राजन! अक्षुण्ण दीप्ति वाली (इस कन्या) को अपने घर आयी हुई साक्षात् लक्ष्मी ही समझों सीता को अन्यत्र भी लक्ष्मी का अवतार बताया गया है।

श्रीश्चिरन्तनसखीकमलालख्या नारायणस्य नवलाम्बुधरैकधाम्नः।
त्रेतायुगे जनकवेश्मनि सैव जाता रामप्रिया दशमुखान्वयनाशनाय॥

(जानकीजीवनम्- 4/1)

अर्थात् नूतन जलधररूपी एकमात्र आभा वाले नारायण की **'कमलालया'** नामक चिरन्तन सहचरी जो लक्ष्मी हैं। त्रेतायुग में वहीं रावण के वंश का विनाश करने हेतु, रामप्रिया (सीता) के रूप में अवतरित हुई है।

चतुर्थ सर्ग के इकतालीसवें श्लोक में सीता को लावण्यसिन्धु के मन्मथ से उद्भुत लक्ष्मी स्वरूपा कहा गया है।

सीरध्वजो वितनुते निजकन्यकाया
लावण्यतोयनिधि मन्थन जात लक्ष्म्याः।
चंचत्स्वयं वरमहोत्सवसंविधानं
द्रग्भिर्निपीय यदहो भविता सुखन्ते॥

(जानकीजीवनम् 4/41)

'विन्ध्यवासिनीविजयम्' के 9वें सर्ग के तिरपनवें श्लोक में प्रयुक्त वाक्य **'सहचरी मधु कैटभारेः'** विचारणीय है क्योकि जानकीजीवनम् में भी सीता को लक्ष्मी का अवतार कहा गया है। मधु-कैटभ का विनाश करने के लिए जब विष्णु

उनसे वध करते है तो अन्त में महादेवी की अनुकम्पा से विष्णु इन दोनों का वध करते है।

इस तुलना के आधार पर निःसंकोच वहा जा सकता है कि विन्ध्यवासिनी और सीता दोनो एक ही तत्व के दो रूप है।

(ख) विन्ध्यवासिनी तथा सीता के आविर्भाव से जनपीड़ा समाप्त हुई -

इन दोनो ही कवियों के अवतरण के मूल में जनपीड़ा का विनाश अर्थात् जनहित की भावना है।

'विन्ध्यवासिनीविजयम्' में विन्ध्याचल के उन्नयन का भव्य एवं दिव्य चित्रण हुआ है। जब विन्ध्याचल आकाश में बढ़ने लगा तब चतुर्दिक त्राहि-त्राहि मच गयी। सूर्य और चन्द्रमा की गति रूक गयी। रात्रि-दिन का क्रम विरमित हो गया। प्रकृति विपरीत हो गयी। आकाश में पक्षियों का उड्डयन स्थगित हो गया, पवन की गति अवरूद्ध हो गयी, वह यथेष्ट विचरण में असमर्थ हो गया -

कुतुकं तदिदं दिहक्षवः स्थविरा जर्जरभुग्नविग्रहाः।
अवलम्ब्य करेण यष्टिकां स्खलदेवैकपदाः समापयुः॥
ग्रसितं हरितं तृणाङ्कुरं हिरणे विन्ध्यतटं समागते।
अवलोकयति स्म कौतुकादकलङ्कं शशिमण्डलं जनः॥

(विन्ध्यवासिनीविजयम् 4/28-33)

तब संसार एवं देवलोक की व्यथा शान्त करने के लिए महर्षि अगस्त्य

ने विन्ध्य को आदेश दिया। विन्ध्य ने महर्षि अगस्त्य से विनम्रता के स्वर में कहा कि यदि आप जगदीश्वरी के निवास की व्यवस्था मेरी तलहटी में कर दे तो मैं आपकी आज्ञा से विनत हो जाऊँगा महर्षि अगस्त्य ने वैसा ही किया और विन्ध्य के अवनमन से संसार की गति पूर्ववत् चलने लगी। अतः प्रस्तुत प्रकरण से स्पष्ट होता है कि विन्ध्यवासिनी के अवतार के मूल में जनपीड़ा का विनाश ही है।

प्रकारान्तर में यही तथ्य सीता के जन्म की मूल में भी है। **'जानकीजीवनम्'** के प्रथम सर्ग मे विदेह जनपद में भयावह आकर्षण का हृदय विदारक चित्र प्रस्तुत किया गया है। राजा जनक अपने नगर की ऐसी दशा देखकर व्यथित हो जाते है तब चिन्तामग्न जनक महर्षि शतानन्द के आश्रम में पहुँचते है।

विदेह जनपद का सम्पूर्ण वृतान्त सुनकर महर्षि शतानन्द ने राजा जनक से कहा कि सुवर्ण एवं मणिमाणिक्यादि रत्नों द्वारा हल का निर्माण कर जुआ थामने वाले वृषभ के रूप मे तुम्हीं हल खींचो। इस प्रकार धरती की जुताई करने पर अपार सुवृष्टि होगी।

हलं विनिर्माय सुवर्णरत्नैस्त्वयैव धुर्येण वृषेण नेयम्।
कृते त्वमेत्थं क्षितिकर्षककर्मव्यपां सुविष्टिर र्भविताऽप्रमेया॥

(जानकीजीवनम् 1/28)

राजा द्वारा हल खींचते समय हल का अग्रभाग जमीन में अटक गया। बलपूर्वक जैसे ही राजा ने हल खींचा वहा एक **'प्रकाशधारा'** प्रकट हुई जिससे कन्या सीता उद्भुत हुई।

इस घटना के कुछ समय पश्चात् आकाश में बादल मंडराने लगे तथा कुछ क्षणों में मेघवर्षा से पृथ्वी जलमग्न हो गई। तथा चारो तरफ अखण्ड आनन्द की प्राप्ति हुई।

इन उद्धरणों से स्पष्ट है कि दोनों देवियों के अवतरण के मूल में जनहित ही है।

(ग) दोनो महाकाव्यों में आश्रम संस्कृति की महत्ता प्रतिपादित की गई है -

'विन्ध्यवासिनीविजयम्' में महर्षि अगस्त्य का आश्रम सविस्तार उल्लखित है। सातवें सर्ग में अगस्त्य आश्रम का भव्य एवं दिव्य चित्रण प्रस्तुत किया गया है -

जलदो न वर्षति निरूङ्घ गतिः पवनो न वा जगति सञ्चरति।
न कृषीवलाः क्षिति सुरा वणिजः प्रभवन्ति कर्तुमिह कर्मनिजम्॥

(7/24)

अपहाय वैरमपि शाश्वतिकं विचरन्तमत्र पशुपक्षिगणम्।
अवलोक्य नाकपतिरन्वभवत्तपसः समृद्धि मथकुम्भजने॥

(विन्ध्यवासिनीविजयम्-7-2)

'जानकीजीवनम्' के प्रथम सर्ग में महर्षि शतानन्द के आश्रम का वर्णन किया गया है।

वस्तुतः प्राचीनकाल में जब राजा किंकर्तव्यविमूढ़ होता था तब वह आश्रमों में महर्षियों की शरण में जाता था। इन्द्र को संसार की व्यथा दूर कराने के लिए महर्षि अगस्त्य की शरण में जाना पड़ा था। राजा जनक को अकाल-पीडित जनता के कष्ट को दूर करने का उपाय जानने के लिए महर्षि शतानन्द के आश्रम में जाकर शरण लेनी पड़ी -

दुरन्तदुर्भिक्षनिदाघदाहो, दहत्यजस्त्रं जनतालतालीम्।
न भव्यमाराम इवावकेशी, विधातुभीशः प्रभवामि तस्याः॥

(जानकीजीवनम्-1/20)

इस प्रकार दोनो ही महाकाव्यों में हमारी संस्कृति एवं सभ्यता के आधारभूत तत्त्व आश्रम संस्कृति का निरूपण है।

(घ) दोनों महाकाव्यों में देववाणी का विधान -

भारतीय संस्कृति में देववाणी का विशेष महत्त्व है। किसी अति महत्वपूर्ण अवसर पर देववाणी हुआ करती थी। **'विन्ध्यवासिनीविजयम्'** के बारहवें सर्ग में वसुदेव द्वारा गर्ग मुनि के माध्यम से सहस्त्र चण्डी विधान का वर्णन आया है -

मया प्रेरितो देवकीगर्भमध्ये भवेदष्टमः स्पष्टमेवाम्बुजाक्षः।
हरेद् दुष्टनाशात् स कष्टं जनानां यथा ग्रीष्मजं प्रावृवेव्याम्बुवाहः॥

(विन्ध्यवासिनीविजयम् - 12/46)

सहस्त्र चण्डी विधान के पूर्ण होने पर गर्गाचार्य के मण्डप में करूणार्द्र देवी

भगवती प्रत्यक्ष हुई और गर्ग के मनोरथ को सिद्ध करती हुई बोली कि मेरी प्रेरणा से विष्णु देवकी के आठवें गर्भ से उत्पन्न होगें। वे दुष्टों का विनाश कर जनता के कष्टों को दूर करेंगे। जिस प्रकार से ग्रीष्मज कष्ट को वर्षाकालीन बादल नष्ट कर देते है।

जानकीजीवनम् में देववाणी का विधान है राजा जनक द्वारा हल चलाते समय हल का अग्रभाग पृथ्वी में अटक गया जिससे एक प्रकाशधारा प्रकट हुई जो एक कन्या के रूप में थी। इसी समय देववाणी (आकाशवाणी) हुई कि सीर ध्वज संसार के शोक को विनष्ट करने वाली इस देवदत्त कन्या को उठा लो –

अथाधि रूढे नृपतौ द्विभावं प्रकर्णि वाणी वियदंगणोत्था।
गृहाण सीरध्वज! देवदत्तां सुतामिमां भर्त्सित लोकशोकाम्॥

(जानकीजीवनम् – 1/45)

अत: स्पष्ट है कि दोनों महाकाव्यों में देववाणी का वर्णन हुआ है। विन्ध्यवासिनीविजयम् तथा जानकीजीवनम् के कथानक में इतना अधिक साम्य होने पर भी वैषम्य भी है। इन दोनों महाकाव्यों में काव्यशास्त्रीय पक्ष भी अत्यन्त विशिष्टता लिए हुए है। जिसके आधार पर इनके विषम पक्ष को यहाँ निरूपति किया जा रहा है।

'विन्ध्यवासिनीविजयम्' षोडश सर्गात्मक है तथा 1039 पद्य है जबकि **'जानकीजीवनम्'** एकविंश सर्गात्मक है तथा 1724 पद्य है। **'विन्ध्यवासिनी विजयम्'** में प्रधान प्रतिपाद्य रस **'भक्ति'** है तथा अन्य रसों में करूण, वीर,

अद्‌भुत, रौद्र, भयानक आदि का वर्णन बड़ा ही रोचक एवं हृदयस्पृहणीय किया है। **'विन्ध्यवासिनीविजयम्'** मे से भक्ति रस का एक उदाहरण दृष्टव्य है–

शैवास्त्वां शिव इति वैष्णवाश्च विष्णुं गवेशा गणपतिमर्यमेतिसौराः।
वैचित्र्यादभिमतसम्प्रदायभेदादेकं सहृहुविधमेव कल्पयन्ति॥

(विन्ध्यवासिनीविजयम् - 5/17)

जानकीजीवनम् में प्रधान्येन शान्त एवं करूणरस का प्रयोग हुआ है इसके अतिरिक्त श्रृंगार, हास्य, वीर, भयानक इत्यादि रसों का प्रयोग पग–पग पर दिखाई देता है। शान्तरस का एक उदाहरण दृष्टव्य है -

भवतु गच्छ मतं तव रोचते,
कुशवतौ वृणुतां स्थिरतां त्वया।
स्वयमहं भवतीमवलोकये,
गुरुकुले प्रथिते सह सौदरैः॥

(जानकीजीवनम्–16/56)

महाकवि शेवड़े का अंलकार विधान चमत्कारपूर्ण है उन्होने अपने काव्य में उपमा, रूपक, काव्यलिङ्ग विशेषोक्ति, विभावना इत्यादि अंलकारों का मनोहारी चित्रण किया है। प्रस्तुत है पूर्णोपमा पर एक श्लोक जो **'विन्ध्यवासिनीविजयम्'** के द्वितीय सर्ग से लिया गया है -

आगतं तमवलोक्य नारदं पूर्णचन्द्रमिव चारूशारदम्।
तोयराशिरिव विन्ध्यभूधरो हर्षवृद्धिवेलामादधे॥

(विन्ध्यवासिनीविजयम् - 2/1)

पर्वतराजविन्ध्य ने देवर्षि नारद को देखा। विन्ध्य को नारद शरत्कालीन सुन्दरतापूर्ण चन्द्रमा के समान दिखायी पड़ रहा है। इस पूर्णोपमा मे नारद के दैहिक-सौन्दर्य की पवित्रता, निष्कलुषता तथा मनोहारिता को बड़े ही सहज एवं प्रभावी ढंग से प्रस्तुत किया गया है।

जानकीजीवनम् महाकाव्य में रूपक, अनुप्रास, काव्यलिङ्ग, उपमा, विभावना, विशेषोक्ति, यमक, एकावली, उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों से सुसज्जित पद्य परिलक्षित होते है। एकावली का एक मनोज्ञ पद्य अवलोकनीय है।

न तद्गृहं यत्र विकीर्णगीतकं, न गीतकं व्यायतमूर्च्छनं न यत्।
न मूर्च्छनं यत्र रसाक्तवाचिकं, न वाचिकं यत्र सुधासहोदरम्॥

(जानकीजीवनम्-2/7)

'जानकीजीवनम्' में सर्वत्र उपमा अलंकार से विभूषित पद्य दिखाई देते है -

क्षणं स्थिताराघवदक्षिणांसे ततश्च वामे गुरुणोपदिष्टा।
रराज तन्वी श्रितमल्लिकाक्षा, निपानतल्पे वरहोत्तमेव॥

(जानकीजीवनम्-8/26)

'विन्ध्यवासिनीविजयम्' में प्राधान्येन उपजाति, वसन्ततिलका, शालिनी, मालिनी, वियोगिनी इत्यादि छन्दों का प्रयोग हुआ है। इस महाकाव्य की यह विशेषता है कि इसमें कहीं भी अनुष्टुप छन्द का प्रयोग नहीं हुआ है। उपजाति छन्द का एक उदाहरण यहाँ प्रस्तुत है -

निवासभूमिर्वनदेवतानां,

तपस्विनामाश्रमसन्निवेश।

सोपानपङ्क्ति स्त्रिदशालयस्य,

विन्ध्याभिधो राजति शैलराजः॥

(विन्ध्यवासिनीविजयम्–1/1)

'जानकीजीवनम्' में उपेन्द्रवज्रा, उपजाति, शार्दूलविक्रीडित, पृथ्वी, द्रुतविलम्बित आदि छन्दों का प्रयोग कवि ने किया है। कवि द्वारा स्वतः आविष्कृत स्यन्दिका एवं मैथिली जैसे सर्वथा नवीन छन्दों का प्रथम बार इस महाकाव्य में सफलतापूर्वक प्रयोग किया गया है। प्रस्तुत है जानकीजीवनम् मे से उपजाति का एक उदाहरण –

तवैव नाम्ना प्रथिताभिधानं,

गमिष्यतीयं भुवनेषु कन्या।

विदेहनन्दिन्यय जानकीति

श्रयेत संज्ञामिह मैथिलीति॥

(जानकीजीवनम्–1/48)

इन दोनों ही महाकाव्यों में माधुर्य, ओज एवं प्रसाद गुण का प्रयोग कविवरशेवडे एवं राजेन्द्र मिश्र ने अपनी अलौकिक प्रतिभा के बल पर उच्चकोटि से किया है। **'विन्ध्यवासिनीविजयम्'** की भाषा परिमार्जित, संस्कृतनिष्ठ एवं कालिदास, भारवि आदि की परम्परा का अनुसरण करती हुई नजर आती है। जबकि **'जानकीजीवनम्'** की भाषा सरल, सरस, संस्कृतनिष्ठ, आँचलिकता,

मैथिली एवं उत्तरप्रदेश की लोकरीतियों को प्रस्तुत करती हुई प्रतीत होती है।

'विन्ध्यवासिनीविजयम्' के श्लोकों का अनुवाद शेवडेजी द्वारा प्रस्तुत नहीं किया गया है किन्तु **'जानकीजीवनम्'** के श्लोकों का अनुवाद महाकवि राजेन्द्र मिश्र द्वारा किया गया है।

उपर्युक्त दोनों महाकाव्यों के तुलनात्मक अध्ययन से स्पष्ट है कि महाकवि शेवड़े तथा डॉ. राजेन्द्र मिश्र आधुनिक संस्कृत साहित्य के दो ध्रुव प्रतीत होते है। दोनों का काव्य साहित्य अद्वितीय एवं अतुलनीय है। फिर भी मेरे द्वारा किया गया यह प्रयास अवश्य सफल हो ऐसी मेरी कामना है।

द्वितीय अध्याय

आधुनिक नारीप्रधान महाकाव्यों में 'विन्ध्यवासिनीविजयम्' का स्थान

संस्कृत साहित्य की गौरवशाली परम्परा में महाकाव्यात्मक कृतियों का विशिष्ट स्थान रहा है। वाल्मीकि, व्यास, कालिदासादि महाकवियों की कीर्ति कौमुदी को दिगन्त व्यापिनी बनाने में उनके द्वारा विनिर्मित महाकाव्यों का ही विशेष हाथ है। वाल्मीकि का नाम लेते ही रामायण और रामायण का नाम लेते ही वाल्मीकि याद आ जाते हैं। कालपरिवर्तन के साथ महाकाव्य के स्वरूप एवं उसकी रचना के मानदण्डों में भी परिवर्तन आ गया, क्योंकि परिवर्तन ही सृष्टि का नियम हैं।

वाल्मीकि के महाकाव्य के नायक राम है और उन्हीं की गौरवगाथा का उसमें विशद् वर्णन है परन्तु रामायणकार ने सीता के चित्रण को भी महत्व प्रदान किया है और वे अपनी कृति में **'सीतायाः चरितं महत्'** भी कहते है। महाभारत में भी पुरूष पात्रों की यशोगाथा वर्णन के साथ ही नारियों के चरित्र का भी मार्मिक एवं प्रभावशाली चित्रण प्रस्तुत किया गया है। रघुवंश में भी पुरूष एवं स्त्री दोनों के चरित्र को यथेष्ट स्थान दिया गया है। श्री हर्ष के 'नैषधीयचरितम्' में दमयन्ती का वर्णन नल से किसी भी प्रकार कम नहीं है। परन्तु आधुनिक संस्कृत साहित्य में कुछ ऐसे महाकाव्यों की सर्जना हुई जिनमें नारी पात्रों को ही केन्द्र में रखा गया है। ऐसे महाकाव्यों को नारी प्रधान महाकाव्य कहा गया है।

इनमें पुरूष पात्रों का वर्णन गौण ही है। आज वैज्ञानिक युग का स्वतन्त्र संस्कृत रचनाकार जो कुछ लिख रहा है उसका विशद् अध्ययन और अनुशीलन संस्कृत साहित्य और राष्ट्र दोनों के लिए कल्याणकारी है। आधुनिक संस्कृत काव्य जगत् में नारी पात्र को नायकत्व प्रदान करने वाले अनेक महाकाव्य लिखे गये है जिनमें से कुछ महाकाव्यों का संक्षिप्त विवेचन यहां प्रस्तुत किया जा रहा है।

1. **सीताचरितम्।**
2. **उर्मिलीयम्।**
3. **यशोधरा महाकाव्यम्।**
4. **वेदैहीचरितम्।**
5. **गङ्गासागरीयम्।**
6. **जानकीजीवनम्।**
7. **अपराजितावधू महाकाव्यम्।**
8. **झाँसीश्वरीचरितम्।**
9. **इन्दिरागाँधी चरितम्।**
10. **इन्दिराजीवनम्।**

1. सीताचरितम् –

इस महाकाव्य के यशस्वी प्रणेता डॉ. रेवा प्रसाद द्विवेदी है। दशसर्गात्मक महाकाव्य में कुल 694 श्लोक है। सीताचरितम् राम कथा पर आधारित संस्कृत

का नारी प्रधान महाकाव्य है। सीताचरितम् में राम के राज्यारोहण से सीता के पातालप्रवेश तक का वृतान्त उपनिबद्ध है। इसकी सर्गानुसार कथावस्तु इस प्रकार है –

प्रथम सर्ग (राष्ट्रपति-निर्वाचनम्) वनवास व्रत पूर्ण कर राम सीता और लक्ष्मण के साथ साकेत मे आए सभी से स्नेहपूर्ण मिलन, रामसीतादि की माताओं द्वारा प्रंशसा, कैकयी की राम द्वारा प्रशंसा का वर्णन है।

विधातुमेतां जगतीमशल्यकां कृतं सशल्यं स्वमनो यतस्त्वया।
त्वमेव मातर्ननु दूरदर्शिनां धुरि स्थिता राजनये सुमेधसाम्॥

(1/34)

अर्थात् **'माता'** आपने संसार को निश्शल्य (निष्कण्टक) बनाने के लिए अपने हृदय को सशल्य बनाया अतः राजनीति के दूरदर्शी सुमधाओं में निश्चित ही आपका का प्रथम स्थान है। पुरप्रदक्षिणा के लिए शोभायात्रा का आयोजन, सर्वसम्मति से राम का राज्याभिषेक तक की घटनाओं का चित्रण प्रथम सर्ग में है।

द्वितीय सर्ग (जानकी-कौलीनम्)

इस सर्ग का प्रारम्भ रामराज्य की सुव्यवस्था की प्रंशसा से होता है–

सधर्मनीत्या विशदेन चेतसा प्रजास्तथाऽतोषयदीश्वरोत्तमः।
यथा यमेऽपि व्रजिता अभीततां यथा च कल्पेऽपि गता अयाचिताम्॥

तथा च सौराज्यसुखं भुवस्तले स भूमिपालः कृतवान, यथादिवः।
अमर्त्यभावात् स्खलिता दिवौकसश्चकांक्षुरेतन्त्रिजकर्म भूमिकाम्॥

(2/4-5)

गर्भवती सीता के साथ राम का विनोद, राम के पास आगत गुप्तचर द्वारा राम के प्रशासन की श्लाघा किन्तु सीता के प्रति जनता के संशयालु होने की सूचना, राम का मानसिक द्वन्द्व उनका जनता को शिक्षित न कर पाने का दुःख। सभी को रोते देखकर सीता परित्याग का निश्चय व्यक्त करने में राम की असर्मथता, सीता के स्वतः वनगमन के प्रस्ताव का उपक्रम, तक की कथा द्वितीय सर्ग में निबद्ध है।

तृतीय सर्ग (जानकी परित्याग)

तृतीय सर्ग में सीता गर्भवती होने पर भी अपने पति श्री राम के राज्य की सुख शान्ति हेतु और उनकी कुलकीर्ति-रक्षार्थ राजमहल को त्यागकर वन में जाने का निर्णय सुनाती है -

प्राणतोपि यशसि स्पृहा गुरुः सूर्यवशिषु हि या प्रशस्यते।
तां विभाण्य कलुषा स्नुषाऽद्य वो यात्रि दूरमनुमन्यतान्तमाम्॥

(3/25)

उनके इस निर्णय को सुनकर समस्त सभागृह शोकसागर में निमग्न हो जाता है और श्री राम अधीर हो उठते हैं। अन्त में यह निर्णय होता है कि महर्षि वाल्मीकि के आश्रम में सीता को भेज दिया जाए। श्री राम के इस आदेश के

पालन में लक्ष्मण अपनी असमर्थता प्रकट करते हैं, किन्तु सीता के समझाने पर वे विवश होकर उन्हें रथ पर बैठाकर चल देते हैं।

चतुर्थ सर्ग (साकेत-परित्यागः)

इस सर्ग में वन गमन से पूर्व लक्ष्मण अपनी पत्नी उर्मिला से सीता की भेंट कराते हैं। माण्डवी, श्रुतकीर्ति भी वहीं आ जाती हैं। सभी सीता को वन जाने से रोकती हैं किन्तु सीता अपनी बहनों को अयोध्या में ही रहने के लिए समझाती है।

पंचम सर्ग (कुमार प्रसवः)

लक्ष्मण सीता को वन में भागीरथी के तट पर छोड़कर लौट आते हैं। सीता गर्भवती हैं, वे अपनी दयनीय स्थिति पर विचार व्यक्त करते-करते समस्त धरती को माता मानकर कुछ आश्वस्त होती है। उसी समय सीता को प्रसव पीड़ा आरम्भ होती है। अन्तः प्रेरणा से महर्षि वाल्मीकि वहाँ पहुँचते हैं सद्यः जात दो शिशुओं के साथ सीता को देखकर उन्हें प्रसन्नता होती है और वे सादर सीता को आश्रम में ले आते है।

षष्ठ सर्ग (जानकीमुनिवृतिः)

षष्ठ सर्ग में सीता का वाल्मीकि आश्रम में निवास वर्णित है। सीता की लव-कुश के साथ आश्रमस्थ तपस्विनियों और वनस्पतियों से आत्मीयता, उनका उदार मातृत्व, कृषिविर्विधनी रूप और शिल्पकला-कौशल, पुत्रों के गुरु के रूप

में वाल्मीकि का सीता द्वारा चयन वर्णित है।

सप्तम सर्ग (विद्याधिगमः)

सीता द्वारा लव-कुश को अध्यापनार्थ वाल्मीकि के लिए समर्पण, वाल्मीकि की सहर्ष स्वीकृति, सन्ध्यावर्णन, वाल्मीकि में ऋषित्व, मुनित्व और कवित्व का एकत्र दर्शन कर सीता का हर्ष चित्रित है।

अष्टम सर्ग (कुमारायोधनम्)

इस सर्ग में महर्षि सीता के पुत्रों को रामायण का परायण कराते है। अयोध्या में श्री राम अश्वमेघयज्ञ का अयोजन करते हैं। यज्ञ के अश्व की रक्षा के प्रसंग में लक्ष्मण पुत्र चन्द्रकेतु से लव-कुश का युद्ध होता है इसी बीच श्री राम वहाँ आ जाते है। महर्षि वाल्मीकि उनका स्वागत करते हैं। चन्द्रकेतु और लव-कुश भी मिल जाते हैं और युद्ध बन्द हो जाता है।

नवमसर्ग (मातृप्रत्यभिज्ञानम्)

वाल्मीकि विशाल सभा का आयोजन करते हैं। सीता के पक्ष में मर्मस्पर्शी भाषण देते है। गुरु वशिष्ट भी वाल्मीकि का अनुमोदन करते हैं जिसके प्रभाव से सबके मन में सीता के प्रति श्रद्धा भाव अभिव्यक्त होता है। सभी सीता के दर्शन की अभिलाषा व्यक्त करते है। महर्षि के संकेत पर वनदेवियों द्वारा समाधि मग्न सीता दिखाई पड़ती है। जगदम्बा के समान प्रतीत होने वाली सीता को सभी प्रणाम करते हैं।

दशर्म सर्ग (समाधिमांगल्यम्)

साकेत निवासी सीता की सन्तति को देखना चाहते हैं। चन्द्रकेतु के साथ लव-कुश भी आ जाते है तब वाल्मीकि उन्हें उनके पिता श्री राम को समर्पित करते हैं। अयोध्यावासी सीता की जय जयकार करते हैं। साकेत चलने के लिए प्रार्थना करते हैं किन्तु सीता पुनः समाधिस्थ हो जाती हैं। कुछ दिनों के बाद सीता का प्राणान्त हो जाता है और उनका पार्थिव शरीर पृथ्वी माता को सौंप दिया जाता है -

तस्मिन् काले पति पित्रादेः सन्निध्यं सूरेराद्यस्याश्रमतुल्यामथ भूमिम्।
दृष्टवा, शिष्टं कृत्यमदृष्ट्वा स्वं चान्यत् स्थूलं देहं स्वस्यै मात्रे दिप्सत् सा॥

(10/65)

कवि ने सीता के चरित्र को राष्ट्रीय भावना से भरकर और श्लाघनीय बना दिया है। कवि भारतीय संस्कृति के प्रति आस्था जगाने का प्रयास करता है। सीता के उदाहरण द्वारा भारतीय नारी की राष्ट्रोपयोगी अद्‌भुत उदारता को उजागर किया गया है। नारियों के सतीत्व की रक्षा को गौरवाधायक माना गया है।

2. उर्मिलीयम्

'उर्मिलीयम्' महाकाव्य के रचयिता श्री नारायण शुक्ल हैं। यह काव्य रामानुज लक्ष्मण की पत्नी उर्मिला के सम्पूर्ण जीवन पर आधारित है। इसका कथानक सत्रह सर्गो में विभक्त है। स्व. मैथिलीशरण गुप्त के हिन्दी काव्य साकेत से कवि ने अवश्य ही प्रेरणा ग्रहण की है। कवि शुक्ल द्वारा **'उर्मिलीयम्**

महाकाव्य' में रामायण और पुराण के विभिन्न स्त्रोतो से प्राप्त उर्मिला के कथानक को अपनी प्रतिभा से आबद्ध करने का प्रयास किया गया है।

इस काव्य का शुभारम्भ जनकपुरी के वर्णन तथा उर्मिला के जन्म से हुआ है। तदनन्तर सीता का जन्म, राम और लक्ष्मण द्वारा विश्वामित्र-यज्ञ रक्षा, धनुर्भंग, सीता के विवाह प्रसंग में उर्मिला का विवाह लक्ष्मण के साथ, अयोध्यागमन (4 से 9 सर्ग तक) रामवनगमन से पुनः रावणादि के वध के बाद अयोध्यागमन (केवल दशम सर्ग में) लव-कुश, चन्द्रकेतु जन्म, अश्वमेघ यज्ञ रक्षा, चन्द्रकेतु विवाह, कारूराज्य पर विजय, चन्द्रकेतु के भाई अंगद द्वारा अंगदिया नगरी पर शासन इन्हीं घटनाओं का वर्णन किया गया है।

'उर्मिलीय महाकाव्य' की मूल कथा में कोई परिवर्तन नहीं दिखाई देता किन्तु वस्तुविन्यास में कवि ने स्वकीय कल्पना के आश्रय से उसे संवर्धित किया है। इस महाकाव्य में भारतीय संस्कृति के उच्चादर्शो की प्रतिष्ठा करने का प्रयास किया गया है। उर्मिला की विदाई के अवसर पर उसकी माँ कहती है -

परोक्ति-तैक्ष्ण्यं मृदुतां सहस्व वचः स्वकीयं मधुरं प्रयुक्षं।
क्षतस्तरू रोहति शस्त्रसंधेर्वचो हतं नो पुनरेति सन्धिम्॥

(6/15)

सामान्य जन-जीवन का चित्रण कवि ने बड़े ही सुन्दर ढंग से किया है -

कृषौ रताः कर्षकराः सभृत्या लुनन्ति शवपानिमृदं वृषन्ति।
चयन्ति घासान् मृदुगायनास्ते गदन्ति हास्यानिमिथः सुखानि॥

मेघाच्छन्ने नभसि पवनो रूढतीयः प्रवाति।
चुम्बत्याशां रविरपि भयात् क्षीणकान्तिं प्रतीचीम्॥

गावो वत्सा विकृतवदना वेपमानाः स्ववासं।
क्लिन्नाः पान्थाः झटिति शरणं याचमानाः प्रयान्ति॥

3. यशोधरा महाकाव्यम्

इस महाकाव्य के प्रणेता पं. ओगेटि परीक्षित शर्मा है। महात्मा गौतमबुद्ध की अभिनिष्क्रमण कथा का आश्रय लेकर अभी तक संस्कृत महाकाव्य रचना फलक में अवर्णित यशोधरा के चरित का वर्णन करके कवि ने संस्कृत साहित्य की श्रीवृद्धि की है। इसमें कुल 20 सर्ग है।

इस महाकाव्य में प्रभूत अन्यान्य वर्ण्य विषयों का समावेश करते हुए यशोधरा गौतम विवाह से गौतम के प्रत्यागमन तक वृतान्त उपनिबद्ध है। इसमें महाकाव्यलक्षणोचित वस्तुविन्यास, पात्र चित्रण, रस परिपाक, संवाद सूक्ति आदि की योजनाएँ की गई हैं। इस काव्य का प्रमुख पात्र (नायक) यशोधरा है। यह धीरोदात्त गुणों से मण्डित है। इस काव्य का अंगीरस करुण है। यद्यपि गौतम के निर्वेद भाव का भी चित्रण विशिष्ट रूप से हुआ है किन्तु चरित नायक यशोधरा का आश्रयीभूत रस करुण का अपेक्षाकृत व्यापक अभिव्यञ्जन हुआ है। कवि ने यशोधरा के मर्म को इस प्रकार प्रकट किया है –

तन्मधुमयागीत प्रथितं नूनं यद्गाढ़ कथयति विषाद भावम्।
करूणरस भरितं मधुरं गीतं स्वान्तं कुरूते विमलं सततम्॥

(स्फुट पद्य)

तथा –

कियेतवाश्चर्यमहो धरित्रयां स्त्रीणां मनोवृत्तिरगम्य एव।
पयोधीरक्षीरकृतः सुजीवाः क्षेणेत नेत्रांचल साश्रुपाता॥

(10/11)

इस काव्य में यशोधरा की वियोग व्यथा के चित्रण में गौतम के जीवित होने के कारण विप्रलम्भ की शंका नहीं करनी चाहिए क्योंकि यशोधरा को विश्वास नहीं है कि उसका पति लौट आएगा और भी एक तथ्य ध्यान देने योग्य है कि यशोधरा के विरह वर्णन में कामुकता पूर्ण रति की आकुलता न होकर उसकी शोकाकुलता ही अभिव्यक्त हुई है।

सर्वत्र करुण रस की सृष्टि ही यशोधरा महाकाव्य में दिखाई देती है किन्तु करुण की तीव्र अभिव्यञ्जना त्रयोदश और चतुर्दश सर्ग में हुई है –

उदाहरणार्थ –

हे द्वारभूमे! वद मां प्रिया ते कथं प्रभु गौतम चक्रवर्ती।
गतः स्वयं येन यथा निशीथे स्वप्न सदा प्राप्तवती न किंचित्॥

करुण के व्यापक परिपाक् में कवि को पूर्ण सफलता मिली है। यशोधरा को स्वभावतः करूणा की मूर्ति के रूप में प्रस्तुत किया गया है। इस

महाकाव्य में भारतीय संस्कृति के उत्तम आदर्शों की प्रतिष्ठापना हुई है। यशोधरा के चरित्र चित्रण पर आधारित यह महाकाव्य सार्थक है –

मधुरं सरसं रसात्मनां पदलालित्यमहो विनिर्मलम्।
तब वागमृतं निपीय तद् भुवि का नाम न रज्जते पुनः॥

(13/32)

4. वैदेही चरित

'वैदेहीचरित' महाकाव्य रामचन्द्र मिश्र द्वारा रचित है। इसमें कुल 10 सर्ग है। कवि मिश्र ने सामान्य कथा में कोई विशेष परिवर्तन नहीं किया है। उनका पक्षपात वैदेही के चरित को प्रस्तुत करने में है अतः उनसे सम्बद्ध ही राम कथा प्रसंग को लेते हैं। राम का चरित उनके सामने कुछ गुणीभूत होकर रह जाता है स्वयं कवि ने कहा है राम वृक्ष है और सीता लता, किन्तु सर्वत्र उसने लता पर ही दृष्टि डाली है। कथानक का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है –

महाकाव्य का प्रारम्भ मिथिला नगरी के वर्णन से होता है जहाँ वैदेही सीता पृथ्वी के गर्भ से प्रकट हुई। अनावृष्टि के कारण प्रजा–वर्ग के कष्ट से दुःखी जनक ने हल कर्षण करके यज्ञानुष्ठान की योजना बनायी इसी अवसर पर एक बालिका हिरण्य–पात्र में रखी हुई मिलती है। वह जनक के राजभवन में पलती है और उसका विख्यात नाम सीता या वैदेही होता है। सीता के शैशव के पश्चात् यौवन प्राप्त होने पर कवि ने उनके सौन्दर्य का वर्णन इस प्रकार किया –

अनञ्जनं खस्जनदत्तलज्जं जगज्जमाय भुकुटीततज्यम्।
तद्यौवनं किञ्चिदिवोज्जिहानं दृगञ्चलं चञ्चलयाञ्चकार॥

(2/46)

अर्थात् कुछ उठते हुए के यौवन ने अञ्जन से रहित, श्वजन पक्षी को लज्जित करने वाले भृकुटि तक खिचे हुए, उसके दृगञ्चल को चञ्चल बना दिया। जब सीता बड़ी होती है तब उसका स्वयंवर होता है और शिवधनु को प्रत्यंचा चढ़ाने वाले को वह अर्पित की जायेगी, ऐसी प्रतिज्ञा राजा जनक करते हैं। फलतः विश्वामित्र के साथ उत्सव देखने दशरथ पुत्र राम-लक्ष्मण आते हैं। तब राम धनुष भंग करने हेतु उठते हैं। सीता की शंकाकुल अन्तः स्थिति को संक्षेप में सुन्दर अभिव्यक्ति प्रदान करते हुए कवि कहते है। -

पुष्पैरिव रचिताङ्गी मध्ये वेदिवलम्ना,
सीता स्वसखीनिवहपरीता चिन्तामग्ना।
किमयं कोमलसकलावयवो धनुर्ग्रहीता,
विजयश्रीः कथमिवास्य भविता करमुपनीता॥

(3/31)

मानो, पुष्पों से रचित अंगो वाली, कृश मध्यभाग वाली सीता अपनी सखियों से घिरी इस बात के लिए चिन्ताकुल हैं कि कोमल अंगो वाले यह क्या धनुष को उठा लेंगे? (कैसे विजयश्री इनके हाथ लगेगी?)

राम धर्नुभंग करते हैं और सीता का उनके साथ विवाह होता हैं। अयोध्या में सीता वधू रूप में आती है। नवविवाहित सीता का चित्रण करते हुए कवि ने

कहा है –

उद्यान भूमाविव भर्तृगेहे नवेव वल्ली जलदागमेन।
सिक्तेव सस्नेहमवेक्ष्यमाणा मम्लौ न सीता निजवल्लभेन॥

(5/10)

उद्यानभूमि सरीखे पति–गृह में, बरसात में नयी लता की भांति सिक्त सी सीता अपने पति द्वारा देखी जा रही होकर म्लान नहीं हुई।

जब दशरथ ने राम को युवराज बनाना चाहा तो कैकयी ने उसका विरोध किया, फलतः राम का वनवास होता है और सीता तथा लक्ष्मण उनके साथ आते हैं। सीता का रावण द्वारा अपहरण होता है। सुग्रीव की सेना की सहायता से राम समुद्र पार कर लंका जाते है और रावण का वध करके सीता के पास अशोक वाटिका में जाते हैं और सीता को रावण के मारे जाने की सूचना देते हैं।

जब वह राम के चरणों में लौटने लगती हैं तब उसे राम उठा लेते हैं और जब उनका चिबुक पकड़ने के लिए उद्यत होते है तब वह उनसे अलग हट कर कहती हैं कि यद्यपि वह उनके (राम के) अङ्गसंस्पर्श से पवित्र हो चुकी हैं तथापि लङ्का में निवास के कारण कलङ्कित हैं अतः वह वह्नि में प्रवेश करके अपनी परीक्षा दे, यह उनकी प्रार्थना है। तब सीता प्रज्वलित अग्नि में प्रवेश करके और भी निर्मल कान्ति होकर निकल आती हैं।

राम सपरिजन पुष्पक पर आरूढ होकर अयोध्या आ जाते हैं। राम का राज्याभिषेक होता है। राजा जनक अयोध्या आते हैं उनके आगमन से एक भिन्न

पारिवारिक वातावरण बनता है। जनक मिथिला लौट जाते हैं। लोकापवाद के भय से राम गर्भिणी सीता को जंगल में छोड़ आने का आदेश लक्ष्मण को देते हैं। दूसरी बार पति द्वारा वनवास दी जाने पर भी सीता मन में कातर नहीं होती –

वीरात्मजा वीरवरस्य जाया वीरस्नुषा स्वेन हृदाचवीरा।
वीरे सुते भाविनि बद्धभावा सा कातरत्वं न मनस्ययासीत्॥

(8/43)

वीरकन्या, वीरश्रेष्ठ की पत्नी, वीर की पुत्रवधू तथा स्वयं हृदय से वीर और उत्पन्न होने वाले वीर पुत्र की भावना वाली वह सीता कातर नहीं हुई।

वाल्मीकि आश्रम में सीता के दो पुत्र लव और कुश उत्पन्न होते हैं। अश्वमेघ यज्ञ के प्रसंग में वाल्मीकि के दोनों शिष्य राम को रामायण गाकर सुनाते हैं। राम पुनः सीता से मिलने के लिए आश्रम में आते हैं। इसके पूर्व ही वह माता पृथ्वी से अपने को ले लेने के लिए प्रार्थना करती हैं और पृथ्वी उन्हें अपने गर्भ में समाहित कर लेती है। कवि इस पद्य से रचना की समाप्ति करता है –

व्यथाकथा मूर्तिमती पतिप्राणा शुचिव्रता।
धरय जनिता सीता तस्यामेव व्यलीयत्॥

(10/44)

अर्थात् मूर्तिमती व्यथा-कथा, पति रूप प्राण वाली, पवित्र व्रत वाली सीता पृथ्वी द्वारा उत्पन्न की गयी और उसी में विलीन हो गयी।

सामान्यतः परम्परागत भूमि पर प्रतिष्ठित होने पर भी यह रचना मन में आकर्षण उत्पन्न करती है।

5. 'गङ्गासागरीयम्' महाकाव्य

'गंगा सागरीयम्' संस्कृत का एक रूपात्मक महाकाव्य है। इस महाकाव्य की कथावस्तु नौ सर्गो में विभक्त है। इसमें कुल श्लोक संख्या 479 है। गंगा 'गंगा सागरीयम्' की सबसे महत्वपूर्ण पात्र सृष्टि है। यह काव्य की नायक है। शास्त्रीय दृष्टि से यह परकीया (कन्या) है। वर्ण्य विषयानुसार सर्गो का नामकरण किया गया है। इसका संक्षिप्त कथानक इस प्रकार है –

'राज्यवर्णनम्' नामक प्रथम सर्ग में महाकाव्य की भूमिका मात्र है इसमें राजा हिमवान् के राज्य का वर्णन है। यहाँ से काव्य कथावस्तु का प्रारम्भ इसलिए नहीं माना जा सकता क्योंकि सर्वथा समृद्ध हिमवान के राज्य में रानी अपनी पुत्री गंगा के वियोग में अजस्त्र रोती रहती है। रानी की अश्रुधारा ही साम्प्रतिक गंगा नदी है, यह स्थिति गंगा के स्वपतिगृह प्रस्थित हो जाने के बाद की है। गंगा का पतिगृह गमन ही काव्य की विषयवस्तु है।

द्वितीय सर्ग (कथारम्भः) सन्तानभाव से स्वपत्नी को दुःखी देखकर हिमवान् का आशुतोष शंकर के पास प्रस्थान मार्ग से शुभशकुनों का वर्णन, कैलाशपुरी का मनोहारी वर्णन; समाधिस्थ शंकर का राजा द्वारा दर्शन, शिव की अनन्तशक्ति का वर्णन और राजा द्वारा उनकी स्तुति और अपने समीहित (सन्तान) की याचना का वर्णन है।

तृतीय सर्ग (वरप्रदानम्) राजा हिमवान की प्रार्थना से प्रसन्न होकर कहते हैं कि भाग्य में पुत्र सुख नहीं लिखा है। इस पर राजा दुःखी होते हैं। पुनः

राजा के दीनार्त निवेदन पर शंकर प्रसन्न होकर उन्हें श्रेष्ठ कन्या प्राप्ति का वरदान देते हैं किन्तु उसमें भी यह शर्त लगा देते हैं कि वह शीघ्र ही उन्हें छोड़कर चली जायेगी। शिव ने अपनी जटाओं के जल को कलश में डालकर हिमवान् को उनकी पत्नी को पिलाने के लिए दिया।

चतुर्थ सर्ग (गंगाजन्म) प्रभात का मनोरम वर्णन, वेदमंत्रोच्चार के साथ राजा द्वारा रानी को शिव द्वारा प्राप्त जल पिलाने का वर्णन, गर्भवती होने पर रानी के स्वभाव में विलक्षण परिवर्तन, तथा गंगा की उत्पत्ति का वर्णन है।

पंचम सर्ग (बाललीला) इस सर्ग में गंगा को सामान्य बालिका न बताकर देवांशभूता बताया गया है –

सुता राजकीये गृहे या प्रजाता न सामान्यवत् सा तु देवांशभूता।
यथा कल्मषाणां विनाशाय पूर्णा महाशक्तिरेवावतीर्णा जगत्याम्॥

(5/1)

गंगा के शैशव का वर्णन, उनकी संचरण शीला वृत्ति, पूर्वगमन की विशेष इच्छा, ऋतुओं में वर्षा के प्रति विशेष प्रेम तथा गंगा की बाल लीला से हिमवान् की प्रसन्नता, उनके अवश्यम्भावी गमन की व्यग्रता व्यक्त की गई है। हिमवान् पुत्री–विवाह के लिए योग्य वर के अन्वेषण हेतु दूतादि प्रेषण द्वारा प्रयास का वर्णन किया गया है।

षष्ठ सर्ग (दूतानुबन्धः) इस सर्ग में बंगोदधि नामक देश के राजा वरुण पुत्र सागर गंगा के गुणों को सुनकर उनके प्रति अतिशय अनुरक्त हो उठता है।

किन्तु नियति का विधान उन्हें रोक लेता है –

उदधिगतविशेषैरूर्मिसम्भारतुल्यो स निजविपुलसैन्यैर्भूय उद्विग्रचितः।
स्वपदचरमसीमां व्याकुलो सावदेति स्वरनियति विधानं बाधते तत्र तावत्॥

(6/14)

ऐसी स्थिति में सागर मेघ को दूत के रूप में प्रेषित करता है, मेघ एकान्त पाकर सागर का सन्देश गंगा को सुनाता है गंगा सागर के ही स्वतः आने का प्रस्ताव रखती है किन्तु दक्ष मेघ अन्ततः गंगा को ही सागर के पास आने की स्वीकृति लेने में सफल हो जाता है।

सप्तम सर्ग (उद्योग प्रकरणम्) सागर से मिलने को आतुर गंगा स्वतः सागर के पास जाने के लिए उद्यत हो जाती है। हिमवान् गंगा को रोकने का प्रयास करते हैं। स्त्रियों के स्वातन्त्र्य का समर्थन तथा वर्तमान युग में अनपेक्षित लोकाचर के प्रति गंगा कहती है –

अभीष्टं स्वातन्त्र्यं क्षयति महिलानामिह बलाद्,
विवाहे वा तासां ननु भवति यावद् विवशता।
निबन्धैरोहग्भिः कियदवधि रोध्या विधिगतिः,
विधा एतास्त्याज्या अकथयत् गंगा क्षितिपतिम्॥

(7/14)

अष्टम सर्ग (प्रस्थानम्) गंगा पिता से आशीर्वाद और आदेश प्राप्त कर अपनी माता से स्वीकृति लेने पहुँचती है। गंगा अपने उत्कट तर्कों से माँ की स्वीकृति प्राप्त कर लेती है।

नवम सर्ग (सागरमिलनम्) – प्रयाग में गंगा की सखी यमुना भी गंगा के रोकने पर भी उसके साथ चल देती है। कपिल मुनि के आश्रम में पहुँकर वहा कुछ समय के लिए रुक गई। मुनिराज कपिल गंगा के आचरण से बड़े प्रसन्न हुए। वे अपने आत्मयोग से गंगा का मन्तव्य जान गए और उन्होंने सागर को गंगा के विवाह के लिए स्वतः अपने आश्रम में बुलाया।

सागर कपिल का आदेश पाकर ऐरावत, उच्चैश्रवा, कामधेनु, अमृत, पारिजात, लक्ष्मी आदि के साथ आया। कपिल मुनि गंगा और सागर का विवाह सम्पन्न कराते हैं। उस समय गंगा की मनः कामना पूरी हो जाती है। वह अपनी यात्रा सफल मानती है –

तत्रागतं तं मुनिना प्रणीतं सम्पूर्यमाणं स्वमनोऽभिलाषम्।
हर्षातिरेकात् हिमवत् सुता सा संवीक्ष्य यात्रां सफलं नु मेने॥

(9/42)

6. जानकीजीवनम्

अभिराज डॉ. राजेन्द्र मिश्र प्रणीत **'जानकीजीवनम्'** महाकाव्य में एकविंशसर्गात्मक लगभग दो हजार छन्द हैं। यह रामकथा परम्परा का नवीनतम सोपान है और अर्वाचीन संस्कृत वाङ्मय की एक महान उपलब्धि है।

जानकीजीवनम् का आरम्भ मिथिला के घोर अनावर्षण (अकाल) से किया जाता है। गुरू शतानन्द की मन्त्रणानुसार राजर्षि जनक स्वयं हल चलाकर इन्द्र महोत्सव करते हैं तभी उन्हें कुम्भ स्थित एक दिव्य कन्या प्राप्त होती है

सीता, जो पिता जनक की पुत्री होने के कारण जानकी अभिधान से प्रख्यापित होती है।

द्वितीय सर्ग में सीता के शैशव का वर्णन किया गया है। संस्कृत में इतना विस्तृत एवं सूक्ष्म निरूपण अत्यन्त दुर्लभ है। झूठ-मूठ की चक्की पीसते हुए नन्हीं सीता को कवि ने कैसे सुन्दर ढंग से चित्रित किया है -

क्वचिद् विनिर्माय मृदाघरहकं समं वयस्याभिरभीष्टरञ्जिनी।
मृषैव मृत्पेषणकम्रलीलया कुतूहलं सा विदधेऽवरोधिणाम्॥

(जानकी. 2-14)

इस काव्य में सीता निर्वासन प्रसंग का परित्याग किया गया है। कवि ने इस प्रंसग को मर्यादा पुरूषोत्तम राम के उदात्त चरित्र के प्रतिकूल अतः अस्वाभाविक अनुचित एवं अग्राह्य माना है। इस महाकाव्य में कवि ने अपने युग के जीवन को आत्मसात् करके उसके माध्यम से ही अतीत का चित्रण किया है। सीता के चरित्र को इस काव्य में सम्पूर्णता से उजागर किया गया है। इसमें नारी के स्वतन्त्र अस्तित्व की पहचान कराने वाले प्रसंग भी वर्णित हैं। नारी के स्वाभिमान की इसमें रक्षा हुई है। सीता वीर्यशुल्का है शिवधनुष भंग करने वाले से ही उनका विवाह निश्चित है। अपहृत सीता रावण की भर्त्सना करती है और राम के प्रति अनन्यता और एक निष्ठता प्रकट करती है।

रावण विजय के पश्चात् पुनर्मिलन के प्रंसग में रजक द्वारा किये तिरस्कार का सीता प्रतिवाद करती है। इस प्रंसग में कवि ने नारी स्वातन्त्र्य की पोषक

नवयुगीन दृष्टि को अपनाया है और नारी सीता को निरीह दीन-हीन और अबला नहीं बनने दिया है नारी के गौरव की रक्षा का प्रयत्न किया है।

अयोध्या में सीता के प्रति जनापवाद को कवि ने नया मोड़ दिया है तथा सीता निर्वासन के प्रसंग को भी नवीन रूप दिया है। सीताविषयक प्रवाद का निराकरण हो जाता है और पुत्रों का जन्म अयोध्या में ही होता है। इस काव्य में सामाजिक औचित्य के आधार पर रामकथा के प्रज्वलित स्वरूप में परिवर्तन किया गया है और नारी अस्मिता की पहचान कराने का प्रयास किया गया है। इस काव्य का प्रमुख रस शान्त है, किन्तु प्रसंगानुसार अन्य रसों का भी चित्रण हुआ है। कवि ने इस कृति को दैवी कृपा का फल माना है।

7. 'अपराजितावधू' महाकाव्य

'अपराजितावधूमहाकाव्यम्' के रचयिता डॉ. पूर्णचन्द्र शास्त्री है। इस महाकाव्य में कुल दश सर्ग है तथा 600 श्लोक है।

इस महाकाव्य की नायिका का नाम प्रभा है। जो छतीसगढ़ के एक कृषक परिवार की वधू है। कथानक का कुछ अंश ऐसा है जिसमें नायिका अपने मुख से अपनी दशा का वर्णन करती है। किन्तु अधिकांश तो कवि द्वारा निरूपित है। पुरूष प्रधान समाज में नारी जीवन की दुरावस्था की करूण कथा और उसके संघर्ष की गौरवगाथा का मार्मिक चित्रण हुआ है।

प्रथम सर्ग में प्रभा के विवाह तथा उसके दो पुत्रों के जन्म का वर्णन किया

गया है, दुर्भाग्यवश प्रभा का पति अन्य नायिका पर आसक्त हो जाता है। प्रभा घर छोड़कर अन्यत्र चली जाती है भाटापारा (मध्यप्रान्त) में **'मातृकल्याण केन्द्र'** नामक संस्था का गठन करती है तथा नारी शिक्षा, स्वास्थ्य सम्बन्धी कार्य करती है –

सैषा शिक्षास्वास्थ्यसेवादिदोषान् गेहे गेहे द्वन्द्वमस्नेहभावम्।
दृष्टवा पृष्टवा सर्वलोकस्य पीड़ा दूरीकर्तु जीवन स्वं जुहाव॥

(1/66)

द्वितीय सर्ग में प्रभा अपने भाग्य के साथ समझौता करके कृषि कार्य करने लगती है। समिति के गठन से नायिका की प्रशंसा सर्वत्र फैल जाती है। इस सर्ग में स्त्री–पुरूष असमानताओं का वर्णन विलक्षण ढंग से किया गया है –

यदि भवेद समर्थतरः वतिस्वदपि सा भवतीह सुसेविका।
हृदयशोषिविडम्बनयावृतं ननु पतिव्रतमेव परम्परा॥

(2/28)

तृतीय सर्ग में भीषण बाढ़ से विपन्न लोगो की विपत्ति को दर्शाया गया है। भयावह बाढ़ दृश्य को देखकर सभी अत्यन्त दुःखी होते है। ऐसे समय प्रभा समिति की स्त्रियों को बाढ़ पीड़ित लोगों की सहायता करने के लिए प्रोत्साहित करती है।

चतुर्थ सर्ग में बाढ़ की स्थिति सामान्य होने पर समिति की स्त्रियों का स्व–स्व गृह प्रत्यागमन तथा घर में उनके द्वारा किये गये साहसिक कार्यो की सभी

प्रशंसा करते है। महिलाओं द्वारा आपस में वार्तालाप करते समय प्रभा को पति की खोज के लिए मशविरा दिया जाता है।

पंचम सर्ग में प्रभा अपने ससुराल पहुँचती है। पौत्र एवं कुलवधू को आयी देखकर श्वसुर एवं सास उनका अभिनन्दन करते है। प्रभा की सास अपने पुत्र को वापस लाने के विषय में उससे बात करती हैं। इसके बाद प्रभा अपने पति को प्रयाग से लेकर आने का निश्चय करती है।

षष्ठ सर्ग में खजुराहों, मय्यर, चित्रकूट जैसे ऐतिहासिक स्थलों का वर्णन किया गया है। प्रभा का प्रयाग में प्रवेश एवं आदिकाल से ही पापों को नष्ट करने वाली गंगा का वर्णन किया है।

सप्तम सर्ग का प्रारम्भ प्रयाग नगरी से होता है वहाँ के टेड़े-मेढ़े रास्तों, प्रातः कालीन भक्तिमय वातावरण का चित्रण किया गया है -

मार्गस्थितै स्तुङगविभूति वासै,
र्नदीतटस्थै पुलिनैस्तथाऽविलैः।
मीराप्रियं गीतमनुश्रयन्त
आच्छादितां वीथिमिमे प्रपन्नाः॥

(7/3)

अष्टम सर्ग

प्रभा द्वारा पथिक से अपने पतिगृह के बारे में पूछना तथा पति के घर जाने का वर्णन है। प्रभा का पति अपने अपराध की उससे क्षमा याचना करता हैं। प्रभा

अतिनम्रता पूर्वक सुधाकर से सपत्नी के साथ अपने घर जाने के लिए कहती है।

नवम सर्ग

इस सर्ग में नायिका द्वारा आत्मनिन्दा का भय, बीते समय का स्मरण एवं विरह वेदना का विशद् वर्णन किया गया है।

दशम सर्ग

इस सर्ग में प्रभा पति के घर का पुत्र के साथ परित्याग कर देती है तथा मदरटेरेसा आश्रम में जाने का निश्चय करती है। प्रभा आश्रम में धर्मपरिवर्तन स्वीकार नहीं करती तथा भाटापारा वापस आ जाती है। भाटापारा के पास ही प्रभा **'मानव आश्रम आरोग्य केन्द्र'** का निर्माण करती है, इस सर्ग में प्रभा द्वारा विभिन्न कार्यो को सिखाने का अनुष्ठान करने आदि का वर्णन किया गया है।

8. झाँसीश्वरीचरितम्

इस महाकाव्य में 22 सर्ग है तथा 1477 श्लोक है। इसके रचयिता सुबोध चन्द्र पन्त है। इसमें झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई के जीवन चरित्र का मर्मस्पर्शी चित्रण किया गया है। इसके द्वारा पाठकों में देशभक्ति की भावना का संचार किया गया है। कवि ने रानी लक्ष्मीबाई को भगवती दुर्गा का अवतार कहा है।

काव्यारम्भ दुर्गा की स्तुति से हुआ है लक्ष्मीबाई सामान्य स्त्री नहीं है, उसे कवि ने समस्त शक्तियों का पुंज माना है।

ज्योतीषि सम्भूय समानितानि केन्द्रे महाशक्ति युतान्यभूवन्,
देशो यथाऽयं जडता रतोभाद् दीपो धृतस्नेह इव प्रशाम्यन्।
तान्येव लक्ष्मीरिति जन्मलेभे लक्ष्म्याश्च चण्ड्याश्च विमिश्रितं या,
युद्धे मुनि प्राणवसूडुपाख्य ईशाब्द ऐते प्रसिता बभूव॥

(1/24, 26)

देश की दुर्दशा से खिन्न मोरोपन्त ने दुर्गा की आराधना की और दुर्गा ने उन्हें वीरांगना पुत्री (लक्ष्मीबाई) को प्रदान किया। मोरोपन्त ने इस प्रकार स्तुति की थी -

भरतदेश-शिशुं महिषार्दिनी, त्वरितमंकगंत कुरूचण्डिके।
तडिदिवेत्य सशूलहतीश्वरे यमगृहा न हिता हि ततिं नया॥

(2/54)

चरितनायिका झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई द्वारा भी प्राचीन भारतीय गरिमा की रक्षा हेतु बहुविध चिन्ताएं प्रकट की गई है; महाभारत की प्रधान कथा से प्रभावित होकर भारतभूमि में द्रौपदी की कल्पना करके अंग्रेज शासन को दु:शासन के रूप में देखा गया है।

रानी के मन में भारत के उद्धार की चिन्ता है। रानी लक्ष्मीबाई छत्रपति शिवाजी उनकी माता जीजाबाई आदि के राष्ट्रभक्ति की भावनाओं एवं कार्यकलापों से प्रेरणा प्राप्त करके भारत के उद्धार कार्य को स्वयं पूरा करने का संकल्प लेती है। उन्होंने अपनी राजधानी झाँसी की नारियों में देशभक्ति परक अदम्य वीरभाव जाग्रत किया।

लक्ष्मीबाई ने बुन्देलखण्ड में जब अपने विवाह होने की चर्चा सुनी तब प्रसन्न हुई क्योंकि बुन्देलखण्ड वीरों की भूमि थी। उसने अपना मन्तव्य इस प्रकार व्यक्त किया –

नृपः स किं? मां परिणेतुकामः क्षमोऽस्ति योद्धं रिपुभिः सदाग्रे।
सदैव सम्मान्यमिमाग्रहं मे रणेषु खेलायितुमस्ति योग्यः॥

(6/21)

विवाह के बाद भी वह अपनी ससुराल की स्त्रियों को रणविद्या की शिक्षा देती है।

यथाविधानं सदनस्य लिप्सितं भवेत्तथैतत् भरतावनेरपि।
नरा यदैव प्रविशन्ति निर्भयं रणां गणान्तः प्रविशाम तत्क्षणं॥

(9/21)

लक्ष्मीबाई पिता और पति आदि की मृत्यु पर गहन शोक भी व्यक्त करती है किन्तु वीरोचित प्रतिज्ञा का निर्वहन जीवन्त पर्यन्त करती है –

खड्गं श्रृगं पूर्णज्वालारंगेण संविधास्यामि।
भरतच्छि तिशिरिवपूर्णशत्रुभ्यो दर्शयिष्यामि॥

(18/45)

रानी को अपने राष्ट्रकल्याण की इतनी चिन्ता रहती थी कि रात में सोते समय सहसा जाग पड़ती थी और राष्ट्र दशा पर सोचती रहती थी, सोते समय भी उनके मुँह से प्रायः यह वाक्य बड़ी कठोरता के साथ निकल पड़ता था कि

'अरे नीच गोरे, ठहर! तू कहाँ है?' अंग्रेजों से युद्ध के समय रानी के प्रयत्नों से झाँसी की सेना और प्रजा में राष्ट्राभिमान की भावना जाग उठी थी। देश की स्वतन्त्रता के लिए बच्चा-बच्चा युद्ध करने को तैयार था। सभी लोग अहमहमिकया समर भूमि मे जा रहे थे उनके मन में अपूर्व उत्साह का संचार हो गया था, तात्या टोपे को सेना सहित आता हुआ जान कर रानी का उत्साह बढ़ गया, किन्तु तात्या टोपे की सेना पराजित हुई और उन्हें समर भूमि छोड़नी पड़ी। इस पर भी रानी हताश नहीं होती और उन्होंने स्वातन्त्र्य समर जारी रखा। कुख्यातनाम दुल्हाजू ने अंग्रेजो से मिलकर रानी के साथ जो विश्वाघात किया जिसके पश्चात् रानी झाँसी को छोड़कर कालपी की ओर चली जाती है।

इक्कीसवें सर्ग में बेहोश रानी स्वप्न सा देखती हुई सबका स्मरण करती है, सबको सन्देश देती है। यहाँ कवि कला अपने चरम शिखर पर दिखाई देती है। इस सर्ग में करूण और वीर का विलक्षण समन्वय दिखाई देता है। सुतवत्सला लक्ष्मीबाई कहती है -

पश्याधुनाप्यत्र ममात्मजो यो बद्धोऽस्ति पृष्टोपरि यस्तथैव।
क्लेशो भवेन्नास्य स्वमुत्तमांगमानामये मे यमलबधमालम्॥

(21/3)

रानी ने अपने जीवन के अन्तिम क्षणों में अपने देश, अपनी देशभूमि, अपने देशवासियों, अपने देशभक्तों को बड़ी ही भावुकता के साथ याद किया है। रानी बेहोशी में नानाजी से कहती है कि भारतीय पेड़ो के घावों में काली मिट्टी भर देना, युद्ध के समय जिनमें तलवारें लग गई हैं -

श्यामामृदं तत्र निधाय बन्धो! तत्पूरयिष्यस्यरिवलं बिलं त्वम्।
नोचे दरीणां व्रणसंहतिस्सा स्यादेवतेऽपीत्थमनेन किंते॥

(21/20)

महाकाव्य के अन्तिम सर्ग में रानी को श्रद्धाजंलि समर्पित की गई है। भारतीय स्वातन्त्र्यसमर की सफलता प्राप्ति में उनके श्रेय को स्वीकार किया गया है। उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट की गई है, और उनके राष्ट्रिय जीवन से राष्ट्रवासियों को सदैव प्रेरणा मिलने की कामना प्रकट की गई है।

9. इन्दिरागाँधीचरितम्

इसके रचियता डॉ. सत्यव्रत शास्त्री है। इसमे 25 सर्ग है। इस महाकाव्य में पं. जवाहरलाल नेहरू की सुपुत्री श्रीमती इन्दिरागाँधी के जीवन चरित का वर्णन है।

कथावस्तु के पोषण हेतु पं. मोतीलाल नेहरू, श्रीमती विजयलक्ष्मी, पं. जवाहरलाल नेहरू, श्रीमती कमला नेहरू आदि का भी वर्णन है।

अंग्रेज शासकों की दासता से भारत माता की मुक्ति के लिए इन्दिरा गाँधी द्वारा किये गये प्रयत्नों का वर्णन किया गया है। भारत और भारतीय संस्कृति के प्रति आदर प्रकट किया गया है -

सर्वेऽत्र संभूय सुखं वसन्तु प्रिय वदन्तु प्रियमाचरन्तु।
न विग्रहो वा कलहो भवेद् वा स्याद् भारतं नन्दन तुल्य रूपम्॥

(1/4)

भारतीय प्रजा के योग क्षेम के कल्याण की कामना की गई है –

देशो मदीयः सुतरां समृद्धो भवेदितीच्छा परमामदीया,

न कोऽपि दीनो न च वा दरिद्रो न व्याधितो वा न च पीडितः स्यात्।

(1/3)

इस काव्य में इन्दिरा का फिरोज गाँधी के साथ विवाह तथा नवदम्पती द्वारा भारत के स्वतन्त्रता आन्दोलन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने का विशद् वर्णन किया गया है।

इन्दिरा ने भारत के प्रधानमंत्री पद को सुशोभित किया। इसके शासन काल को आधुनिक भारत की नींव कहा जाय तो अतिशयोक्ति न होगी। भारत रत्न की उपाधि से इस विदुषी को अलंकृत किया गया। सच है

'गुणाः पूजास्थानं गुणिषु न च लिङ्गं न च वयः।'

10. इन्दिराजीवनम्

इन्दिराजीवनम् अर्वाचीन संस्कृत साहित्य का एक भव्य शिल्प है इसमे स्वातन्त्र्योत्तर भारत के विकास में श्रीमती इन्दिरागाँधी और राजीव गाँधी के योगदान एवं बलिदान की गाथा उपनिबद्ध की गई है।

इन्दिरा जीवनम् में एकोनविंशः (19) सर्ग है तथा कुल श्लोक संख्या 717 है। इस महाकाव्य के रचयिता डॉ. गोस्वामी बलभद्र प्रसाद शास्त्री है। महाकाव्य के प्रथम सर्ग मे इन्दिरा के जन्म तथा बाल्यावस्था मे उनका नाम

प्रियदर्शिनी रखने का वर्णन है –

दिने-दिने सौम्यगुणैः प्रवर्धिनी,
स्वरूप लावण्यमनः प्रसादिनी।
प्रमोदमानैर्गुरूभिः सुदर्शनाऽ
प्यकारि नाम्ना प्रियदर्शिनी च सा।

(1/15)

अर्थात् प्रतिदिन सौम्य गुणों से वृद्धि को प्राप्त करने वाली और अपने रूप-लावण्य से मन को प्रसन्न करने वाली उस सुदर्शना कन्या का नाम प्रसन्न होते हुए माता-पिता ने प्रियदर्शिनी रखा।

इसके पश्चात् इन्दिरा की शिक्षा-दीक्षा विवाह एवं जवाहरलाल नेहरू की मृत्यु का वर्णन है, बैंको का राष्ट्रीयकरण करने, बॉग्लादेश निर्माण, शिमला सन्धि, पोखरण परमाणु विस्फोट आदि का वर्णन है।

आगे कवि ने सञ्जय एवं मेनका के विवाह का चित्रण किया है। किन्तु कवि का प्रमुख उद्देश्य इन्दिरा एवं राजीव के चरित्र का चित्रण करना ही है। राजीव गाँधी का राजनीति मे प्रवेश, उनकी पत्नी सोनिया तथा प्रियंका एवं राहुल के जन्म का वर्णन किया गया है। सोनिया का छाया की तरह राजीव का अनुसरण तथा राजीव का कांग्रेस अध्यक्ष पद पर चुना जाना, सञ्जयगाँधी की विमान दुर्घटना में मृत्यु तथा सम्पूर्ण देश के शोकाकुल होने का चित्रण किया गया है। इसके पश्चात् राजीव का चरित्र चित्रण कवि ने बड़े ही सुन्दर ढंग से किया है।

दो सर्गो (तेरहवें, चौदहवे) में कवि ने राजीव का चरित्र चित्रण किया है राजीव गाँधी के विषय में कवि कहते है –

अन्त्येष्टि यज्ञे पितरं च बाल्ये,
मातामहं चापि कुमारकाले।
युवानियत्या विवशश्चितायां,
प्रियानुजं साश्रुमुखो जुहाव॥

(2/27-28)

या क्रीतदासीव यदीय गेहे,
वंशवदाऽऽकर्षणकेन्द्रमासीत्।
सर्वत्र लोके जनवल्लभापि,
तस्मै न साऽरोचत राजनीतिः॥
स एव पुत्रः सहसा स्वमातु,
दैवेन दत्ते विषदन्धकारे।
प्रकाशभूतो ननु राजनीतिं,
स्वीकर्तुमार्यो विवशो बभूव॥

(9/13-14)

कवि ने लोकसभा चुनाव में कांग्रेस दल की पराजय, विश्वनाथ, चन्द्रशेखर का शासन पतन, विस्फोट में राजीव गाँधी का निधन आदि का वर्णन किया गया है।

काव्योपसंहार नामक अन्तिम सर्ग में कवि ने अपने काव्य के विषय मे सत्य ही कहा है कि यह न दलगत नीति के कारण प्रसूत है और न ही राजनीति से प्रेरित यह तो **'चारूचारित्र्यगीति'** तथा भव्य भावों की अनुभूति है। इसक उद्देश्य **'मङ्गलों की प्रसूति'** है –

न च दलगतनीति र्नाप्यसौ राजनीतिः,
सरसकृतिरियं मे चारू चारित्र्यगीतिः।
सहृदयहृदि वेद्या भव्यभावानुभूति,
र्भवतु कवि गिरेयं मङ्गलानां प्रसूतिः॥

(19/81)

संस्कृत में रचित सभी नारी प्रधान महाकाव्य महत्वपूर्ण है क्योंकि इन सभी में एक विशिष्ट दृष्टिकोण को प्रस्तुत किया गया है। वैसे तो प्राचीन काल से ही नारी के विविध रूपों का वर्णन कवियों ने अपने काव्य में किया है। वैदिक काल में नारी का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण एवं गौरवपूर्ण था –

'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता'।

(मनुस्मृति)

किन्तु काल प्रवाह के साथ नारी के प्रति दृष्टिकोण में कुछ परिवर्तन आया और उसे रक्षिता माना जाने लगा। बाल्यावस्था में पिता, युवावस्था में पति और वृद्धावस्था में पुत्र के द्वारा रक्षित मानी जाने लगी।

प्रसिद्ध चिन्तक एवं विद्वान डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने नारी को समाज का मानदण्ड मानते हुए ठीक ही लिखा है –

''इस संसार में यदि नारी न होती तो सभ्यता और संस्कृति न होती। अपने विविध रूपों में स्त्री ने पुरूष का संवर्धन प्रोत्साहन और शक्ति दी है और प्रकृति को संस्कृति के रूप मे ले आने तथा विकृति की और जाने से रोकने में समर्थ हुई हैं। इसलिए किसी समाज के सांस्कृतिक विकास का मानदण्ड नारी की मर्यादा है। मनु ने जब कहा कि नारियॉ पूजी जाती है वहॉ देवता विहार करते है। तो उन्होंने इसी तथ्य की ओर इंगित करना चाहा था। भारतवर्ष के विशाल इतिहास में नारी की मर्यादा में उतार-चढ़ाव आते रहे है, और हमारी संस्कृति भी तद्नुरूप उतार-चढ़ाव का अनुभव करती आई है।''

(डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी - चन्द्रावली त्रिपाठी कृत 'भारतीय समाज मे नारी आदर्शो के विकास' नामक पुस्तक की भूमिका।)

आधुनिक समय में नारी के प्रति गौरवपूर्ण भावना का विकास होता रहा है। यहाँ तक की माँ को सबसे बड़ा गुरु माना गया है - **'नास्ति मातृसमो गुरवेः'** इस भावना का चरमोत्कर्ष नारी को देवी के रूप मे प्रतिष्ठापित करने में हुआ है। महाकवि शेवड़े ने प्राचीन भारतीय तन्त्र शास्त्रों का आश्रय लेकर नारी को माँ के रूप में, आदि शक्ति के रूप में, ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश त्रिदेवों की प्रेरिका शक्ति के रूप में निरूपित किया है। शक्ति से ऊपर कुछ नहीं है यही महाकवि शेवड़े का वैशिष्ट्य है।

संस्कृत साहित्य में नारी को नायकत्व प्रदान करने वाले सभी महाकाव्यों में नारी का चरित्र चित्रण ही प्रधान रूप से चित्रित किया गया है महाकवियों ने ऐतिहासिक पात्रों, पौराणिक पात्रों, देवकोटि पात्रों, साधारण नारी इत्यादि को

अपने-अपने महाकाव्यों का आधार बनाया है। यथा- **'सीताचरितम्'** महाकाव्य की नायिका सीता को जीवन में अनेक विपरीतताओं का सामना करना पड़ता है, कभी अग्नि परीक्षा देनी पड़ती है तो कभी समाधिस्थ हो जाती हैं **'सीताचरितम्'** में नायिका की जीवन गाथा व्यथा कथा है। **'जानकीजीवनम्'** मे जानकी के निर्वासन प्रसंग का त्याग किया गया है तथा जानकी को कवि ने नारी स्वातन्त्र्य की पोषक नवयुगीन दृष्टिकोण को अपनाया है। लव-कुश का जन्म अयोध्या में ही बताया गया है। **'उर्मिलीयम्'** महाकाव्य में कवि ने उर्मिला की व्यथा कथा का निरूपण किया है। तथा लक्ष्मण के वनवास चले जाने पर उर्मिला की मार्मिक अभिव्यक्तियों एवं उसके त्याग को कवि ने प्रदर्शित करने का प्रयास किया हैं। **'यशोधरामहाकाव्य'** में यशोधरा की करूण व्यथा का चित्रण किया गया है। धीरोदात्त गुणों से मण्डित यशोधरा को अपने पति के लौट आने का बिल्कुल विश्वास नहीं है इस कारण कवि ने उसे सम्पूर्ण महाकाव्य में शोकाकुल पीडित ही दर्शाया है। **'वैदेहीचरितम्'** महाकाव्य में भी वेदैही (सीता) को ही परम्परागत भूमि पर प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया गया है। **'गंगासागरीयम्'** महाकाव्य में गंगा एवं सागर की कथा का चित्रण किया गया है। गंगा तथा सागर के मिलन एवं अनेक परिस्थितियों का सामना करती हुई गंगा को परकीया नायिका के रूप में चित्रित किया गया है।

'अपराजितावधू' महाकाव्य की नायिका प्रभा पीड़ित होने पर भी अत्याचार का विरोध करने वाली नायिका के रूप में वर्णित की गई है किन्तु प्रभा द्वारा अपने पति की दूसरी पत्नी को घर लाने आदि प्रसंगो में नायिका के चरित्र

को अलग ही दिशा कवि ने प्रदान कर दी है।

'झाँसीश्वरीचरितम्' तथा **'इन्दिराजीवनम्'** एवं **'इन्दिरागाँधीचरितम्'** में भारत की स्वतन्त्रता में महत्वपूर्ण योगदान करने वाली झाँसी की रानी तथा इन्दिरा का चरित्र चित्रण किया गया है।

इस प्रकार इन सभी नारी प्रधान महाकाव्यों में नारी की भूमिका को अलग-अलग रूप से प्रतिपादित किया गया है। किन्तु **'विन्ध्यवासिनीविजयम्'** महाकाव्य की नायिका जगदम्बा विन्ध्यवासिनी सबकी कष्ट परम्परा का समूलोच्छेदन करने वाली है, व्यथा का हरने वाली है, वसुदेव देवकी के कष्टों का हरण करने के साथ ही त्रैलोक्य के कष्ट निवारण के लिए विष्णु को अवतार लेने के लिए प्रेरित करने वाली है। महाकाव्य की नायिका जगदम्बा के चरित्र का समुत्कर्ष इन पद्यों में देखा जा सकता है -

सांख्या वदन्ति भवतीं प्रकृतिं पुराणा वेदान्तितः श्रुतिमतां कथयन्ति मायाम्।
शक्तिं परां पशुपतेर्निगदन्ति शैवा अस्मत्कृते तनुमती करूणा त्वमेव॥

(9/43)

विद्यां पुरा त्रिपुरभैरवि तावकीनामाराध्य पञ्चदशवर्णमयीं मुकुन्दः।
दैत्यानुप्लवकरानिव विप्रलब्धुं त्रैलोक्यमोहनमपद्यत रूपधेयम्॥

(9/48)

गिरिजा गिरिकाननान्तरे विपदां सन्धिषु विन्ध्यवासिनी।
परिरक्ष भयेषु भैरवी नवदुर्गातनुरम्ब दुर्गतौ ॥

(16/89)

इस महाकाव्य में कवि ने भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता के पोषक तत्वों, आश्रम संस्कृति, देववाणी, चौंसठ शक्ति पीठों में से एक विन्ध्याचल 'शक्तिपीठ', दानवृत्ति, सहनशीलता, गुरु-शिष्य परम्परा, सत्य, अहिंसा, आधुनिक जीवन की समस्याओं का निदान, सोलह संस्कारों में शामिल कर्णच्छेदन, नालोच्छेदन इत्यादि का वर्णन कवि ने अपनी लेखनी से बड़े ही सुन्दर ढंग से किया है जो वर्तमान समय में भी बहुत अधिक महत्वपूर्ण है।

इसके अतिरिक्त कवि ने काशी वर्णन, शिप्रा, रेवा इत्यादि नदियों शरद् ऋतु, वर्षा ऋतु इत्यादि के साथ श्री कृष्ण की विविध बाल लीलाओं का भी चित्रण अपने काव्य में किया है। जो पाठक एवं श्रोता को आन्नदित कर देता है -

चञ्चत्काञ्चीं बिभ्रती श्रोणिबिम्बे संशिञ्जानौनुपुरौ पादलग्नौ।
रोलम्बानां गुञ्जितं मञ्जुमञ्जु न्यक्कुर्णणा प्रक्वणैः कङ्कणनाम्॥
प्राप्तानन्दं सञ्चरद् भृत्यवृन्दं निर्मन्दाक्षा नन्दवासं प्रविश्य।
विभ्राणां तामङ्कपाल्यां मुकुन्दं दृष्ट्वा देवीं पूतना हर्षमाप॥

(विन्ध्य. 15/28-30)

इस प्रकार विवेच्य महाकाव्य **'विन्ध्यवासिनीविजयम्'** का स्थान अन्यतम है।

इस संसार में आकाश में उड़ान भरने वाले मच्छर से लेकर गरूड़ तक अनेक प्राणी होते हैं। मच्छर की उड़ान बहुत ही सीमित होती है तो गरूड़ की

उड़ान बहुत ही ऊँची होती है किन्तु सबके उड़ान भरने का अलग-अलग कारण एवं अलग-अलग सार्थकता भी है- **'को बड़ छोट कहत अपराधू'** के विचार से किसी के भी प्रयत्न को अवर और किसी के प्रयत्न को उत्कृष्ट कहना समीचीन नहीं प्रतीत होता है। सबके भिन्न-भिन्न उपादान है, भिन्न-भिन्न शक्तियाँ है, भिन्न-भिन्न कारण है और उड़ान से प्राप्त आनन्द और तोष का प्रकार भी अलग-अलग है। अपने-अपने स्थान पर सबका प्रयास सराहनीय है।

महाकवि शेवड़े जी के मन में लोकैषणा का सर्वथा अभाव दृष्टिगोचर होता है इनके मन में जगदम्बा के प्रति अहैतु की निर्व्याज भक्ति है। ऐसी मनोभूमि में जो काव्याङ्कुरण होता है वह निस्सन्देहः बहुत ही उत्कृष्ट, सर्वातिशयी होता है अथवा कहें कि सब की देखने की दृष्टि एक सी नहीं होती है एक ही वस्तु किसी की दृष्टि में बहुत अच्छी लग सकती है तो दूसरे की दृष्टि में उतनी अच्छी नहीं लग सकती है अथवा खराब भी लग सकती है। मेरे अपने मत में तो शेवड़े जी की रचना बहुत उत्कृष्ट कोटि की बन पड़ी है इन्होंने किसी यश प्रतिष्ठादि के प्रलोभन से नहीं लिखा है माँ की प्रेरणा से ही लिखा है इसमे हृदय का स्वतः स्फूर्त प्रवाह है भक्ति का सुन्दर निदर्शन है। उनकी कविता माँ के चरणों में समर्पित भक्ति की पुष्पाञ्जली है। जैसा तुलसी ने लिखा है -

''कवि न होउ नहि चतुर कहावहुँ।
मति अनुरूप राम गुन गावहुँ॥''

उसी प्रकार शेवड़े जी ने तल्लीनता से माँ का गुणगान किया है - इसी कारण इनकी कविता उत्कृष्ट कोटि की बन पड़ी है। कवि को निःसन्देह काव्य

लेखन से आनन्द प्राप्त हुआ होगा, पाठक एवं श्रोता को भी पठन एवं श्रवण से निःस्सन्देह आनन्द प्राप्त होता है। इसे सभी स्वीकार करेंगे कि सुरभारती के विरल साधकों, आराधकों, उपासकों में शेवड़े जी का अन्यतम स्थान सुनिश्चित है तथा संस्कृत के अनेक नारी प्रधान महाकाव्यों में **'विन्ध्यवासिनीविजयम्'** महाकाव्य का स्थान भी विशिष्ट एवं अन्यतम है।

प्रथम अध्याय

'विन्ध्यवासिनीविजयम्' का वैशिष्ट्य

यथा क्षेत्रं विना शस्यं यथा वापी विना जलम्।
तथैव भारतं राष्ट्रं विना संस्कृतभारतीम्॥

– प्रो. अभिराज राजेन्द्र मिश्र–संस्कृतशतकम्–12

संस्कृत भाषा भारतीयों के लिये वस्तुतः प्राणवाहिनी धारा है भारतीय मनीषा का समस्त चिन्तन, मनन तथा लौकिक, अलौकिक सभी अनुभूति संस्कृतभाषा में समाहित है, संस्कृत भाषा भारत राष्ट्र का गौरव है क्योकि संस्कृत न केवल भाषा है, अपितु भारत का जीवन दर्शन भी है।

आधुनिक संस्कृत साहित्य में व्यापक रूप से परिवर्तन दृष्टिगोचर हो रहे है। एक ओर विधाओं में परिवर्तन हो रहा है, तो दूसरी ओर विषयवस्तु में भी परिवर्तन दिखाई दे रहा है। विधाओं में परिवर्तन दो तरह से हो रहे है। प्रथम तो कवि नवीन विधाएँ अपना रहा है जैसे– नुक्कड नाटक, हाईकु कविता, सिजों कविता, नृत्य–नाटिका आदि, द्वितीय मुक्त छन्दोबद्ध काव्य को भी कवि अपना रहा है। दूसरी और विधाएँ है तो प्राचीन किन्तु उनके लक्षणों में किञ्चित परिवर्तन कर दिया है, जो लक्षण प्राचीन काव्यशास्त्रियों ने दिये थे। अर्थात् पुरानी विधाओं को ही नये स्वरूप में प्रस्तुत किया जा रहा है। इन विधाओं का प्रयोग कवि अपना कथ्य प्रस्तुत करने के लिए कर रहा है। इन प्राचीन विधाओं में सबसे प्रसिद्ध

विधा है महाकाव्य-विधा।

महाकाव्य विधा में लौकिक संस्कृत साहित्य में हम देखते है कि महाकाव्य किसी पौराणीक नायक, देवता, क्षत्रिय आदि पर आधारित होते थे, इनमें ऐतिहासिक या पौराणिक कथावस्तु का सन्निवेश होता था, श्रृंगार, वीर, शान्त में से कोई एक रस अङ्गी रस होता था। वहीं आधुनिक संस्कृत साहित्य में ये लक्षण कुछ परिवर्तित हो गये हैं। आधुनिक संस्कृत साहित्य मे नायिका प्रधान महाकाव्यों का भी परिगणन किया जा रहा है यथा - विष्णुदत्त शर्मा कृत **'सौलोचनीयम्'** आत्मराशास्त्री कृत **'सावित्रीचरितम्'** श्रीनारायणशास्त्री प्रणीत **'उर्मिलीयम्'** पूर्णचन्द्रशास्त्री कृत **'अपराजितावधूमहाकाव्य'** अभिराज राजेन्द्र मिश्र प्रणित **'जानकीजीवनम्'**, रेवा प्रसाद द्विवेदी कृत **'सीताचरितम्'** इत्यादि।

इसी परम्परा में वसन्त त्र्यम्बक शेवड़े कृत **'विन्ध्यवासिनीविजयम्'** महाकाव्य का भी महत्वपूर्ण स्थान है।

'विन्ध्यवासिनीविजयम्' विश्व की अति प्राचीन दैवीय भाषा संस्कृत के सुदूर अतीत से प्रवाहमान काव्यधारा के अत्यन्त विशिष्ट महाकाव्यों की परम्परा में विशेष स्थान का अधिकारी है जो कवि के वैदुष्य तथा सर्जनात्मकता का परिचय प्रस्तुत करता है। इस महाकाव्य में नारी के परम उदात्त, विविध दैवी गुणों से समन्वित चरमोत्कर्ष **'जगन्मातृत्व'** का निरूपण हुआ है। षोडशसर्गात्मक प्रकृत महाकाव्य में 1039 पद्य है। इस महाकाव्य की नायिका जगन्माता विन्ध्यवासिनी है। जिनका निरूपण आदि शक्ति के रूप में किया गया है। जो

त्रिदेवों ब्रह्मा, विष्णु, महेश की प्रेरिका है। इस काव्य का भावपक्ष एवं कलापक्ष दोनो ही प्रभावपूर्ण है। कवि की साहित्यिक गरिमा, प्रकरणवक्रता, उत्कृष्ठ शिल्प विधान ने इस महाकाव्य को अत्यन्त विशिष्ट बना दिया है। महाकाव्य का मूल कथानक मार्कण्डेय पुराण के दुर्गासप्तशती अंश से लिया गया है किन्तु कवि ने अपनी प्रतिभा, मौलिक उद्भावनाओं से इस नारीचरित्र प्रधान महाकाव्य को संस्कृत वाङ्मय की एक महान् उपलब्धि का रूप प्रदान किया है।

'विन्ध्यवासिनीविजयम्' महाकाव्य अनेक वैशिष्ट्यों से युक्त संस्कृत साहित्य की एक कालजयी कृति है। प्राचीन संस्कृत महाकाव्यों में जहाँ धीरोदात्त नायकों की यशोगाथा का वर्णन किया गया है वही इस महाकाव्य मे जगज्जननी माँ विन्ध्यवासिनी को धीरोदात्त गुणों से मण्डित नायिक (प्रमुख पात्र) के रूप में चित्रित किया गया है–

केचित् वदन्ति जगदम्ब सरस्वती त्वं प्राहुः परे सहचरीं मधुकैटभारैः।
अन्ये गिरीशगृहिणीं निगमागमज्ञास्तुयमिसीमहिमिानमुदाहयन्ति॥

(9/43)

गौरी जगत्सृजसि सत्वगुणप्रधाना दुर्गा रजो गुणमयी भुवनावनाय।
काली तमोगुणवती प्रलयस्थिता चेत्यकैव भाति भवति त्रिगुणस्वरूपा॥

(9/41)

विश्वनाथ द्वारा प्रदत्त **'शृङ्गारवीरशान्तानामेकोऽङ्गी रस इष्यते'** के प्रति भी आधुनिक महाकाव्यों में आग्रह दिखाई नहीं देता है। भक्तिरस अङ्गी रस के रूप में अभिव्यक्त हुआ है। महाकवि शेवड़े जी की भक्तिरसाप्लावित इस कृति

में देवी के प्रति अगाध, श्रद्धा, निष्ठा एवं अविचल विश्वासमयी भक्ति प्रदर्शित की गई है। भक्ति रस प्रधान इस महाकाव्य में कवि ने देवी के वर्णन में अलौकिक प्रतिभा का निदर्शन प्रस्तुत किया है भक्ति रस का दृष्टान्त –

सांख्या वदति भवतीं प्रकृति पुराणी वेदान्तितः श्रुतिमतांकथयन्ति मायाम्।
शक्तिं परा पशुपति र्निगदन्ति शैवा अस्मत्कृते तनुमती करूणात्वमेव॥

(9/43)

गिरिजा गिरिकाननान्तरे विपदां सन्धिषु, विन्ध्यवासिनी।
परिरक्ष भयेषु भैरवी नवदुर्गातनुरम्ब दुर्गतौ॥

(16/89)

इस महाकाव्य में आश्रम संस्कृति, देववाणी इत्यादि भारतीय संस्कृति के पोषक तत्वों का वैशिष्ट्य वर्णित है। भारतीय संस्कृति में देववाणी का विशेष महत्त्व है किसी अतिमहत्वपूर्ण अवसर पर देववाणी हुआ करती थी **'विन्ध्यवासिनी विजयम्'** के बारहवें सर्ग में वसुदेव द्वारा गर्गमुनि के माध्यम से सहस्त्रचण्डी विधान वर्णन आया है –

मया प्रेरितो देवकीगर्भमध्येभवेदष्टमः स्पष्टमेवाम्बुजाक्षः।
हरेद् दुष्टनाशात् स कष्टं जनानां यथा ग्रीष्मजं प्रवृवेष्याम्बुवाहः॥

(12/46)

सहस्त्रचण्डी विधान के पूर्ण होने पर गर्गाचार्य के मण्डप में करूणार्द्र देवी भगवती प्रत्यक्ष हुई और गर्गमुनि के मनोरथ को सिद्ध करती हुई बोली कि मेरी

प्रेरणा से विष्णु देवकी के आठवें गर्भ से उत्पन्न होगें। वे दुष्टों का विनाश कर जनता के कष्टों को दूर करेंगे। जिस प्रकार से ग्रीष्मज कष्ट को वर्षाकालीन बादल नष्ट कर देते है।

प्राचीन काल में जब राजा किंकर्तव्यविमूढ होता था तब वह आश्रमों में महर्षियों की शरण में आता था प्रकृत महाकाव्य में 'महर्षि अगस्त्य' का आश्रम सविस्तार वर्णित है। सातवें सर्ग में अगस्त्य आश्रम का भव्य एंव दिव्य चित्रण प्रस्तुत किया गया है –

जलदो न वर्षति निरूद्धगतिः पवनो न वा जगति सञ्चरति।
न कृषीवलाः क्षितिसुरा वणिजः प्रभवत्ति कर्तुमिह कर्मनिजम्॥

(7/24)

इस महाकाव्य में जनसामान्य की भाषा का सहज एवं सुन्दर प्रयोग हुआ है कवि ने वैदर्भी रीति एवं प्रसाद गुण का प्रचुर प्रयोग किया है जो पाठक एवं श्रोता के मन को पुलकित कर देती है। भाषा की सरलता एवं मनोहरता इस श्लोक में दृष्टव्य है –

हरिणाः करिणो मृगादना गवयाः केसरिणः प्लवङ्गमाः।
अपहाय विरोधमात्मनो मिलिता एककुटुम्बितां दधुः॥

(4/23)

महाकवि शवेड़े जी का अलङ्कार विधान चमत्कारपूर्ण है इस काव्य में शब्दालंकार एवं अर्थालंकार दोनो का ही प्रयोग कवि ने किया है। उपमा,

अर्थान्तर, दृष्टान्त, उत्प्रेक्षा, रूपक, स्वभावोक्ति, अतिशयोक्ति, यमक आदि अलंकारो का चित्रण कवि ने किया है। काव्य में कलात्मक सौन्दर्य की दृष्टि से अलंकारों का सहज चित्रण कवि के कौशल का दर्पण है।

'विन्ध्यवासिनीविजयम्' नामक 1039 श्लोकों के इस महाकाव्य में छन्द परम्परा का सम्यक् चित्रण हुआ है प्रधान्येन इस काव्य में उपजाति, वसन्ततिलका, शालिनी, वियोगिनी इत्यादि छन्दों का प्रयोग हुआ है।

छन्द चित्रण की दृष्टि से कवि की यह विशेषता रही है कि उन्होंने षोडश सर्गात्मक इस महाकाव्य में कहीं भी अनुष्टुप छन्द का प्रयोग नहीं किया है –

'अत्र च महाकाव्ये कुत्राप्यनुष्टुप छन्दसः प्रयोगोनास्ति अयमप्यस्यस विशेषः।'

इस काव्य में सूक्तियों की बहुलता है– उदाहरणार्थ –

(1) गुणदोषौ प्रविविच्य यत्नतः।
(2) भवदुप्तमिदं महामते ननु बीजं कलहस्य शाश्वतम्।
(3) उत्पाद्य प्रथमतलं मदातिरेकं सम्पत्तिर्हरति सुरामया विवेकम्।
(4) अपथे प्रवृत्तमिह शिष्यजन विनिवारयन्ति गुरवः सदयाः।
(5) अभिमानिनोऽपि बहुशः पुरूषाः लघुतां क्षणं दधति कार्यवशात्

इस महाकाव्य में भारत के तीर्थ स्थलों का भी मनोरम चित्रण हुआ है। वाराणसी का वर्णन करते हुए कवि कहते है –

वैकुण्ठपीठादवतीर्य गच्छन् वाराणासी कुम्भभव दिदृक्षुः।
गङ्गावगाहं सह बन्धुवर्गेचक्रे प्रयाग समवाप्य शक्रः॥

(6/1)

भवो भवान्भावित सर्वलोकः शिवप्रदत्वाच्छि इत्युदीर्यः।
हरो जगद्वर्तृतया प्रसिद्धो मृत्युञ्जयः प्रशितकालकूटः॥

(6/64)

जनसामान्य की व्यथा कथा में तो कवि पटु है ही, निसर्ग चित्रण भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है कवि ने प्रकृति की छटा का बड़ा ही सुन्दर चित्रण प्रस्तुत किया है –

छायासु विश्रम्य महीरूहाणां फलानि चाऽऽस्वाध पद्येलिमानि।
पुनः स्वमार्गक्रमेण प्रवर्तते यत्र जनोऽध्वनीनः॥

(1/12)

फुल्लारविन्दाः सरसास्तडागाः क्षेत्राणि नीवारयुतानि यत्र।
हरन्ति वृक्षाः फलभारनम्रास्तपोधनामपि मानसानि॥

(1/21)

'विन्ध्यवासिनीविजयम्' महाकाव्य के पात्रों के चरित्रांकन मे कवि को पर्याप्त सफलता मिली है प्रख्यात कथानक होने से किसी कल्पित पात्र की योजना नहीं की गई है प्राचीन पात्रों को ही **'काव्यशास्त्राचार्य समर्थित'** कविकल्पना का साधिकार उपयोग करते हुए प्रस्तुत किया गया है पात्रों के चरित्र विकास में भारतीय संस्कृति का स्वरूप अभिव्यंजित हुआ है। **'भगवती**

विन्ध्यावासिनी' पर ही काव्य का सारा घटनाचक्र आधारित है। इस महाकाव्य का प्रमुख पात्र-विन्ध्यवासिनी माँ है। तथा अन्य पात्र विन्ध्यगिरि, वसुदेव, गर्गाचार्य, वसुदेव, अगस्त्य, श्रीकृष्ण तथा इन्द्र है। चरित्र चित्रण की दृष्टि से यह महाकाव्य विशिष्ट है। इस प्रकार सभी विधाओं में साहित्य सर्जना करने वाले संस्कृत साहित्य के महान् युग दृष्टा कवि **'वसन्त त्र्यम्बक शेवड़े'** प्रणीत यह स्त्रीप्रधान **'विन्ध्यवासिनीविजयम्'** नामक महाकाव्य आधुनिक महाकाव्य परम्परा में अन्यतम एवं अत्युच्च स्थान का अधिकारी है।

इस महाकाव्य में कवि की प्रतिभा द्वारा कल्पना और यथार्थ का मणिकाञ्चन संयोग प्रस्तुत हुआ है। यह महाकाव्य आधुनिक महाकाव्यों की भीड़ में अपना अन्यतम स्थान रखता है। इस महाकाव्य में माँ विन्ध्यवासिनी के माध्यम से नारी चेतना का सन्देश मुखरित हुआ है।

'विन्ध्यवासिनीविजयम्' एक नारी प्रधान महाकाव्य है। माँ भगवती के अवतार या जन्म के मूल में जनपीड़ा का विनाश है। इस महाकाव्य में आधुनिक जीवन की समस्याओं का निदर्शन एवं समाधान है। दुर्जनता पर सज्जनता की विजय, अत्याचार-प्रशमन, प्रजा-राजा के सम्बन्ध, गुरु-शिष्य सम्बन्ध, आश्रम संस्कृति देववाणी यज्ञ, कूटनीति, अधर्म पर धर्म की विजय, प्रकृति चित्रण, ऋतु वर्णन, सूर्योदय वर्णन, नदी वर्णन, सन्ध्या इत्यादि का उल्लेख किया गया है जो इस महाकाव्य के वैशिष्ट्य को प्रकट करते है।

महाकवि वसन्त त्र्यम्बक शेवड़े जी का यह काव्य नवयुगबोध समन्वित, उदात्त मानवीय मूल्यों को अपनाने की प्रेरणा देने वाला, परमगुण युक्त विन्ध्यदैवी के गुणगण वर्णन विशिष्ट, संस्कृति, सभ्यता, युगानुरूप विविध विषयों का ग्रहण, स्वाभाविक भाषा शिल्प, सहृदय संवेद्य भक्तिरसाप्लावित वर्णन तथा काव्यशास्त्रीय नियमों से युक्त **'विन्ध्यवासिनीविजयम्'** महाकाव्य आधुनिक संस्कृत साहित्य में प्रमुख स्थान रखता है। जो निश्चय ही इस महाकाव्य को अन्य महाकाव्यों से पृथक् व विशिष्ट सिद्ध करता है।

द्वितीय अध्याय

संस्कृत साहित्य को 'विन्ध्यवासिनीविजयम्' की देन

आधुनिक संस्कृत काव्यधारा सर्वथा विलक्षण है। वर्तमान समय में जीवन बोध और सामाजिक स्थिति में बहुत तेजी से परिवर्तन हुआ है परिणाम स्वरूप सहृदय हृदय की रूचि में भी परिवर्तन हुआ है। **'क्रान्तदर्शिणः कवयः'** की प्रसिद्ध उक्ति के अनुसार हर युग का कवि क्रान्तदर्शी होता है। इस परिवर्तन में कवि और उसके काव्य का महत्वपूर्ण स्थान होता है। कवि केवल भविष्यद्रष्टा ही नहीं होता है, वह प्राचीन मान्यताओं से जुड़कर वर्तमान की समस्त स्थितियों का आकलन करके, भविष्य के लिये भी एक सन्देश प्रस्तुत करता है।

विशिष्ट की विशिष्टता का निरूपण उतना महत्वपूर्ण नही, जितना एक सामान्य को वैशिष्ट्य से विभूषित कर देना है। षोडशसर्गात्मक **'विन्ध्यवासिनी विजयम्'** महाकाव्य का मूल कथानक कहीं सुसंगत रूप से उपलब्ध नहीं है किन्तु कवि ने अपनी प्रतिभा, काव्यसाधना तथा माँ भगवती के प्रति अचल विश्वासमयी भक्ति से इसे विशिष्ट बना दिया है।

महाकवि वसन्त त्र्यम्बक शेवड़े द्वारा प्रणीत **'विन्ध्यवासिनीविजयम्'** महाकाव्य नारी प्रधान महाकाव्य है। इसका प्रतिपाद्य ऐसी नारी है जो आदिशक्ति का रूप है। इस महाकाव्य में कवि ने एक ऐसे पात्र को प्रमुख पात्र (नायक) बनाया है, जो धीरोदात्त गुणों से मण्डित है। कवि द्वारा संस्कृत साहित्य में यह

नवीन सङ्कल्पना है। इस महाकाव्य में आधुनिक जीवन की समस्यओं का निदर्शन एवं समाधान है। दुर्जजनता पर सज्जनता की विजय, प्रजा-राजा के सम्बन्ध, भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता का गहरा रंग भी उद्भासित है, महाराज उग्रसेन का दान वर्णन, आश्रम संस्कृति, यज्ञ, देववाणी, कूटनीति आदि विषय इसमें निगूढ़ है जो इसकी महत्ता को बढ़ाते है। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि संस्कृत साहित्य तथा समाज में नारी की महिमा मे श्रीवृद्धि करने वाला यह एक महत्वपूर्ण महाकाव्य है। यह निश्चय ही **'विन्ध्यवासिनीविजयम्'** महाकाव्य का संस्कृत साहित्य को अवदान है।

यह महाकाव्य आधुनिक परिप्रेक्ष्य में भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इसमें विन्ध्यदेवी के माध्यम से वर्तमान नारी जागरण का सन्देश प्रसारित किया गया है जो इस भक्तिरसाप्लावित महाकाव्य की संस्कृत साहित्य में महत्वपूर्ण देन है।

'विन्ध्यवासिनीविजयम्' महाकाव्य के पूर्वार्द्ध (1-10 सर्ग) की पूरी संरचना इन्द्र के मद को चूर करने के लिए हुई और भगवती को विन्ध्यक्षेत्र में प्रतिष्ठित करके देवताओं के पर्वत सुमेरू की तुलना में विन्ध्य को अधिक महत्वपूर्ण सिद्ध करने में की गयी किन्तु यह रचना अन्ततः कृष्ण द्वारा आततायी कंस के संहार के कारण लोककल्याण की भूमि पर प्रस्तुत हुई। इसमें कवि का कवित्व आद्योपान्त वर्णित है, जो स्तुत्य है।

महाकवि शेवड़े जी ने अपना कथ्य भक्तिरसासिक्त वर्णन के माध्यम से प्रस्तुत किया है, आधुनिक संस्कृत साहित्य में प्रतिष्ठा को प्राप्त भक्ति रस की

अभिव्यञ्जना **'विन्ध्यवासिनीविजयम्'** में आद्यान्त हुई है। इस महाकाव्य में भारत की परम पवित्र तीर्थस्थली वाराणसी, काशी, कैलास, रेवा नदी, कनखल, विन्ध्यपर्वत आदि का साङ्गोपाङ्ग आकर्षक चित्रण कवि ने किया है।

महाकवि शेवड़े जी ने समाज के सबसे छोटे वर्ग, किरातों, पुलिन्दों, शालिगोपियों के साथ दूसरी ओर वाराणसी वर्णन में वैदिक विद्वानों के वेदपाठ की चर्चा प्रस्तुत की है यह कवि की वर्णना को ही चित्रित करता है।

पूर्व विवेचित सभी तथ्यों से यह प्रमाणित होता है कि **'विन्ध्यवासिनीविजयम्'** साहित्य जगत् में एक महत्वपूर्ण रत्न है जिसके प्रकाशन से निश्चय ही साहित्य कोश की श्रीवृद्धि होगी।

यह महाकाव्य आधुनिक परिपेक्ष्य में भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है इसमें विन्ध्य देवी के माध्यम से नारी जागरण, अत्याचार प्रशमन, अहिंसा, देश प्रेम, कर्तव्यनिष्ठा गुरु-शिष्य सम्बन्ध, आश्रम संस्कृति, राजनीति का सुष्टु निरूपण इत्यादि जीवन मूल्यों से युक्त सुसांस्कृतिक व सभ्यता का अनुसरण करने की प्रेरणा प्रदान की गई है। इस प्रकार अत्याचार का विरोध करने का सन्देश प्रसारित करने वाला यह महाकाव्य संस्कृत साहित्य को महत्वपूर्ण अवदान है।

इस महाकाव्य में महर्षि अगस्त्य द्वारा माँ की स्तुति अद्भुत् है -

सांख्या वदन्ति भवतीं प्रकृति पुराणीं वेदान्तिनः श्रुतिमतां कथयन्ति मायाम्।
शक्तिं परां पशुपते र्निगदन्ति शैवा अस्मत्कृते तनुमती करूणां त्वमेव॥

(9/13)

मुनिवर कहते है कि हे गिरिसुते! तुमसे युक्त होकर ही भगवान महेश्वर विश्व का सजृन, पालन एवं संहरण करते है। सांख्यविद् तुम्हे प्रकृति कहते हैं, वेदान्ती माया कहते है, शैव तुम्हे पशुपति की पराशक्ति कहते है परन्तु हमारे लिए तो तुम साक्षात् तनुमती करूणा ही हो।

उपनिषदों में **'भिद्यते हृदयग्रन्थिरिछद्यन्ते सर्वसंशयाः, श्रीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे'** की जो धारणा है उसी धारणा को महाकवि वसन्त त्र्यम्बक शेवड़े जी ने अपने महाकाव्य **'विन्ध्यवासिनीविजयम्'** के द्वारा प्रस्तुत किया है। अतः इस महाकाव्य में काव्य-सौन्दर्य के साथ भारतीय जीवन दर्शन भी सङ्गुम्फित हुआ है। काव्य-सौन्दर्य पाठक के मन में किसी अवधारणा को सहज रूप से ग्राह्या बनाता है और उस काव्य का सन्देश उसके वर्तमान के पौरूष को जाग्रत करके नये युग का अवतरण कराता है। यही सत्ययुग का अवतरण है। यही मानवीय मूल्यों की अवधारणा है। यही प्रकृति के साथ साम्य और जीवनदर्शन है। महाकवि शेवड़े जी ने **'विन्ध्यवासिनीविजयम्'** महाकाव्य में नवीन युगबोध का समुचित निदर्शन रूपायित किया है।

महाकवि ने माँ विन्ध्यदेवी को त्रयोगुण प्रधान बताया है। सत्वगुण प्रधान गौरी रूप में जगत् का सजृन करती है, रजोगुणमयी दुर्गा रूप में भुवनों की रक्षा करती है तथा तमोगुण मयी काली रूप में प्रलय करती है। इस प्रकार देवी को त्रिगुण स्वरूपा चित्रित किया गया है। मानव कल्याण की कामना में ही समस्त संसार के कल्याण की कामना भी सन्निहित है और यही इस महाकाव्य का सबसे बड़ा अवदान है।

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।

अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥

(भगवतगीता-4/7)

श्रीकृष्ण की इस उक्ति के अनुसार भगवान मानव कल्याण हेतु अवश्य देह धारण करते है। आधुनिक नारी प्रधान महाकाव्यो में अग्रगण्य, भक्तिरसाप्लावित इस कृति में काव्यगत अलंकारों, छन्द, वर्णनात्मकता, रस निरूपण, चित्र-विचित्र काव्य बन्ध, शब्द चमत्कृति, रस निरूपण, चरित्र-चित्रण, वर्णन-वैचित्र्य गुण रीति आदि विशेषताओं के कारण यह एक सफल नारी प्रधान महाकाव्य है।

आशा है कि मेरा यह शोधग्रन्थ अन्य विद्वत् सुधीजनों को इसकी ओर आकृष्ट करने में समर्थ होगा। मेरे इस प्रयास में त्रुटियाँ होना संभव है क्योंकि विधाता की सृष्टि ही सदोष है पूर्ण तो केवल परमात्मा है। फिर भी 'विन्ध्यवासिनीविजयम्' महाकाव्य के प्रायः सभी महत्वपूर्ण पक्षों के विवेचन का प्रयत्न इस शोधप्रबन्ध में किया गया है। मैं आशा करती हूँ मेरा यह प्रयास अन्य सुधीसाधकों को इस ग्रन्थ के अध्ययन विवेचन की दिशा में और अधिक गम्भीर प्रयत्न के लिये प्रेरित करेगा। अन्त में कवि की भावना के अनुरूप आकांक्षा के साथ इस शोध-ग्रन्थ की इतिश्री कर रही हूँ -

जीयाद् विश्वजनीनचित्र चरितचन्द्रार्धचूडामणि

जीयाद् विन्ध्यवासिनी भवगती सर्वार्थसिद्दिप्रदा।

विस्फूर्जत्कलिकल्मषप्रशमनी जीयाच्चिरं तत्कथा

जीयासुः कल्कण्ठकण्ठमधुरा वाचः कवीनां चिरम्॥

(16/113)

सन्दर्भग्रन्थसूची

वसन्त त्र्यम्बक शेवड़े कृत मौलिक काव्य ग्रन्थ –

क्र.सं.	**ग्रन्थ**	**लेखक/सम्पादक**	**प्रकाशक**
1	विन्ध्यवासिनीविजयम्	वसन्तत्र्यम्बक शेवड़े	चौखम्बा प्रकाशन, 1982, वाराणसी
2	शुम्भवधमहाकाव्यम्	वसन्तत्र्यम्बक शेवड़े	
3	अभिवनमेघदूतम्	वसन्तत्र्यम्बक शेवड़े	चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी
काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ			
4	अभिवनकाव्यालंकारसूत्रम्	प्रो. राधावल्लभत्रिपाठी	सम्पूर्णानन्द संस्कृत वि.वि., वाराणसी – 2000
5	अभिराजयशोभूषणम्	'अभिराज ' राजेन्द्र मिश्र	वैजयन्त प्रकाशन, इलाहाबाद – 2006
6	अभिनवकाव्यशास्त्रम्	डॉ. शंकरदेव अवतरे	साहित्य सहकार, दिल्ली– 2001
7	काव्यालंकार कारिका	रेवा प्रसाद द्विवेदी	चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी
8	काव्यदीपिका	कान्तिचन्द्र	जगदीश संस्कृत पुस्तकालय, जयपुर
9	अग्निपुराणोक्तं काव्यालंकारशास्त्रम्	सं. पारसनाथ द्विवेदी	सम्पूर्णानन्द संस्कृत वि.वि., वाराणसी
10	काव्यप्रकाश	मम्मटाचार्य	ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी–1998
11	काव्यमीमांसा	राजशेखर	चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी–1998
12	'दण्डी' रचित काव्यादर्श	शिवनारायणशास्त्री	परिमल पब्लिकेशन, दिल्ली – 2002
13	आचार्य भामह कृत काव्यालंकार	डॉ. रमण कुमार शर्मा	विधानिधि प्रकाशन, दिल्ली – 2008
14	रूद्रट प्रणीत काव्यालंकार	डॉ. सत्यदेव चौधरी	परिमल पब्लिकेशन्स, दिल्ली – 1990

15	काव्यानुशासन	हेमचन्द्र	मेहरचन्द लक्ष्मणदास प्रकाशन, दिल्ली–1986
16	काव्यालंकारसूत्र	वामनचार्य	चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी (2058 वि.सं.)
17	चन्द्रालोक	जयदेव	चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी (2060 वि.सं.)
18	दशरूपक	धनञ्जय	चौखम्बा विधाभवन, वाराणसी (2061 वि.सं.)
19	काव्यप्रकाश	आचार्य भामह	चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी–1960
20	काव्यगुण विमर्श	डॉ. ऊषा सिंह	शारदा प्रकाशन, फैजाबाद
21	काव्यतत्त्वमीमांसा	नरेन्द्रनाथ चौधरी	मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली
22	काव्यत्त्वमीमांसा	डॉ. जयन्त मिश्र	
23	काव्यालंकार सारसंग्रह	डॉ. रमण कुमार शर्मा	विधानिधि प्रकाशन, नई दिल्ली
24	काव्यप्रकाश	डॉ. सत्यव्रतसिंह	चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी
25	काव्यप्रकाश	आचार्य विश्वेश्वर	ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी
26	अलंकार सर्वस्व	डॉ. रेवाप्रसाद द्विवेदी	चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी
27	काव्यलंकार सूत्रवृत्ति एक शास्त्रीय अध्ययन	डॉ. राजिन्द्रा शर्मा	पीयूष प्रकाशन, शहादरा, दिल्ली
28	साहित्यदर्पण	विश्वनाथ	मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली
29	साहित्यसार	अच्युतनाथ	निर्णयसागर प्रेस, मुम्बई
30	ध्वन्यालोक	आचार्य लोकमणी दाहाल	भारतीय विद्या प्रकाशन, दिल्ली
31	अलंकार सर्वस्व	डॉ. त्रिलोकीनाथ द्विवेदी	चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी
32	विष्णुपुराण	श्रीरामशर्मा आचार्य	संस्कृति संस्थान, बरेली
33	अलंकार मञ्जूषा	डॉ. रमाशंकर त्रिपाठी	चौखम्बा ओरियन्टल, वाराणसी
34	छन्दोमञ्जरी	गङ्गादास	चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी (2061 वि.सं.)
35	ध्वन्यालोक (लोचन टीका सहित)	आनन्दवर्धनाचार्य	चौखम्बा संस्कृत भवन, वाराणसी (2061 वि.सं.)
36	नाट्यशास्त्र	भरतमुनि	विधानिधि प्रकाशन, दिल्ली–1999
37	रसगङ्गाधर	पं. राजजगन्नाथ	कृष्णदास अकादमी, वाराणसी (2053 वि.सं.)
38	साहित्यदर्पण	विश्वनाथ	मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली–2009

39	साहित्यानुशासनम्	पं. सीताराम चतुर्वेदी	चौखम्बा संस्कृत सीरिज, वाराणसी (2026 वि.सं.)
40	वक्रोक्तिजीवितम्	कुन्तक	चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी–2001
41	छन्दशास्त्रम्	पिङ्गलाचार्य	हरियाणा साहित्य संस्थान, रोहतक
42	छन्दो मञ्जरी	गंगादास	चौखम्बा संस्कृत सीरिज, वाराणसी
43	रस, अलंकार छन्द तथा काव्यांग	डॉ. वेंकट शर्मा	राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर
व्याकरणग्रन्थ			
44	लघुसिद्धान्तकौमुदी	सं. भीमसेन शास्त्री	भैमी प्रकाशन, दिल्ली–2005
45	लघुसिद्धान्त कौमुदी	स. अर्कनाथ चौधरी	जगदीश संस्कृत पुस्तकालय, जयपुर
46	बृहद् अनुवाद चन्द्रिका	चक्रधारनौटियाल 'हंस'	मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली–1999
47	रूपचन्द्रिका	सं. ब्रह्मानन्द त्रिपाठी	चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी–2005
48	संस्कृत व्याकरण	प्रीतिप्रभा गोयल	राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर – 2009
49	पतञ्जलि विरचितम् व्याकरण महाभाष्यम्	डॉ. रमाकान्त पाण्डेय	जगदीश संस्कृत पुस्तकालय, जयपुर–2004
इतिहास–आलोचना–समीक्षात्मक ग्रन्थ			
50	आधुनिक संस्कृत काव्य–परम्परा	केशवराय मुसलगावरकर	चौखम्बा विधाभवन, वाराणसी – 2004
51	आधुनिक संस्कृत साहित्य का इतिहास (सप्तम खण्ड)	स. जगन्नाथ पाठक	उत्तरप्रदेश संस्कृत संस्थान, लखनऊ–2000
52	संस्कृत काव्यशास्त्र और काव्य परम्परा	राधावल्लभ त्रिपठी	प्रतिभा प्रकाशन, दिल्ली – 2004
53	संस्कृत साहित्य बीसवीं शताब्दी	राधावल्लभ त्रिपठी	राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, 1999
54	संस्कृत साहित्य का इतिहास	डॉ. पुलकरदत्त शर्मा	अजमेरा बुक कम्पनी, जयपुर – 2004
55	संस्कृत साहित्य का इतिहास	डॉ. श्रीकृष्ण ओझा	कॉलेज बुक हाऊस, जयपुर

56	अभिनवरससिद्धान्त	डॉ. दशरथ द्विवेदी	वि.वि. प्रकाशन, वाराणसी – 2003
57	अर्वाचीन संस्कृत साहित्य दशा एवं दिशा	सं. मञ्जुलता शर्मा	परिमल पब्लिकेशन्स, दिल्ली – 2004
58	अलंकार शास्त्र की परम्परा	राजवंश सहाय 'हीरा'	चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी
59	आधुनिक संस्कृत	देवर्षि कलानाथ शास्त्री	जगदीश संस्कृत पुस्तकालय, जयपुर
60	काव्य तत्त्व विमर्श	डॉ. राममूर्ति त्रिपाठी	वाणी प्रकाशन, दिल्ली – 2008
61	संस्कृत महाकाव्यों का समालोचनात्मक अध्ययन	डॉ. रहस बिहारी द्विवेदी	न्यू भारतीय बुक कार्पोरेशन, दिल्ली–2001
62	संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास	डॉ. कपिल देव द्विवेदी	साहित्य संस्थान, इलाहाबाद–1982
63	लौकिक संस्कृत साहित्य का इतिहास	डॉ. जयकृष्ण प्रसाद खण्डेलवाल	परिमल पब्लिकेशन्स, दिल्ली – 2002
64	संस्कृत के गौरव शिखर	देवर्षि कलानाथ शास्त्री	राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, दिल्ली
65	रस सिद्धान्त	डॉ. नगेन्द्र	मयूर पेपर बैक्स, नोएडा–2001
66	संस्कृत साहित्य का अभिनव इतिहास	डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी	वि.वि. प्रकाशन, वाराणसी–2001
67	संस्कृत साहित्य का इतिहास	कलानाथ शास्त्री	युनिक टेडर्स, जयपुर–2003
68	संस्कृत साहित्य का इतिहास	डॉ. उमाशंकर शर्मा 'ऋषि'	चौखम्बा भारती अकादमी, वाराणसी–1999
69	संस्कृत साहित्य का इतिहास (वैदिक व लौकिक खण्ड)	प्रीतिप्रभा गोयल	राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर
70	संस्कृत सुकवि समीक्षा	बलदेव उपाध्याय	चौखम्बा विधाभवन, वाराणसी–1987
71	अलङ्कार शास्त्र का इतिहास	डॉ. कृष्ण कुमार	साहित्य भण्डार, मेरठ–1998
72	संस्कृत साहित्य का इतिहास	वाचस्पति गैरोला	चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी–1985
73	संस्कृत मनीषा के	प्रो. ओमप्रकाश पाण्डेय	नाग प्रकाशन, दिल्ली–2003

	कतिपय नक्षत्र		
74	संस्कृत आलोचना	बलदेव उपाध्याय	प्रकाश ब्यूरो सूचना विभाग, प्रा. स. - 1957
75	संस्कृत साहित्य में भक्तिरस	डॉ. दीया अग्रवाल	ईस्टर्न बुक लिंकर्स, न्यू चन्द्रावल जवाहर नगर, दिल्ली
76	लौकिक संस्कृत साहित्य	ए. बी. कीथ	चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी
77	राजस्थानीयाभिनव संस्कृत साहित्य	प्रो. गदाधर भट्ट	राजस्थान संस्कृत अकादमी, जयपुर
78	संस्कृत साहित्य का इतिहास	डॉ. बलदेव उपाध्याय	शारदा मन्दिर, वाराणसी
79	आधुनिक शास्त्रों में संस्कृत की उपादेयता	प्रो. कृष्णलाल	नाग प्रकाशन, दिल्ली - 1992
80	संस्कृत साहित्य में नारी	डॉ. लतासिंह	परिमल पब्लिकेशन्स प्रकाशन, दिल्ली
81	वैदिक वाङ्मय में नारी	डॉ. सुषमा शुक्ला	विधानिधि प्रकाशन, दिल्ली - 1996
82	संस्कृत के महाकवि और काव्य	डॉ. रामजी उपाध्याय	चौखम्बा विधा भवन, वाराणसी
83	मिथक और यथार्थ	दामोदर धर्मानन्द कोसम्बी	भारतीय इतिहास अनुसन्धान परिषद, दिल्ली - 2010
अन्य संस्कृत ग्रन्थ			
85	जानकीजीवनम्	डॉ. राजेन्द्र मिश्र	वैजयन्त प्रकाशन, इलाहाबाद - 1988
86	सीताचरितम्	रेवा प्रसाद द्विवेदी	मनीषा प्रकाशन, वाराणसी - 1975
87	इन्दिरागाँधीचरितम्	सत्यव्रत शास्त्री	भारतीय विद्या प्रकाशन, दिल्ली - 1976
88	झाँसीश्वरचरितम्	सुबोधचन्द्र पंत	गंगानाथ संस्कृत विद्यापीठ, इलाहाबाद - 1986
89	उर्मिलीयम् महाकाव्यम्	नारायणशुक्ल	देवरिया, उ.प्र. - 1973
90	यशोधरा महाकाव्यम्	आगेटि परीक्षित शर्मा	सदाशिवपेट, पूना-30
91	इन्दिराजीवनम्	डॉ. गोस्वामी बलभद्र	नाग प्रकाशन, 1997

		प्रसाद, शास्त्री	
92	अपराजितावधूमहाकाव्यम्	डॉ. पूर्णचन्द्रशास्त्री	प्रतिभा प्रकाशन, नई दिल्ली – 2000
93	श्री सुभाषचरितम् महाकाव्य	त्रिगुणानन्द शुक्ल	ईस्टर्न बुक लिंकर्स, दिल्ली – 1996
94	स्वातन्त्र्यसम्भवम्	रेवा प्रसाद द्विवेदी	कालिदास संस्थान, वाराणसी – 1990
95	श्रीबोधिसत्वचरितम्	डॉ. सत्यव्रत शास्त्री	मेहरचन्द्र लक्ष्मणदास, दरियागंज, दिल्ली – 1973
96	अथर्ववेद		दयानन्द संस्थान, दिल्ली
97	अभिज्ञानशाकुन्तलम्	कालिदास	पञ्चशील प्रकाशन, जयपुर – 2000
98	ईशादि नौ उपनिषद् (शांकर भाष्य सहित)	टीका–हरिकृष्णदास गोयन्दका	गीत प्रेस, गोरखपुर
99	ऋक् सूक्त संग्रह	सं. हरिदत्त शास्त्री	साहित्य भण्डार, मेरठ
100	ऋग्वेद		दयानन्द संस्थान, दिल्ली
101	वाल्मीकि रामायण	स. रामनारायण दत्त	शास्त्री प्रकाशन, गोरखपुर – 2042 वि.सं.
102	महाभारत	स. जी. डी. जालान	गीता प्रेस, गोरखपुर – 2014 वि. सं.
103	कालिदास कृत रघुवंशमहाकाव्य	सं. रामचन्द्र शुक्ल	रामनारायण लाल बेनीमाधव, इलाहाबाद – 1970
104	नैषधीयचरितम्	सं. शिवराज शास्त्री	साहित्य भण्डार, मेरठ – 1977
105	किरातार्जुनीयम्	स. ब्रद्रीलाल मालवीय	रामनारायण लाल बेनीमाधव, इलाहाबाद – 1978
106	बुद्धचरितम्	अश्वघोष	संस्कृत भवन कठोतिया पूर्णितया, बिहार – 1955
107	रूक्मिणीहरणम्	पं. काशीनाथ द्विवेदी	वी 1/22 अस्सी, वाराणसी – 1996
108	कालिदास ग्रन्थावली	सं. ब्रह्मानन्द त्रिपाठी	चौखम्बा सुरभारती, वाराणसी – 2005
109	श्री शिवराज्योदयम्	डॉ. श्रीधरभास्कर वर्णेकर	शारदा, सदाशिवपेठ, पूना – 1972

110	वामनावतरण	प्रो. 'अभिराज' राजेन्द्र मिश्र	इलाहाबाद वि.वि., इलाहाबाद
कोशग्रन्थ			
112	अमरकोश	अमरसिंह	चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली
113	संस्कृत हिन्दी कोश	वामन शिवराम आप्टे	बी.बी.सी., दिल्ली – 2002
114	बृहद् हिन्दी कोश	सं. कालिका प्रसाद	ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी – 2008
115	साहित्य दर्पण कोश	डॉ. रमनकुमार शर्मा	विधानिधि प्रकाशन, दिल्ली – 1996
116	हिन्दी-संस्कृत शब्दकोश	प्रकाश पाण्डेय	संस्कृत भारती, दिल्ली – 2006
117	हिन्दी साहित्य कोश (प्रथम भाग)	सं. धीरेन्द्र वर्मा	ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी – 2009
118	Anglo Hindu Dictionary	सं. आर. सी. पाठक	श्री गङ्गा पुस्तकालय, वाराणसी – 2007
119	शब्द कल्पद्रुम	राजा राधाकान्त देव (बहादुर)	
120	बृहद् पर्यायवाची कोश	डॉ. रघुबीर	
पत्रिकाएँ			
121	दृक्		दृग् भारती, इलाहाबाद
122	दूर्वा		कालिदास अकादमी, उज्जैन, म.प्र.
123	अवाचीन संस्कृतम्		राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली
124	कल्याण		गोरखपुर
125	शोधप्रभा		नई दिल्ली
126	स्वरमङ्गला		राज. संस्कृत अकादमी, जयपुर
127	प्रतिभा		वाराणसी